Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

# निर्मलवाणी

वा

# सत्यनारायण कथा

रचयिता

स्वामी निर्मलानन्द

इस ग्रंथमें दुःखोंकी आत्यंतिक निवृत्ति तथा नित्यनिरतिशय सुखसंप्राप्तिका उपाय, सरल तथा सुस्पष्ट रूपसे वर्णित हुआ है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC-0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

9/26

LIBRARY
9/26
Shri Shri Ma Anandamayee Ashram
BANARAS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC-0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

ॐ कार वाच्य–श्री श्री भगवान् देवत्रय

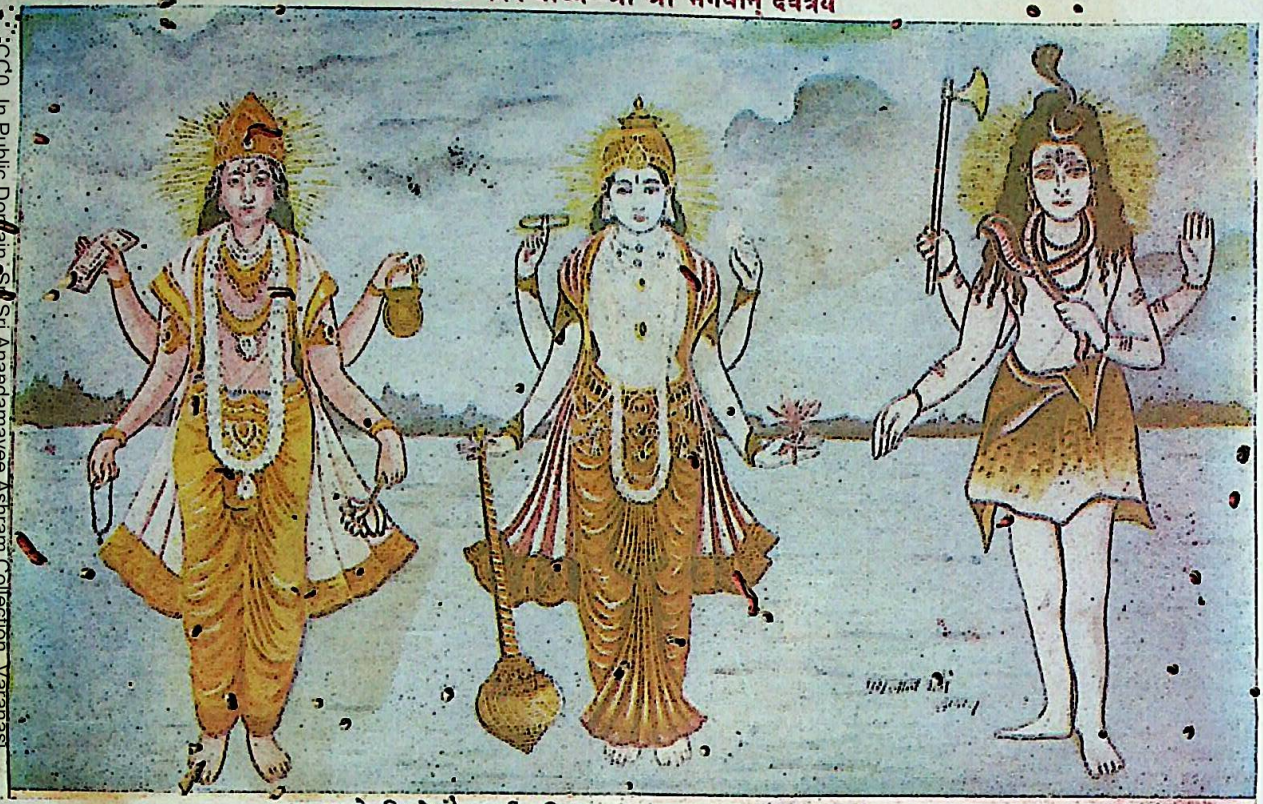

एको हि देवो भवति त्रिधा वा अनन्त रूपाण्यदधात् स एव ।

CC-0. In Public Domain. Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

# निर्मलवाणी

## वा

## सत्यनारायण कथा

रचयिता

स्वामी निर्मलानन्द

इस ग्रंथमें दुःखोंकी आत्यंतिक निवृत्ति तथा नित्यनिरतिशय सुखसंप्राप्तिका उपाय, सरल तथा सुस्पष्ट रूपसे वर्णित हुआ है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकाशक

बुलन्दशहर जिलान्तर्गत
कर्णवासस्थ देवत्रय ट्रस्ट।
सर्वसत्व संरक्षित

प्रथमावृत्ति

संवत-२००७, ई० १९५०

मुद्रक
जीवन कृष्ण शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

9/26



# सूचीपत्र


| विषय | पृष्ठांक |
|---|---|
| श्री श्री भगवान देवत्रय के चित्र .. .. | |
| स्वामी निर्मलानन्द का चित्र .. .. | |
| निवेदन .. .. .. .. | १ |
| सूचना .. .. .. .. | ३ |
| निर्मलवाणी प्राप्ति का उपाय .. .. | ४ |
| पुस्तक की भूगत तथा डाकव्ययादि के सहित आत्म-कल्याणार्थ श्री श्री भगवान देवत्रय का नैमित्तिक पूजन व्यय भेजने का निर्धारित नियम | ५ |
| अवतरणिका .. .. .. .. | ७ |
| फलवर्णन .. .. .. .. | १३ |
| अधिकारी निरूपण .. .. .. | १५ |
| नामार्थ वर्णन .. .. .. .. | १६ |


## प्रथम परिच्छेद


| | |
|---|---|
| मंगलाचरण तथा शांतिपाठ .. .. | १७ |
| कथा प्रारंभ .. .. .. .. | २० |


CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS




| विषय | पृष्ठांक |
|---|---|
| मानव की श्रेष्ठता अपिच धर्माचरण विरहित मानवों की पशुतुल्यता | २० |
| स्वाभाविक तथा अस्वाभाविक भेद से द्विविध कर्म | २३ |
| शुक्लादि भेद से चतुर्विध कर्म .. .. | २३ |
| प्रारब्ध कर्म .. .. .. .. | २५ |
| आगामी कर्म .. .. .. .. | २८ |
| संचित कर्म .. .. .. .. | २८ |
| कर्मसंचय के हेतु आदि वर्णन .. | २९ |
| सामान्य विशेष भेद से द्विविध धर्म तथा द्विविध धर्माधिकारी निरूपण | ३३ |
| सर्वसाधारण के लिये वेदोक्त दशविध सामान्य धर्म का स्वरूप वर्णन | ३४ |
| साधन चतुष्टय संपन्न असामान्य नरनारियों के लिये वेदोक्त परम धर्म का स्वरूप वर्णन | ३७ |
| साधन चतुष्टय .. .. .. .. | ३८ |


## द्वितीय परिच्छेद


| | |
|---|---|
| ब्रह्मका स्वरूप वर्णन .. .. .. | ४४ |


CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विषय पृष्ठांक

## तृतीय परिच्छेद

### स्वाभाविक सृष्टि


अविद्या पादात्मक ब्रह्मस्वभावतः परिणामशीला त्रिगुणात्मिका गुणसाम्या मूला प्रकृति.. .. ४९

गुणस्वभावतः सत्त्वगुणाभिभूत शुद्धसत्त्वगुणप्रधाना प्रकृति वा माया की सृष्टि .. .. ५१


### अथ ईश्वर सृष्टि


रजोगुणाभिभूत सत्त्वगुण प्रधानाप्रकृति वा महत्तत्व ५१

तमोगुणाभिभूत सत्त्वगुणप्रधानाप्रकृति वा अहंकार ५२

रजस्तमोगुणद्वयाभिभूतमलिनसत्त्वगुणप्रधाना प्रकृति वा अविद्या .. .. .. ५२

पंचतन्मात्रा .. .. .. .. ५२

पंचमहाभूत .. .. .. .. ५३

अंतःकरणवृत्तिपंचक .. .. .. ५३

ज्ञानेन्द्रियपंचक .. .. .. .. ५४

कर्मेन्द्रियपंचक .. .. .. .. ५५

प्राणपंचक .. .. .. .. ५६


CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS




| विषय | पृष्ठांक |
|---|---|
| सूक्ष्मदेह .. ... .. .. | ५७ |
| पंचीकरण .. .. .. .. | ५७ |
| स्थूलपंचभूत .. .. .. .. | ५८ |
| स्थूलदेह .. .. .. .. | ५८ |
| कार्यकारणात्मिका प्रकृति के कार्यसम्बन्धी विशेष वक्तव्य .. .. .. .. | ५८ |


## चतुर्थ परिच्छेद


| | |
|---|---|
| व्यवहार भेद से सप्तविध चैतन्य .. .. | ६२ |
| साकार तथा निराकार ईश्वर का स्वरूपवर्णन .. | ६३ |
| साकार तथा निराकार द्विविध भेद के हेतु वर्णन .. | ६४ |
| आदिनारायण वा ईश्वर का हिरण्यगर्भ तथा विराट् रूप धारणपूर्वक क्रमशः संपूर्ण जगद्रूप धारण करने का क्रमप्रदर्शन .. | ६५ |
| अथ ईश्वरीय कार्यवर्णन .. .. .. | ६६ |


## पंचम परिच्छेद


| | |
|---|---|
| साकार निराकार द्विविध जीवात्मा का स्वरूप वर्णन | ७१ |
| साकार निराकार भेद के हेतुवर्णन .. .. | ७२ |
| जीवात्मा के कार्यवर्णन .. .. .. | ७३ |


CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विषय पृष्ठांक

## षष्ठ परिच्छेद

अहंतत्त्व का विचारसम्बन्धी उपोद्घात .. ७६
वस्तुतः स्थूल सूक्ष्म तथा कारणदेह मैं नहीं हूं .. ७७
वस्तुतः देह तथा देहसम्बन्धी हस्तपद मस्तक पिता-माता पुत्र कन्या वस्त्र आभूषण इत्यादि पदार्थ मेरे नहीं हैं .. .. .. ७८
देह को तथा देहसम्बन्धी पदार्थ को मैं और मेरा कहने का हेतु निरूपण .. .. ८२
बिंब से प्रतिबिंब वस्तुतः अभिन्न है .. .. ८९
वेद एवं वेदाविरुद्ध वेदान्तादि शास्त्रीय प्रमाण तथा निज-निज अनुभव द्वारा अहंतत्त्व का यथार्थ विज्ञान ९२

## सप्तम परिच्छेद

सप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानियों के प्रति चेतावनी .. ९७
सप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान का लक्षण तथा अनुभव अथवा फलादि वर्णन .. .. ९९
अप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान का लक्षण तथा फलादि वर्णन .. .. .. .. १००

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS




| विषय | पृष्ठांक |
|---|---|
| सप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान की सुलभता वर्णन सम्बन्धी युक्ति तथा शास्त्रीय प्रमाण .. .. | १०० |
| जिज्ञासु का अनुभव द्योतन .. .. .. | १०२ |
| अब तुम्हारा अनुभव के सहित वेद वेदांतादि शास्त्रीय प्रमाण वाक्यों का मिलान करके भलीभाँति विचार पूर्वक संशय शून्यतया निश्चय करो, तुम कौन हो ? .. .. .. | १०४ |
| जिज्ञासु का उत्तर .. .. .. | १०५ |
| अथ अप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान की दुर्लभता वर्णन | १०५ |
| दृष्टान्त .. .. .. .. | १०६ |


## अष्टम परिच्छेद


| | |
|---|---|
| श्रुति उक्त कर्मयोग का स्वरूप वर्णन .. .. | १११ |
| श्रीकृष्ण भगवान का उपदेश .. .. | ११२ |
| सनातनधर्म शास्त्रोक्त, कर्तव्य कर्मों का कुछ नामोल्लेखपूर्वक निष्काम कर्म का स्वरूपवर्णन .. | ११३ |
| शंकासमाधानार्थ दृष्टान्तसहित यथासंभव सुस्पष्ट रूप से निष्काम कर्म निचय समझाने का प्रयत्न .. .. | ११५ |


CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS




| विषय | पृष्ठांक |
|---|---|
| शंका तथा समाधान .. .. .. | ११५ |
| उपरोक्त विषय सम्बन्धी दृष्टान्त .. .. | १२७ |
| और एक बात .. .. .. .. | १२९ |
| प्रकरणोपसंहार में निर्मलानन्द का उपदेश .. | १३२ |


## नवम परिच्छेद


| | |
|---|---|
| भक्तियोग का स्वरूप वर्णन .. .. | १३५ |
| श्रीमद्भागवत् आदि पुराणोक्त श्रवणादि नवधा भक्ति का साधन यथा— | १३५ |
| श्रवण, कीर्तन, स्मरण .. .. .. | १३६ |
| पादसेवन .. .. .. | १३७ |
| अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन .. .. .. | १३८ |


CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS




| विषय | पृष्ठांक |
|---|---|
| मुमुक्षुजनों का कुछ ज्ञातव्य विषय वर्णन .. | १३९ |
| पातंजल दर्शनोक्त अष्टांगयोग वर्णन | |
| प्रथम—अहिंसादि यम पंचक यथा—.. .. | १४५ |
| अहिंसादि के अर्थ यथा :— | |
| अहिंसा, सत्य .. .. .. | १४५ |
| अस्तेय, ब्रह्मचर्य .. .. .. | १४६ |
| अपरिग्रह .. .. .. | १४७ |
| जाति देशकाल समयानवच्छिन्न सार्वभौम महाव्रत | |
| अहिंसा प्रतिष्ठायां तत् सन्निधौ वैरत्यागः | १४८ |
| महाभारतोक्त— | |
| अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यश्चरते मुनिः। | |
| न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयमुत्पद्यते क्वचित्॥ | १४९ |
| द्वितीय—योगांग शौचादि नियम पंचक यथा— | |
| शौचादि के अर्थ यथा :— | |
| शौच, संतोष, तप .. .. .. | १५० |


CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS




| विषय | पृष्ठांक |
|---|---|
| स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान .. .. | १५० |
| तृतीय—योगांग आसन .. .. .. | १५० |
| चतुर्थ— ,, प्राणायाम, पंचम— ,, प्रत्याहार .. .. | १५१ |
| षष्ठ— ,, धारणा .. .. .. | १५२ |
| सप्तम— ,, ध्यान, अष्टम— ,, समाधि .. .. | १५३ |
| अथ श्रुति उक्त अष्टांग योग — | |
| प्रथम—अहिंसादि दशविध यम यथा— .. | १५५ |
| अहिंसादि के अर्थ यथा :— | |
| अहिंसा, सत्य .. .. .. | १५६ |
| अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव .. .. .. | १५७ |
| क्षमा, धृति .. .. .. | १५८ |


CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS




| विषय | पृष्ठांक |
|---|---|
| मिताहार .. .. .. | १५८ |
| शौच .. .. .. .. | १५९ |
| द्वितीय योगांग तपादि दशविध नियम यथा— .. | १५९ |
| तपात्मक प्राजापत्य .. .. | १६० |
| ग्रास संख्या तथा परिमाण वर्णन .. | १६१ |
| कृच्छ्रसान्तपन .. .. | १६२ |
| अतिकृच्छ्र, तप्तकृच्छ्र .. .. | १६४ |
| जलादियों का परिमाण .. .. | १६५ |
| पराक-कृच्छ्र, पिपीलिका मध्य चान्द्रायण .. | १६८ |
| यवमध्य चान्द्रायण, यति चान्द्रायण .. .. | १७४ |
| शिशु चान्द्रायण .. .. .. | १७५ |
| प्राजापत्य तथा चान्द्रायणादि तप में पालन योग्य नियम .. .. | १७५ |
| संतोष, आस्तिक्य .. .. .. | १७७ |
| दान .. .. .. | १७८ |


CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS




| विषय | पृष्ठांक |
|---|---|
| ईश्वर पूजन, सिद्धान्त श्रवण, ह्री, मति, जप .. .. | १७८ |
| व्रत .. .. .. | १७९ |
| तृतीय—योगांग आसन यथा— स्वस्तिकासन, गोमुखासन, सिद्धासन .. | १८० |
| प्रकारान्तर सिद्धासन .. .. | १८१ |
| पद्मासन, बद्धपद्मासन .. .. .. | १८२ |
| मयूरासन .. , पश्चिमतानासन .. , शिरसासन वा विपरीतकरणी .. | १८३ |
| चतुर्थ योगांग प्राणायाम .. .. | १८६ |
| योगविघ्नवर्णन .. .. .. | २०९ |


CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विषय पृष्ठांक

## दशम परिच्छेद


ज्ञानयोगाभ्यास करने का आलंबन
ज्ञानयोग का स्वरूप वर्णन .. २१३
श्रुति उक्त ज्ञानयोग का लक्षण

आत्मपूजाका षोड़श उपचार .. .. २१४

ज्ञानयोग सम्बन्धी यम नियमादि अष्टांग वर्णन .. २१७

श्रुति भगवती का उपदेश—
ब्रह्म तथा जगत् का स्वरूप प्रदर्शन पूर्वक .. २१८

सर्वव्यापक परब्रह्म का विज्ञान
दृष्टान्त द्वारा देहादि सकल वस्तु में व्यापक ब्रह्म का विज्ञान २१९

अतएव हे अभिन्नात्मक सुधी ! तुम उपेक्ष्य नामरूपे द्वे सच्चिदानन्द तत्परोभव .. .. २२०

षड्विध समाधि अभ्यास द्वारा कालयापन करने की विधि वा आज्ञाप्रदान .. .. .. .. २२०

ज्ञानयोगानुष्ठान द्वारा सिद्ध होने पर जो सकल अपूर्व फललाभ होता है तिसका वर्णन .. .. २३२


CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विषय पृष्ठांक

## एकादश परिच्छेद

चित्प्रतिबिंब वा चिदाभास की समालोचना .. २२६
अंतःकरणवृत्ति की समालोचना .. .. २३५
माया की समालोचना .. .. .. २४०
आगामी कर्म की समालोचना .. .. २५३
अहिंसा की समालोचना .. .. .. २५७
मंत्राधिकार सम्बन्धी उपोद्घात .. .. २६६
जैसा ईश्वर सृष्ट जगत् में सामान्य और असामान्य गुणशक्ति विशिष्ट द्विविध नरनारियां दृष्ट होता है, ठीक वैसा ही ईश्वरोपदिष्ट वेदशास्त्र में, सगुण-ब्रह्मबोधक सामान्य गुणशक्ति विशिष्ट तथा निर्गुण-ब्रह्मबोधक विशेष गुणशक्ति विशिष्ट द्विविध मंत्र दृष्ट होता है .. .. .. .. २६७
अपिच जैसा उच्चशिक्षित सामान्य नरनारियों का जागतिक सामान्य कार्य में ही अधिकार है ठीक वैसा ही सदाचार और साधन करने की शक्ति तथा रुचिसंपन्न साधनचतुष्ट विरहित सामान्य नरनारियों का वेदशास्त्रोक्त सगुण ब्रह्म ईश्वरोपासन सम्बन्धी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विषय पृष्ठांक

सामान्य मंत्र में ही अधिकार है। और साधन चतुष्टयसंपन्न असामान्य नरनारियों का वेदशास्त्रोक्त निर्गुण ब्रह्मबोधक विशेष मंत्र में भी अधिकार है.. २६८

नृसिंहपूर्वतापिन्युपनिषदुक्त मंत्राधिकार संबंधी श्रुतिवाक्य समूह का, मत्कृत रहस्योद्घाटनकारक निर्विरोध भाषार्थ द्योतन और आधुनिक काल के गुरुपरंपरा प्राप्त भ्रमसंस्कार संपन्नविकृत सनातन धर्मप्रचारक आचार्यगणकृत कपोलकल्पित मूल वहिर्भूत विरुद्धार्थ द्योतन .. .. .. २७३

अन्य वक्तव्य .. .. .. २८३

मनुस्मृति उक्त "अमंत्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः। संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम्॥" इत्यादि श्लोकों का रहस्योद्घाटनकारक निर्विरोध भाषार्थ वर्णन .. .. .. .. २८४

श्रुतिमूलक गृह्यसूत्र, हारीतसंहिता, यमस्मृति प्रभृति ग्रंथ में, स्त्रियों का भी उपनयन में विनियोग गायत्री आदि वैदिक मंत्राधिकार वर्णन.. .. २९३

श्रुतिस्मृति आदि शास्त्रोक्त वाक्य समूह का निर्विरोध भाषार्थ के सहित मिलान करके विचार

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विषय पृष्ठांक

करने के लिये मनुस्मृति का भाष्यकार मेधातिथि जी महाराज कृत भाष्यानुसरणकारी कुल्लूकभट्टजी महाराज कृत टीका के सहित

"अमंत्रिकातु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः ।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् ॥"

इत्यादि श्लोकों का केशव द्विवेदी कृत भाषाटीका . . २९७

मनुस्मृतिवर्णित उपरोद्धृत श्लोकनिचय के भाष्यकार तथा टीकाकार कृत व्याख्या की अति संक्षिप्त समालोचना .. .. .. ३०१

अथ विनीत निवेदन .. .. .. ३०५

अथ उपनयन में विनियोग गायत्री समालोचना सम्बन्धी उपोद्घात .. .. .. ३०९

जिज्ञासु और पंडितवृन्द तथा स्वामी निर्मलानन्द का कथोपकथन .. .. .. ३१२

पूज्यपाद श्री श्री शंकराचार्य देवकृत उपनयन में विनियोग गायत्री महामंत्र का भाष्य तथा भाष्य की समालोचना .. .. .. .. ३३१

निर्मलानन्द कृत उपनयन में विनियोग गायत्री महामंत्र का निर्विरोध अर्थ .. .. .. ३३८

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विषय पृष्ठांक

## द्वादश परिच्छेद

कृपा चतुष्टय .. .. .. .. ३४४
सनातनधर्मी तथा परवर्ती वा आधुनिक काल के प्रचलित बौद्ध, जैन, ईसाई, मुसलमान, सिक्ख प्रभृति उपधर्मी स्वदेशी विदेशी जो कोई भी क्यों न हो निम्नलिखित विधि अनुसार साधन करने की शक्ति तथा रुचि संपन्न समस्त नरनारियों के परम शान्ति लाभार्थ नित्य कर्मांगभूत ईश्वरोपासना .. .. ३४७
शान्ति मंत्र पुस्तक समाप्त.. .. .. ३५७

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



## निवेदन

सर्व साधारण जिज्ञासु के आत्मकल्याणार्थ, जिनकी प्रेरणा वा इच्छा से, तथा जिनके मन्दिर में अवस्थित होकर, निर्मलवाणी निर्मित हुई है, तिस ओंकारवाच्य परम-कल्याणकारी असीमकृपानिधान भोगापवर्गदाता सगुणब्रह्म श्री श्री भगवान् देवत्रय के अर्थात् सृष्टि-स्थिति-प्रलयकर्त्ता ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर के नैमित्तिक पूजनार्थ, यह ग्रंथ देवत्रय को ही समर्पण किया है। अतएव यदि किसी को निर्मलवाणी ग्रहण करने की इच्छा होवे तो स्वकीय आत्मकल्याणार्थ, यथाविधि जगद्गुरु श्री श्री भगवान् देवत्रय का पूजन करके, देवत्रय के ही प्रसादरूप में निर्मलवाणी ग्रहण कर सकता है। यह ग्रंथ विक्रय किंवा वितरणार्थ नहीं है। इसका कारण यह है कि मेरे विचार से, दान, ग्रहण अथवा क्रय करने की अपेक्षा निज-निज आत्मकल्याणार्थ देवत्रय का पूजन करके, भोगाप-वर्गदाता जगद्गुरु श्री श्री भगवान् देवत्रय का ही प्रसाद रूप में निर्मलवाणी ग्रहण करना अधिकतर कल्याणकारक है। यथार्थ भक्त के लिये प्रसाद रूप निर्मलवाणी में श्री श्री भगवान् देवत्रय की अलौकिक शक्ति निहित रहेगी। जिसके प्रभाव से उपयुक्त समय पर साधकवृन्द का अति-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



दुःसाध्य कार्य भी अकस्मात् सुसिद्ध होना असंभव नहीं है। शिवमिति।

निवेदक—

स्वामी निर्मलानन्द

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

9/26



# सूचना

निर्मलवाणी ग्रंथ को, अथवा इसके किसी अंश को, किसी भी भाषा में छपवाकर विक्रय अथवा वितरण करने से, ग्राहक-वृन्द के आत्मकल्याणार्थ श्री श्री भगवान् देवत्रय के नैमित्तिकपूजन प्रतिरोध जनित अपराध में दंडित होगा। सर्व सत्त्व संरक्षित है।

प्रकाशक
देवत्रय-ट्रस्ट कर्णवास
जिला—बुलंदशहर (उ० प्र०)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



# निर्मलवाणी प्राप्ति का उपाय

( १ )

बुलंदशहर जिलान्तर्गत कर्णवास भागीरथी गंगातटस्थ देवत्रय ट्रस्ट, पुस्तक छपवाकर देवत्रय मंदिर में संग्रहीत रखेगा। एवं देवत्रय के अर्थात् सृष्टि स्थितिप्रलयकर्ता श्री श्री भगवान् ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर के नैमित्तिक पूजनकाल में, निवेदनार्थ प्रत्येक प्रार्थी को एक पुस्तक देगा, जगद्गुरु देवत्रय के प्रसादरूप निर्मलवाणीग्रहणेच्छुक मानवनिचय स्वकीय आत्मकल्याणार्थ देवत्रय के पूजनकाल में, अन्यान्य उपचार वा पूजन द्रव्य के सहित यथाविधि निर्मलवाणी को भी देवत्रय को निवेदन करे। अनंतर पूजा समाप्त होने पर सब से प्रथम श्रद्धा के सहित श्री श्री भगवान् देवत्रय के प्रसादरूप निर्मलवाणी दोनों हाथों से ग्रहण करके स्वकीय मस्तक से स्पर्शन करे।

( २ )

जिन लोगों को कर्णवास में उपस्थित होकर यथाविधि श्री श्री भगवान् देवत्रय का पूजन करके प्रसादरूप में निर्मल-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वाणी ग्रहण करना दुःसाध्य प्रतीत होता है, वे यदि देवत्रय के नैमित्तिक पूजनादि प्रवंधकर्त्ता के समीप प्रार्थना पूर्वक पूजनांगभूत संकल्प वाक्य में आवश्यकीय नाम गोत्रादि तथा सुस्पष्ट पता सहित पत्र लिखें, अपिच यथानिर्धारित पूजन व्यय मनीआर्डर द्वारा निम्नलिखित पते में भेज देवें तो देवत्रय के नैमित्तिक पूजनादि प्रवंधकर्त्ता, निर्मलवाणी-प्रार्थी के आत्मकल्याणार्थ प्रतिनिधि द्वारा यथाविधि पूजन करवाकर, भोगापवर्गदाता जगद्गुरु श्री श्री भगवान् देवत्रय का प्रसादरूप निर्मलवाणी, वापिसी रसीद सह रजिस्टरी पार्सल द्वारा भिजवा देंगे। पार्सल प्राप्ति के अनन्तर आत्म-कल्याणेच्छुक जिज्ञासु, श्री श्री भगवान् देवत्रय को सभक्ति प्रणाम करके यथाविधि प्रसाद ग्रहण करे।

पुस्तक की लागत एवं डाकव्ययादि सहित आत्म-कल्याणार्थ देवत्रय का नैमित्तिक पूजन व्यय भेजने का निर्धारित नियम।

१—निर्धनी के लिये न्यूनकल्प में ११)

२—मध्यम श्रेणी के लिये न्यूनकल्प में ३१)

३—धनी के लिये न्यूनकल्प में ५१)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



नोट—शक्ति तथा रुचि-अनुसार अधिक जितनी जिसको इच्छा हो भेज सकता है।

पता—

नैमित्तिक पूजनादि प्रबंधकर्त्ता

देवत्रय मंदिर—कर्णवास

पत्रालय—कर्णवास

जिला—बुलन्दशहर

(उत्तर प्रदेश)

सन १९५२ में [illegible] इस पुस्तक
विक्रय करने का [illegible] किया गया है।
मूल्य ४) रु॥ देवत्रयट्रस्ट॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



# अवतरणिका

हरिः ॐ तत्सत्

परम कल्याणकारी असीम कृपानिधान भोगापवर्ग-दाता, सगुण ब्रह्म श्री श्री परमेश्वर ने भोगापवर्गार्थ मानववृन्द का सृजन किया है। परन्तु कैवल्य मुक्तिलाभ करना हो तो प्रतिबन्धत्रय निवृत्ति के लिये, निष्काम कर्म और उपासना तथा ज्ञानयोग का अनुष्ठान करना आवश्यक है। क्योंकि शास्त्रविहित निष्काम कर्म के बिना मलरूप प्रतिबन्ध निवृत्ति वा अन्तःकरण शुद्धि नहीं होती है। और उपासना के विना विक्षेप निवृत्ति वा शांत मानस होना असम्भव है। तथा ज्ञानयोग के अनुष्ठान विना आवरण भङ्ग नहीं होता है। अतएव स्वाधिकार वा प्रयोजन के अनुसार यथाक्रम से कर्मयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोग का अनुष्ठान करना जो प्रत्येक बुद्धिमान-बुद्धिमती नर नारियों को अवश्य करणीय है। यही वेद एवं वेदमूलक सनातन धर्मशास्त्रीय निर्विरोध सिद्धांत की बात है। परंतु युगधर्म के प्रभाववशतः यथाक्रम से धर्म की हानि तथा अधर्म की परिवृद्धि हो रही है। एवं यथा-क्रम से बौद्ध, ईसाई, मुसलमान इत्यादि उपधर्मों का

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्रचार होने के कारण, ईश्वरोपदिष्ट सार्वदेशिक तथा सार्वजनिक सनातनधर्म विलुप्त प्रायः हो गया है। सुतरां वर्तमान काल में असाधारण विद्या, बुद्धि, वाक्पटुता, कर्म वीरता, एवं लोकप्रभुत्वादि गुणसम्पन्न अपिच महान् ऐश्वर्य-शाली बड़े-बड़े राजा वा राष्ट्रपति आदि मानव समूह के बीच में भी अधिकांश मानवगण, केवल भोग प्रापक कर्म में ही निरत होकर, निजनिज कर्मानुसार, यथासंभव वैषयिक सुख के सहित असह्य दुःख भोग रहे हैं। तथापि विचार पूर्वक संसार में अपेक्षाकृत अधिकतर सुख संभोग और दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति तथा नित्य निरतिशय सुख संप्राप्ति-रूप कैवल्य मुक्ति का सार्वदेशिक तथा सार्वजनिक श्रेष्ठतम सहज उपाय श्रवण करने की भी रुचि नहीं होती है।

भारतवर्ष के विषय में विशेष वक्तव्य यह है कि युग-धर्म के प्रभाव वशतः अथवा जिस किसी कारण से क्यों न हो, जब से कलियुग के अवतार श्री श्री भगवान् बुद्धदेव ने भारतवर्ष के ही राजमन्दिर में अवतीर्ण होकर, अतिशय चतुरता के सहित नानाविध उपाय अवलम्बन पूर्वक, सनातन धर्म की भित्ति स्वरूप वेदशास्त्र के कुछ अंश के ऊपर दोषारोपण करके तथा कुछ अंश का विपरीत अथवा विरुद्धार्थ द्योतन करके, सब से पहिले भारतवर्ष में ही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



बौद्धधर्म का प्रचार किया है। तब से ही भारतवर्ष के महाराजगण, बौद्धधर्मावलम्बी होने के कारण, आसुरिक संपद्विशिष्ट विचारशून्य प्रजावृन्द ने भी, सनातन वैदिक धर्म का परित्याग करके, बौद्धधर्म का ही अवलंबन किया था। क्योंकि "यथा राजा तथा प्रजा" प्रायशः ऐसा ही नियम देखने में आता है।

अनंतर धीरे धीरे बौद्धधर्मियों का संसर्ग अपिच राज-प्रभाव तथा कन्या-रत्न, धन, भूमि, लोक प्रभुत्वादि नाना-विध प्रलोभन वशतः आसुरी संपद्विहीन आर्यगण भी बौद्धधर्मावलम्बी होने के कारण, संसार में अपेक्षाकृत अधिकतर सुखसंप्राप्ति कारक, और दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति तथा नित्य निरतिशय सुख संप्राप्ति रूप, कैवल्य मुक्ति का साधन भूत, धर्म कर्म विवर्जित होकर, क्रमशः दैवीसंपद् विहीन होने लगे। एवं क्रमशः ही धर्म की हानि तथा अधर्म की परिवृद्धि होने लगी। इस प्रकार से अति दीर्घकाल पर्यन्त, अर्थात् तेरह शत वर्षों से भी अधिक समय पर्यन्त भारतवर्ष में यद्यपि महापराक्रमशाली बौद्धधर्मियों का आधिपत्य था; तथापि दैवीसंपद् विशिष्ट, अप्रलुब्ध, अतिशय अल्प संख्यक धर्मप्राण मानवगण विद्य-मान रहने के कारण, भारतवर्ष में यद्यपि उस काल में भी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ईश्वरोपदिष्ट सनातन वैदिक धर्म पूर्ण रूप से विलुप्त नहीं हुआ था, यह बात ठीक है; परन्तु बौद्ध धर्मियों का प्रभाव वशतः महान् धर्म संकट उपस्थित हुआ था। अतः पर श्री श्री भगवान् शंकराचार्य देव के मुख निःसृत अकाट्य युक्ति प्रमाणादि समन्वित वाक्य पुञ्ज श्रवण करके, बौद्ध-धर्मावलम्बी एक राजा तथा कतिपय विचार शील विद्वान् पुरुषों ने सनातन वैदिक धर्म का श्रेष्ठतमत्व विज्ञात होकर, बौद्धधर्म का परित्याग करके, पुनः सनातन वैदिक धर्म का ही अवलम्बन किया है। तदनन्तर प्रचार कार्यार्थ श्री श्री भगवान् शंकराचार्य देव ने स्वकीय दल-बल के सहित जहाँ जहाँ पदार्पण किया है, तहाँ तहाँ के प्रान्तीय राजा, एवं विचारवान् मानवगण ने भी सनातन वैदिक धर्म का श्रेष्ठतमत्व विज्ञात होकर, बौद्ध धर्म का परित्याग करके पुनः सनातन धर्म का ही अवलम्बन किया है। एवं राज प्रभाव से अभिभूत होकर, बौद्धधर्मावलम्बी विचार शून्य मानवगण ने भी सनातन धर्म का ही अवलम्बन किया है। परन्तु वे बाहर में तो सनातनधर्मी और अन्तर में अवैदिक अनीश्वरवादी नास्तिक थे। एवं बहुसंख्यक अनीश्वरवादी नास्तिक जनवृन्द के अत्यधिक संसर्ग वशतः ईश्वरोपदिष्ट वैदिकधर्म, क्रमशः विकृत होकर महान् धर्म संकट उपस्थित

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



होने के कारण, श्री श्री भगवान् शङ्कराचार्य देव ने भारतवर्ष में, विलुप्तप्राय सनातन धर्म का पुनः संस्थापन अथवा प्रचार तो किया है। परन्तु आचार्य देव के स्थिति-काल के अल्पता हेतु, वे विकृत वैदिक धर्म का भली-भाँति संशोधन नहीं कर सके। तदनंतर भारतवर्ष में म्लेच्छ अथवा कहो कि यवन राजा हुये। एवं दीर्घकाल पर्यन्त यवन का भी आधिपत्य विद्यमान था। अनंतर अँगरेजों का आधिपत्य हुआ। "यथा राजा तथा प्रजा" इस वाक्य की सार्थकता तो प्रायः सर्वत्र ही देखने में आती है। कलियुग के प्रभाव वशतः अथवा जिस किसी कारण से क्यों न हो, भारतवर्ष में अतिदीर्घ कालावधि सनातन वैदिक धर्म संरक्षक शक्तिशाली कोई राजा न रहने के कारण, यथेच्छाचारी होकर, विभिन्न रुचि संपन्न आचार्यों ने, ईश्वरोपदिष्ट वेद शास्त्र के कुछ अंशों के सहित, अपनी रुचि अनुसार और कुछ मिलाकर, एवं कुछ अंश का विपरीत वा विरुद्धार्थ द्योतन पूर्वक, साम्प्रदायिक ग्रन्थ का निर्माण करके, भिन्न भिन्न सम्प्रदायों का संगठन किया है। इन सांप्रदायिक मानववृन्द ने ईश्वरोपदिष्ट विरोधशून्य सार्वदेशिक तथा सार्वजनिक परम शांतिकारक सनातन वैदिक धर्म की उपेक्षा करके सांप्रदायिक आचार्य के उपदिष्ट विरोध-विशिष्ट अंतीव तुच्छातितुच्छ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विरुद्धांश का अवलंबन पूर्वक, व्यर्थ ही परस्पर लड़ाई करके, उभयपक्ष हत्यादि जनित असह्य दुःख भोग रहे हैं। एवं पूर्ववर्ती आचार्य के मत को परवर्त्ती आचार्य ने अतिशय चतुरता के सहित नानाविध लौकिक युक्ति प्रमाणादि प्रदर्शन पूर्वक खंडन किया है। इस प्रकार के खण्डन मंडन तथा पारस्परिक विद्वेषभाव, और अमानुषी अत्याचार, अपिच भयंकर लड़ाई प्रभृति दर्शन तथा श्रवण करके, वेदशास्त्र जिन लोगों को अविज्ञात है, एवं विचार विहीन अंध विश्वासी भी नहीं हैं, उन लोगों के अंतःकरण में क्रमशः नास्तिकता का संस्कार निवद्ध हुआ है। पर्याप्त शक्तिशाली बुद्धिमान बुद्धिमती नर-नारी गण भी, सार्वदेशिक तथा सार्वजनिक परम शांति प्रापक मोक्ष धर्म विवर्जित होकर, केवल भोग प्रापक कर्म में ही निरत होने के कारण, विश्व में प्रायः सर्वत्र ही घोर अशांति उपस्थित हुई है। यह सकल कारण वशतः परमेश्वर की प्रेरणा वा इच्छा से, वेदवर्णित परम शांतिकारक सार्वदेशिक तथा सार्वजनिक सामान्य धर्म के प्रचार के लिये यह ग्रन्थ निर्मित हुआ है। शिवमिति।

अवतरणिका समाप्त।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



## अथ फल वर्णन :—

निर्मलवाणी श्रवण करने से, मानव-वृन्द का परम कर्तव्य नित्यानित्य वस्तु विवेकादि के सहित संशय शून्यतया सप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान प्रादुर्भाव होता है। एवं यथा-विधि ध्यान प्रभाव से देह अवसानकाल में, परम कल्याण-कारी असीम कृपा निधान भोगापवर्गदाता सगुण ब्रह्मश्री श्री भगवान् में चित्तविलीन होने से, श्री श्री भगवल्लोक प्राप्ति, अर्थात् सालोक्यादि मुक्ति लाभ होता है। और साधन-चतुष्टय संपन्न होकर, यथाविधि निदिध्यासन प्रभाव से, अंतः करणवृत्ति, कार्य कारणात्मक समस्त जगत् को परित्याग करके, एकमात्र अखंडाद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूपब्रह्म में सबीज रूप से विलीन होने पर, जीवन्मुक्तअवस्था प्राप्त होती है। अर्थात् परमात्मा के सहित जीवात्मा की सामयिक एकता सिद्धि, तथा निरावरण ब्रह्मानंद का अनुभव होता है। अपिच प्रारब्ध भोगावसान काल में ईश्वर की इच्छा से, कृतकृत्य जीवन्मुक्त मानव की अविद्या उपाधि, निर्बीज रूप से प्रलय होने के कारण, दुःखों की आत्यंतिक निवृत्ति तथा नित्य निरतिशय सुख संप्राप्ति रूप कैवल्य मुक्ति लाभ सिद्ध होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अवशिष्ट वक्तव्य यह है कि यहाँ पर प्रधान प्रधान फल मात्र ही वर्णित हुआ है। परंतु एतद् भिन्न अनेक प्रकार के अप्रधान वा अवान्तर फल समूह भी भिन्न भिन्न साधन काल में अवश्य ही प्राप्त होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



# अथ अधिकारी निरूपण

सनातन धर्मी तथा सनातन धर्म त्यागी अथवा कहो कि आत्म धर्म त्यागी म्लेच्छ वा यवनादि अर्थात् बौद्ध, जैन, ईसाई; मुसलमान प्रभृति अर्वाचीन वा परवर्ती धर्मावलंबी जो कोई भी क्यों न हो, शक्ति तथा रुचि संपन्न विश्व के समस्त नर नारी ही निर्मलवाणी वर्णित परम शांतिकारक अपिच सार्वदेशिक तथा सार्वजनिक सामान्य धर्मों के अनुष्ठान वा आचरण करने का अधिकारी है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



## अथ नामार्थ वर्णन :—

"निष्कलं निर्मलं शांतं सर्वातीतं निरामयम् ।
तदेव जीवरूपेण पुण्यपापफलैर्वृतम्" ॥
ज्ञातं येन निजं रूपं कैवल्यं परमं पदम् ।
निष्कलं निर्मलं साक्षात् सच्चिदानन्दरूपकम् ॥
ज्ञाननेत्रं समादाय चरेद् वह्निमतः परम् ।
निष्कलं निर्मलं शान्तं तद् ब्रह्माहमिति स्मृतम्" ॥

इत्यादि श्रुति वाक्यों से निर्मल शब्द का अर्थ यहाँ पर आत्मा अर्थात् ब्रह्म ही सिद्ध होता है। अतएव निर्मल संबंधी वाणी को निर्मलवाणी कहना उचित ही है। एवं सत्यनारायण कथा का अर्थ भी इस प्रकार है कि —त्रिकालाबाध्य सच्चिदानंद स्वरूप आत्मा ही सत्य है। और जो सत्य है वही नारायण है, अतएव सत्यनारायण संबंधी कथा को सत्यनारायण कथा नाम से अभिहित करना उचित ही है। अपिच निर्मल वाणी वा सत्यनारायण कथा इस ग्रन्थ में वर्णित होने के कारण यह ग्रन्थ भी निर्मलवाणी वा सत्यनारायण कथा नाम से अभिहित हुआ है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



# प्रथम परिच्छेद

## विषय विविध

### अथ मंगलाचरणम्

ॐ—नित्यानंदं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्त्तिं
विश्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥

ॐ—शिवोगुरुः शिवोवेदः शिवोदेवः शिवः प्रभुः ।
शिवोऽस्म्यहं शिवः सर्वं शिवादन्यन्न किंचन ॥

ॐ—पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ—शांतिः शांतिः शांतिः ।

ॐ पूर्णमदः.....यह मंत्र अत्यधिक सारगर्भान्वित वा रहस्यपूर्ण होने के कारण इसका पदान्वय के सहित सुस्पष्ट रूप से भाषार्थ वर्णन किया जाता है। यथाः—



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पदान्वय.....सुस्पष्ट भाषार्थ
(बिंबरूप चित् से प्रतिबिंबरूप चिदाभास वस्तुतः अभिन्न होने के कारण)

ॐअदः.....ओंकार वाच्य परोक्ष ज्ञान का विषय माया में भासमान प्रतिबिंबरूप चिदाभास अथवा कहो कि मायाविशिष्ट साकार ईश्वर वस्तुतः

"पूर्णम्".....अखंडाद्वितीय सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म ही है।

(अपिच).....(एवं)

"इदं".....प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय अविद्या में भासमान प्रतिबिंबरूप चिदाभास अथवा कहो कि अन्तःकरण विशिष्ट साकार जीवात्मा भी वस्तुतः

"पूर्णम्".....अखंडाद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म ही है।

(सृजनकाले)...सृष्टिकाल में

"पूर्णात्".....अखंडाद्वितीय बिंबरूप चित् से,

"पूर्णम्".....अखंडाद्वितीय प्रतिबिंबरूप चिदाभास,

"उदच्यते" उपाधि में भासमान होता है अथवा कहो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कि प्रादुर्भाव होता है।

"पूर्णस्य पूर्णमादाय"....पूर्ण का पूर्ण को लेकर (अर्थात् आत्यन्तिक प्रलयकाल में उपाधि का अभाव होने के कारण बिंब का प्रतिबिंब बिंब में विलीन होने पर)

"पूर्णमेव".....एकमात्र अखंडाद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म ही

"अवशिष्यते"....अवशेष रहता है।

"ओं शांतिः शांतिः शांतिः....अर्थात् वक्ता तथा श्रोताओं के त्रिविध विघ्न शांति के लिये तीन बार शांति पाठ किया जाता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



## कथा प्रारंभ

निर्मलं निर्गुणं ब्रह्म सच्चिदानन्दरूपकम् ।
सत्यनारायणं चैव कारणोपाधि संयुतम् ॥
कार्योपाधिविशिष्टं च सत्यनारायणात्मकम् ।
ध्यात्वा नत्वा च तत्कथां तमेव श्रावयाम्यहम् ॥

भाषार्थ—"निर्मलं" शुद्धचैतन्यं अर्थात् उपाधिसंग विनिर्मुक्त सच्चिदानन्दात्मक साक्षि-स्वरूप निर्गुण ब्रह्म को और कारणोपाधि संयुक्त अथवा कहो कि मायोपाधि विशिष्ट सत्यनारायणस्वरूप सच्चिदानन्दात्मक ईश्वर-चैतन्य को, अपिच कार्योपाधिविशिष्ट सच्चिदानन्दात्मक देवता, ऋषि, पितर और आचार्य प्रभृति सत्यनारायणस्वरूप जीवचैतन्य को, प्रेमाद्रचित्त से चिन्तन अथवा स्मरण, अपिच नमस्कार करके, निर्मलवाणी वा सत्यनारायणकथा आत्मकल्याणार्थ सत्यनारायण को ही सुनाता हूँ ।

## अथ मानव की श्रेष्ठता:—

पशु आदि की अपेक्षा मानववृन्द जो श्रेष्ठत्व का अभिमान पोषण करते हैं, एवं सनातन धर्मशास्त्र में भी जो मानव का ही श्रेष्ठत्व वर्णित हुआ है, इसका कारण

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अनुसंधान करने से यही जानने में आता है कि एकमात्र बुद्धि का आधिक्य ही उपरोक्त श्रेष्ठत्व का असाधारण कारण है। परंतु यह बुद्धि भी पुनः भोगबुद्धि तथा धर्मबुद्धि के भेद से दो भागों में विभक्त होकर वर्णित हुई है। इन दोनों के बीच में भोगबुद्धि तो पशुपक्षी चींटाचींटी मक्षिका मशक इत्यादि अति अधम प्राणि समूह में भी मानव के तुल्य रूप में ही विद्यमान है। परंतु शास्त्रीय धर्मबुद्धि पशु आदि में नहीं है, और मनुष्य में है, इसीलिए मानवगण श्रेष्ठत्व का अभिमान पोषण करते हैं।

नीतिशास्त्र में भी वर्णित हुआ है कि :—

**आहारनिद्राभयमैथुनंच सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।**
**धर्मोहि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥**

इसका भावार्थ यह है कि आहार, निद्रा, भय, मैथुन—अपिच भोगसाधन प्रापक कर्म संपादन संतानादि का पालन पोषण, शत्रुता, मित्रता, छीना-झपटी, मारपीट इत्यादि व्यवहार तो जैसा मनुष्य करते हैं; पशु आदि भी ठीक वैसे ही करते हैं। परंतु पशु आदि में शास्त्रीय धर्मबुद्धि के अभाव होने के कारण वे शास्त्रविहित धर्माचरण करने में असमर्थ हैं और मनुष्य में शास्त्रीय धर्मबुद्धि की विद्यमानता हेतु, मानवगण धर्माचरण करने में समर्थ हैं। सुतरां पशु आदि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



की अपेक्षा मनुष्य में यह विशेषत्व ही दृष्टिगोचर होता है। अतएव जो सकल नरनारीगण धर्माचरण विहीन होकर, केवल पशुतुल्य व्यवहार में ही सर्वदा निरत रहते हैं, कितना ही धन,जन, विद्या, बुद्धि, रूप गुणादि संपन्न क्यों न हों; वे सब नरनारीगण तो पशु के ही तुल्य हैं। तात्पर्य यह है कि परमेश्वर ने भोग एवं मोक्ष के लिये मानववृन्द का सृजन किया है। अतएव कैवल्य मुक्ति का साधन रूप धर्माचरण विवर्जित होकर, जो सकल नरनारीगण आजीवन केवल भोगप्रापक कर्म में ही निरत रहते हैं; लोकनायकता, विद्या, बुद्धि, बल, गौरव, शूरता-वीरता, नाम, यश, धन, जन, यौवन, रूपलावण्य, मधुरभाषिता, अनलसता, व्यवहारकुशलता, प्रभृति गुणगण समन्वित, उन सब नरनारीगण को भी, पशुतुल्य कहकर, लोकहितैषी नीतिज्ञ पुरुषों ने अतिशय निन्दा की है। निन्दा करने का अभिप्राय यह है कि बुद्धिमान् बुद्धिमती नरनारीगण, आजीवन केवल भोगप्रापक कर्म में ही निरत न रहकर, भलीभांति विचारपूर्वक निज निज शक्ति अनुसार मोक्षसाधनरूप धर्माचरण में अर्थात् निष्काम कर्मादि में प्रवृत्त होकर, क्रमशः मानवजन्म की सफलता सिद्ध करें। नीतिशास्त्रोक्त निन्दा का अभिप्राय अन्य कुछ भी नहीं है। कथाप्रसंगवशतः, अधुना यद्यपि धर्मसम्बन्ध में कथन करना

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ही समीचीन था तथापि वह क्रियात्मक होने के कारण, पहिले कर्मसम्बन्ध में कुछ कथन करके, पीछे धर्मसम्बन्ध में कथन किया जायगा।

## अथ कर्म :—

स्वाभाविक तथा अस्वाभाविक भेद से द्विविध कर्म का स्वरूप वर्णन किया जाता है। यथा :—

प्रथम—निमेष, उन्मेष, छींक, जँभाई, उद्गार, वमन, अपिच क्षुधा, तृष्णा, श्वास, प्रश्वास, मलमूत्रादि विसर्जन प्रभृति जो सकल कर्म संपादन करने के लिये, इच्छा वा मनोनिवेश करने का आवश्यक नहीं होता है; अर्थात् स्वभावतः ही जो सकल कर्म संपादित होता है उसे स्वाभाविक कर्म कहते हैं।

द्वितीय—अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ, दान, प्रजापालन, शिल्प, वाणिज्य, सेवापूजन, सत्संग, सद्विचार प्रभृति जो सकल कर्म संपादन करने के लिये, इच्छा वा मनोयोग करने का प्रयोजन होता है, उसे अस्वाभाविक कर्म कहते हैं।

अथ शुक्लादि भेद से चतुर्विध कर्म का स्वरूप वर्णन किया जाता है। यथा :—

१—शुक्ल कर्म अर्थात् जिस कर्म से केवल सुख भोग

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



होता है उसे शुक्लकर्म अथवा पुण्यकर्म कहते हैं।

२—कृष्णकर्म—अर्थात् जिस कर्म से केवल दुःख भोग होता है, उसे कृष्णकर्म अथवा पापकर्म कहते हैं।

३—शुक्लकृष्णकर्म—अर्थात् जिस कर्म से सुख भोग भी होता है और साथ ही साथ दुःख भोग भी होता है, उसे शुक्लकृष्णकर्म अथवा पुण्यपाप मिश्रित कर्म कहते हैं।

४—अशुक्लकृष्णकर्म—अर्थात् जो पुण्यकर्म भी नहीं है, और पापकर्म भी नहीं है, तथा पुण्य पाप उभय मिश्रित कर्म भी नहीं है अर्थात् जो कर्म शुक्लादि त्रिविध कर्म से विलक्षण है उसे ही अशुक्लकृष्णकर्म कहते हैं।

श्रुति भगवती ने कहा है कि

"कर्म चाशुक्लकृष्णं ज्ञानीनां त्रिविधमितरेषाम् ॥"

अर्थात् अशुक्लकृष्णकर्म ज्ञानियों का है, एवं शुक्ल और कृष्ण तथा शुक्लकृष्ण उभय मिश्रित यह त्रिविध कर्म ज्ञानी से भिन्न इतर पुरुषों का है। तात्पर्य यह है कि अभिमान पूर्वक अनुष्ठित कर्म ही फल समन्वित होता है। एवं अप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानियों का देहादि अनात्मवस्तु में अभिमान न रहने के कारण, ज्ञानोदय के अनंतर, ज्ञानी देहकृतकर्म निचय फल संबंध विरहित होता है। अतएव फल समन्वित शुक्लादि त्रिविध कर्म से विलक्षण फल विहीन अशुक्लकृष्ण-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कर्म केवल अप्रतिबद्ध अपरोक्ष ज्ञानी देह द्वारा ही अनुष्ठित होता है। और ज्ञानविहीन हेतु, अभिमान विशिष्ट प्राणी देह द्वारा फल समन्वित शुक्ल एवं कृष्ण तथा शुक्ल कृष्ण उभय मिश्रित यह त्रिविध कर्म अनुष्ठित होता है।

पातंजलदर्शन में भी उक्त हुआ है कि "कर्माशुक्लकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्" कै० ७ सु० ॥

अथ प्रारब्ध आदि भेद से त्रिविध कर्म का स्वरूप वर्णन यथा :—

( १ )

प्रारब्धकर्म—अर्थात् अतीत और वर्तमान देहकृत असंख्य कर्मों के बीच में, कर्मफलदाता परमेश्वर के संकल्पानुसार, वर्तमान देह में जो सकल कर्मों का फल भोग होता है; उसे प्रारब्धकर्म कहते हैं।*

---

*टिप्पनीः—व्यवहार में जैसे पूर्ण वाक्य न कहकर संक्षिप्त करके, अंशमात्र का ही कथन किया जाता है, वैसे श्रुति भगवती ने भी कहीं कहीं अंशमात्र का ही कथनपूर्वक स्वकीय अभिप्राय ज्ञापन किया है। जैसा नादविन्दूपनिषद् में वर्णित हुआ है किः—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कर्म जन्मान्तरीयं यत् प्रारब्धमिति कीर्तितम् ।
तत्तुजन्मान्तराभावात् पुंसोनैवास्ति कर्हिचित् ।। इत्यादि

यहाँ पर प्रारब्ध कर्म का स्वरूप वर्णन करना श्रुति भगवती का अभिप्राय नहीं है। किंतु प्रारब्धकर्म का संक्षिप्त लक्षण कथनपूर्वक देह तथा जन्म कर्मादि का मिथ्यात्वज्ञापन करना ही श्रुतिभगवती का अभिप्राय है। और यद्यपि पूर्वजन्म के सहित वर्त्तमान जन्म को मिलाकर श्रुति वाक्य का अर्थ निरूपण करने से किसी प्रकार का भी दोष अथवा विरोध नहीं होता है। तथापि ऐसा निर्विरोध अर्थ न करके, अपिचः—

अर्थात् प्रकरणाल्लिगादौचित्याद्देशकालतः ।
शब्दार्थास्तु विभज्यन्ते न रूपादेव केवलम् ।"

इस विधि वाक्य उल्लंघन पूर्वक, श्रुति उक्त शब्द के स्वरूप-मात्र को ही देखकर आधुनिक काल की अधिकांश विद्वन्मंडली, केवल जन्मान्तरीय कर्म को ही प्रारब्ध कर्म कहती है। परंतु ऐसा कहना ठीक नहीं है। कारण यह है कि—

त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः ।
अत्युत्कटैः पापपुण्यैरिहैव फलमश्नुते ।।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इत्यादि शास्त्रीय वचन से प्रमाणित होता है कि वर्तमान जन्म में किया हुआ अति उत्कट पाप पुण्य रूप कर्मों का फल, ईश्वरकृत संकल्प वशतः प्रारब्ध रूप में परिणत होकर इसी जन्म में ही फलभोग होता है। अपिचः—

प्रत्यक्षतया भी देखने में आता है कि इसी जन्म में की हुई लूट पाट, चोरी, डकैती प्रभृति अति उत्कट पाप कर्म का फल इसी जन्म में ही भोग करते हैं। अतएव शास्त्रीय प्रमाण तथा प्रत्यक्ष प्रमाण विरुद्ध होने के कारण, केवल पूर्वजन्मकृत कर्मों को ही प्रारब्ध कर्म कहना विचार संगत नहीं है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



( २ )

आगामी कर्म—अर्थात् ब्रह्मज्ञान विहीन प्राणियों का, अतीत और वर्तमान देहकृत कर्म निचय के बीच में, जिस कर्म के प्रभाव से मरण काल में, आगामी देह भासमान तथा प्राप्त होता है; उसे आगामी कर्म कहते हैं। तात्पर्य यह है कि श्रुति उक्त तृणजलौकागमनवत्, तथाच गीतोक्त नवीनवस्त्रग्रहणवत् मरणकाल में जिस कर्म के प्रभाव से, आगामी देह भासमान होता है; एवं जिस कर्म के प्रभाव से, दृश्यमान आगामी देह में अहंतारूप अभिमानपूर्वक वर्तमान देह परित्यक्त होकर आगामी देह प्राप्त होता है; उसे आगामी कर्म कहते हैं।

(एकादश परिच्छेद में आगामी कर्म की समालोचना देखो)

( ३ )

संचित कर्म—अर्थात् ब्रह्मज्ञान विहीन प्राणियों का अतीत और वर्तमान देहकृत कर्म समूह से, प्रारब्ध और आगामी कर्म को पृथक् करके, अवशिष्ट समस्त कर्म को ही संचित कर्म कहते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



## अथ कर्म संचय के हेतु आदि वर्णन

एक व्यक्ति एक दिन में अथवा एक जन्म में जो सकल कर्म संपादन करता है; उन कर्मों का फल वह एक दिन में अथवा एक जन्म में भोग करके समाप्त नहीं कर सकता है। मान लो कि प्रांत के शासनकर्त्ता को प्रमाद अथवा अविचारवशतः किसी ने जूता मारा; इस कार्य के संपादन करने में तो एक मिनट भी नहीं लगा। परंतु उसको उक्त कर्म के फल भोगार्थ न्यून कल्प में छः महीने तक कारादंड भोगना पड़ता है। और ऐसा भी सुनने में आता है कि अति-अल्प काल में किया हुआ एक मात्र कर्म के फल भोगार्थ अनेक बार जन्म लेना पड़ता है। उदाहरण यथा :—

श्री श्री भगवान् के पारिषद जय विजय को भी अनुचित भाव से सनकादि मुनियों का गतिरोधात्मक कर्म के फल भोगार्थ, तीन बार जन्म लेना पड़ा। कर्म की गति अति दुर्ज्ञेया है। कर्मवशतः ही गर्भस्थिति काल में, एवं प्रसव, शैशव, बाल्य, यौवन, तथा वार्द्धक्य अवस्था में, अपिच रोग, शोक, और मरणादि काल में, सहन योग्य तथा असहनीय नानाविध दुःखों का भोग होता है। सृष्टि काल से ही प्राणि-गण, निज-निज कर्म फल भोगार्थ उद्भिज्ज, स्वेदज, अंडज,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जरायुज प्रभृति नानाविध योनियों में पुनः पुनः जन्म लेकर, अनेक प्रकार के दारुण दुःख भोग रहे हैं, तथापि संचित कर्म का प्रक्षय नहीं होता है; वरंच क्रमशः वृद्धि होती है। क्योंकि आय अधिक और व्यय अल्प, अतएव संचय तो अवश्य ही रहेगा, अन्य द्रव्य समूह को चोर डाकू आदि ले सकते हैं; तथा अग्नि जल आदि भी विनष्ट कर सकते हैं। परन्तु यह अन्तःकरणस्थ संस्कारात्मक संचित कर्म निचय को चोर डाकू आदि भी नहीं ले सकते हैं; तथा अग्नि जलादि भी विनष्ट नहीं कर सकते हैं।

"ध्रुवं जन्म मृतस्य च"

अर्थात् मरने से तो अवश्य ही जन्म लेना पड़ेगा। एवं सहस्र वार मरने पर भी कर्म तुम को नहीं छोड़ेगा। अतएव कर्म फल भोगार्थ पुनः पुनः जन्ममरणादिजनित दारुण दुःखों की निवृत्ति भी नहीं होवेगी। अथच दुःखों की निवृत्ति तथा सुख संप्राप्ति तो प्राणिमात्र को ही अति आकांक्षित हैं। परन्तु केवल भोगप्रापक कर्म परायण प्राणिगण, दुःख निवारण, तथा सुख संप्राप्ति कारण, जो सकल उपाय अवलंबन करते हैं उससे कभी-कभी वर्तमान दुःखों की निवृत्ति, तथा सामयिक सुख संप्राप्ति होते हुए भी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कुछ काल के पश्चात् ही पुनरपि वे दुःख निचय आकर उत्पीड़न करते हैं। अथवा वर्तमान दुःख की निवृत्ति न होते हुए ही अन्यान्य दुःख निचय उपस्थित होकर आलिंगन करते हैं। पहिले पिता, माता, पत्नी, तथा पुत्रादियों से सुख प्राप्त होता था। परन्तु अब तो अर्थाभाव निबन्धन, अथवा अप्रिय वा असद्व्यवहार वशतः वे भी दारुण दुःख के ही कारण हुए हैं। किंवा अतिशय अपमानवशतः अथवा परितृप्त न होते हुए ही प्राणोपम सुख के साधन, अकाल में ही काल प्राप्त हुआ है। इत्यादि कारणवशतः दुःख असहिष्णु विचारविहीन अपरिणाम दर्शी एवं मोहाविष्ट, भ्रष्टमति, अथच, एम० ए०-बी० ए० पास कोई कोई मानव मानवी, वर्तमान दुःखों की अपेक्षा से भविष्य में, अत्यधिक दुःखदात्री, अतिनिन्दनीय महापापरूप आत्महत्या को भी स्वेच्छा से वरण करता है। आत्महत्या तो कर चुके, परन्तु दुःख की तो किंचन्मात्र भी अल्पता नहीं हुई। प्रत्युत आत्महत्या करने के कारण दुःखों की मात्रा में तो और भी बहुत वृद्धि हुई है। इस प्रकार से केवल भोग प्रापक कर्म परायण प्राणिगण, पुनः पुनः शत सहस्र उपायों के अवलम्बनपूर्वक, प्राणपण प्रयत्न करते हुए भी, सर्वसाधारण के अति आकांक्षित दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति तथा नित्य निरतिशय सुख संप्राप्ति

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जो नहीं हो रही है। इस विषय में तो किसी को भी सन्देह नहीं है। परन्तु इसलिये ऐसा न समझना कि दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति तथा नित्य निरतिशय सुख संप्राप्ति का कोई भी उपाय नहीं है। क्योंकि परम कल्याणकारी असीम कृपानिधान भोगापवर्गदाता सगुणब्रह्म श्री श्री परमेश्वर ने दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति, तथा नित्य निरतिशय सुख संप्राप्ति का अपेक्षाकृत अल्पकाल साध्य एवं सहज उपाय वेदशास्त्र में भलीभांति वर्णन किया है। वह उपाय यह है कि सद्गुरु के मुख निःसृत, नानाविध युक्ति समन्वित, ब्रह्मविद्या प्रतिपादक, वेदाविरुद्ध वेदान्त वाक्य श्रवण, मनन और यथाविधि निदिध्यासन द्वारा अप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान प्राप्त होने से ही, निरतिशय सुख प्राप्त होता है। एवं संचित कर्म निचय भी ज्ञानाग्नि द्वारा विदग्ध होता है। सुतरां कर्म फल भोगार्थ और जन्म लेना नहीं पड़ेगा। एवं ज्ञानियों की मृत्यु भी नहीं होती है। अतएव द्वितीय नरक तुल्य मृत्यु यातना गर्भयातना प्रभृति और कभी भी ज्ञानियों को स्पर्श नहीं करेगी। परन्तु ज्ञानोदय के पहिले, कर्मफलदाता परमेश्वर ने, जो सकल कर्म फल भोगाने का संकल्प किया है, प्रारब्ध नाम से अभिहित वे कर्म फल तो ज्ञानियों को भी अवश्य भोगने पड़ेंगे। क्योंकि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ईश्वर का संकल्प कभी भी मिथ्या नहीं होता है। अतएव प्रारब्ध भोगावसान काल में ही ज्ञानियों के दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति तथा नित्य निरतिशय सुख संप्राप्ति रूप कैवल्य मुक्तिलाभ सिद्ध होता है। कर्म प्रसंग यहाँ पर ही समाप्त करके अधुना धर्म सम्बन्ध में संक्षेपतः कुछ कथन किया जाता है।

## अथ धर्म

वेद विहित, एवं वेदाविरुद्ध अन्यान्य शास्त्र विहित कर्म का अनुष्ठान ही साधारणतया धर्म नाम से अभिहित होता है। परन्तु यह धर्म पुनः सामान्य तथा विशेष भेद से द्विविध है। तद् यथा :—

जो धर्म, अल्प देश व्यापक है, उसे विशेष धर्म कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस धर्म में, सर्वसाधारण नर-नारियों का तुल्य रूप अधिकार नहीं है; अर्थात् जो धर्म भिन्न-भिन्न वर्णाश्रमस्थ व्यक्ति विशेष में निबद्ध है; एवं जो धर्म, सांप्रदायिक व्यक्ति विशेष में निबद्ध है; अपिच जो धर्म, स्त्री लोक, अथवा पुरुष में ही निबद्ध है; उसे विशेष धर्म कहते हैं। जैसा—ब्राह्मणादि वर्णधर्म, ब्रह्मचर्यादि आश्रमधर्म, सामाजिकधर्म, राजधर्म, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इत्यादि सांप्रदायिकधर्म, स्त्रीधर्म, पुरुषधर्म प्रभृति। अपर जो धर्म, अधिक देश व्यापक है; अथवा जो धर्म सार्वदेशिक तथा सार्वजनिक है; उसे सामान्य धर्म कहते हैं। तात्पर्य यह है कि सृजनकर्ता ईश्वरोपदिष्ट सनातन वैदिक धर्मावलंबी हो, अथवा परवर्त्ती वा आधुनिक काल के प्रचलित बौद्ध, जैन, ईसाई, मुसलमान प्रभृति जो कोई भी धर्मावलंबी ही क्यों न हो, शक्ति तथा रुचि संपन्न समस्त नर-नारियों का ही जिस धर्म में तुल्य रूप अधिकार विद्यमान है; उसे सामान्य धर्म कहते हैं।

केवल भारतवर्ष के ही नहीं, शक्ति तथा रुचि संपन्न विश्व के समस्त नर-नारियों का ही सामान्य धर्म में तुल्य रूप अधिकार है।

विश्वशांति के लिये जगन्माता श्रुतिभगवती ने सामान्य धर्म का स्वरूप इस प्रकार से वर्णन किया है कि:—

"धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥"

इति नारदपरिव्राजकोपनिषत्॥

भाषार्थ—विश्वहितैषिणी श्रुति भगवती ने विश्व के समस्त नरनारियों के परम कल्याणार्थ, धृति, क्षमा, दम,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धी, विद्या, सत्य एवं अक्रोध ये दश विध सामान्य धर्म के लक्षण वर्णन किये हैं।

## धृति आदि के अर्थ यथा :—

प्रथम धृति-अर्थात् धृति शब्द का साधारण अर्थ धारण है, यहाँ पर सुस्पष्टार्थ यह है कि सद्गुरु का उपदिष्ट, परम-कल्याण कारक वेद वाक्यार्थ धारण तथा वेदाविरुद्ध वेदांतादि शास्त्रीय वाक्यार्थ धारण, अहिंसा तथा ब्रह्मचर्यादि व्रत धारण, धैर्य धारण इत्यादि अनेक प्रकार के धारण ही धृति नामक धर्म नाम से अभिहित होता है।

द्वितीय क्षमा—अर्थात् परापराध सहन करने को क्षमा धर्म कहते हैं।

तृतीय दम—अर्थात् मनोनिग्रह को दम कहते हैं। अभिप्राय यह है कि शास्त्रनिषिद्ध हानिकारक विषयों से, तथा अनावश्यकीय विषयों से, मन को हटाकर, शास्त्र विहित अभीष्ट विषय में मनोनिबद्ध करने को दम धर्म कहते हैं।

चतुर्थ अस्तेय—अर्थात् अवैध रूप से मन वाणी देह द्वारा परद्रव्य ग्रहण न करने को अस्तेयधर्म कहते हैं।

पंचम शौच—अर्थात् शुद्धि को ही शौच कहते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



बाह्य एवं आभ्यंतर भेद से शौच द्विविध है। यथा:—जल मिट्टी आदि द्वारा स्थूल देह शुद्धि करने को बाह्य शौच कहते हैं। तथा, यथाविधि निष्काम कर्म के अनुष्ठान द्वारा अन्तःकरण शुद्ध करने को आभ्यन्तर शौच कहते हैं।

षष्ठ इन्द्रियनिग्रह—अर्थात् नेत्रादि इन्द्रियों को शास्त्र-निषिद्ध अहितकर विषयग्रहण से निवृत्त, तथा निष्प्रयोजनीय विषय ग्रहण से निवृत्त करना ही इन्द्रियनिग्रहरूपधर्म नाम से अभिहित होता है।

सप्तम धी—अर्थात् दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति तथा नित्य निरतिशय सुखसंप्राप्ति रूप मोक्ष विषयिणी बुद्धि, यहाँ पर धी धर्म नाम से अभिहित होती है।

अष्टम विद्या—अर्थात् वेद वेदान्तादि शास्त्र श्रवण और मनन जनित परोक्षज्ञान ही यहाँ पर विद्याधर्म नाम से अभिहित होता है।

नवम सत्य—अर्थात् जैसा देखा, एवं जैसा सुना, अपिच जैसा समझा, सर्वभूतहितार्थ ठीक वैसा ही बोलने को सत्यधर्म कहते हैं।

दशम अक्रोध—अर्थात् क्रोध न करना ही अक्रोध रूप धर्म नाम से अभिहित होता है।

श्री श्री भगवान् मनु जी ने भी सर्वसाधारण के लिये,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



स्वकृत धर्मशास्त्र में अर्थात् मनुस्मृति में, श्रुतिवर्णित धृत्यादि दशविध धर्मलक्षण वर्णन किया है।

अपर परमहितैषिणी श्रुति भगवती ने विश्वशांति के लिये, अथवा कहो कि राजा प्रजा धनी वा दरिद्र, स्वदेशी, विदेशी, जो कोई भी क्यों न हो, अर्थात् सनातन धर्मावलंबी हो, अथवा बौद्ध, जैन, ईसाई, मुसलमान प्रभृति जो कोई भी धर्मावलंबी ही क्यों न हो, शक्ति तथा रुचि संपन्न समस्त नरनारियों के, निरतिशय शांति वा कैवल्य मुक्ति लाभार्थ, परमधर्म का स्वरूप इस प्रकार से कथन किया है कि—

"यतोऽभ्युदयो निश्रेयसः सिद्धिः सः परमोधर्मः"।

बात यह है कि—"ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः" "ज्ञानादेव तु कैवल्यम्" इत्यादि श्रुति वचनानुसार "यतोऽभ्युदयो निश्रेयसः सिद्धिः सः परमोधर्मः"। इस श्रुति वाक्य का सुस्पष्ट अर्थ यह है कि—"यतः" जिस अप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान से 'निश्रेयसः सिद्धिः"—अर्थात् सर्वोत्तमसिद्धि, अथवा कहो कि—परमात्मा के सहित जीवात्मा की एकता सिद्धि "अभ्युदयः" (भवति) अर्थात् प्रादुर्भाव होता है सः (एव) परमोधर्मः (उच्यते) वह अप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्म-ज्ञान एव परमधर्म नाम से अभिहित होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



और एक बात यह है कि साधन चतुष्टय संपन्न व्यक्ति ही, श्रुति भगवती वर्णित परमधर्म का, अथवा कहो कि निदिध्यासन रूपज्ञानयोगानुष्ठान करने का अधिकारी है। अतएव सर्वसाधारण के विदितार्थ साधन चतुष्टय का स्वरूप यहाँ पर वर्णन किया जाता है।

## अथ साधन चतुष्टय :—

प्रथम साधन—नित्यानित्य वस्तु विवेक, द्वितीय साधन इहामुत्र फल भोग विराग, तीसरा साधन, शमदमादि षट् संपत्ति, चौथा साधन—मुमुक्षुता, इन चार साधनों को ही साधनचतुष्टय कहते हैं।

नित्यानित्य वस्तु विवेकादि के अर्थ। यथा:— नित्यानित्य वस्तुविवेक-अर्थात् निजनिज अनुभव, तथा वेद एवं वेदाविरुद्ध वेदांतादि शास्त्रीय प्रमाण, अपिच युक्ति अवलंवन पूर्वक विचार करने से इत्याकार ज्ञानोदय होता है कि त्रिकालावाध्य अर्थात् सदा अपरोक्ष स्वरूप एकमात्र अखंडाद्वितीय सच्चिदानंदात्मक ब्रह्म, अथवा आत्मतत्त्व ही नित्य वा सत्य है, और तद्भिन्न प्रत्यक्ष आदि प्रमाण वाध्यकार्य कारणात्मक समस्त जगत् ही अनित्य अथवा मिथ्या है, इत्याकार नित्यानित्य वस्तु विषयक संदेह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



रहित ज्ञान को ही नित्यानित्य वस्तु विवेक कहते हैं।

द्वितीय साधन—"इहामुत्रफल भोगविरागः" अर्थात् इहलौकिक तथा स्वर्गादि पारलौकिक शब्द-स्पर्श-रूप-रस गंध ये पंचविध विषय सम्भोग जनित आनंद में तुच्छ बुद्धि होने के कारण, इह पारलौकिक फल भोग में आसक्ति शून्यता को इहामुत्र फल भोग विराग कहते हैं। **कोई यदि ऐसी आशंका करे कि**—विषयसंभोगजनित आनंद में तुच्छबुद्धि होने का कारण क्या है? तो इसके उत्तर में ऐसा कहा जा सकता है कि—पशु, पक्षी, मनुष्य प्रभृति प्राणिगण साधारणतः यथेच्छाचार भाव से शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध ये पंचविध विषयसंभोग में ही निरत रहते हैं। परंतु विचारवान् मानवगण क्रमशः सत्संग तथा शास्त्रीयसंस्कार वशतः यथेच्छाचार से निवृत्त होकर, इहलौकिक तथा स्वर्गादि पारलौकिक, अधिक सुख भोगार्थ, शास्त्रविहित सकाम कर्म के अनुष्ठान करने में प्रवृत्त होते हैं। एवं सुसम्पादित कर्मसमूह का फल भी ईशनिर्द्दिष्ट काल में प्राप्त होता है, परंतु ईश्वरकृत नियम वशतः सकाम कर्म के अनुष्ठान में, यत्किंचित् अंगहीनता दोष निबंधन, अनुष्ठितकर्म का फल प्राप्ति न होने को देख सुनकर, तथा अनुष्ठितकर्माङ्गभूत किसी मंत्र का स्वर वर्णादि असावधानता निबंधन, विपर्यय रूप

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



से उच्चारित होने के कारण, विपरीत फल प्राप्ति को देख सुनकर, अपिच यथोक्त फल प्राप्त होते हुये भी, भोगद्वारा कर्म फल अवसान होने पर, इस लोक में राज्यादि विध्वंस कालमें, अतिशय दुःख रूप, दोष संदर्शन करके, एवं परलोक में स्वर्गादि से पतनकाल में, अत्यधिक दुःखरूप दोषदर्शन करके, और निष्काम कर्म में, उपरोक्त दोष संबंध न होने के कारण, तथा अव्यर्थ अपिच प्रत्यक्ष फल दायक होने के कारण, सकाम कर्म को परित्याग करके, निष्काम कर्म करने में ही प्रवृत्त होते हैं। एवं यथाविधि निष्काम कर्मानुष्ठान द्वारा अंतःकरण-शुद्ध होने पर, विशुद्धांतःकरण में वेद एवं वेदाविरुद्ध वेदांतादि शास्त्रीय प्रमाण तथा नानाविध युक्ति-समन्वित तत्त्वनिरूपक शक्ति विशिष्ट अपूर्व विचार उत्पन्न होता है। अनंतर पुनः पुनः विशुद्धांतः करणोद्भूत शुभविचार प्रवाह द्वारा इह-पारलौकिक विषय संभोग में, तथा भोग्य वस्तुनिचय में अपिच भोग साधन रूप देह में अनित्यता, सातिशयता, विरसता, परतंत्रता, तथा जन्म, मृत्यु, जरा, अपिच रोगादि जनित अत्यधिक दुःखरूप दोषों का बारंबार संदर्शन हेतु, और कैवल्यमुक्ति लाभ में, दुःख की आत्यंतिक निवृत्ति तथा नित्यनिरतिशय सुख संप्राप्ति रूप गुण संदर्शन हेतु, विचारवान् मुमुक्षु

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



नरनारियों की क्षणभंगुर विषयानंद में तुच्छ बुद्धि होती है।

तृतीय साधन—शमदमादि–षट्संपत्ति अर्थात् शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान, इन छै प्रकार की संपत्तियों को शमदमादि षट् संपत्ति कहते हैं।

## शम दमादियों का अर्थ यथा :—

शम–अर्थात् मनोनिग्रह एव शमनाम से अभिहित होता है। तात्पर्य यह है कि अतिशय चंचल स्वभाव मन को शास्त्र निषिद्ध अपिच निष्प्रयोजनीय रूप रसादि नाना-विध विषयों से हटाकर, यथानिर्दिष्ट समयोपयोगी नित्य नैमित्तिक निष्काम कर्म में ही निबद्ध करने को शम कहते हैं।

दम–अर्थात् इन्द्रिय निग्रह करने को दम कहते हैं।

तात्पर्य यह है कि नेत्रादि इन्द्रिय को शास्त्रनिषिद्ध अपिच निष्प्रयोजनीय रूपरसादि विषय ग्रहण से हटाकर यथा निर्दिष्ट समयोपयोगी नित्य नैमित्तिक निष्काम कर्मांगभूत विषयों में निवद्ध करने को दम कहते हैं।

**********

उपरति—अर्थात् यदा जिन कर्मांगभूत विषयों में, मन एवं इन्द्रिय निचय निग्रहीत हुआ है, वह कर्म समाप्त होने के अनंतर यत्किंचित् काल के लिये, निग्रहीत मन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



एवं इन्द्रिय निचय को रूप रसादि विषय ग्रहण कार्य से निवृत्त वा उपराम करने को उपरति कहते हैं।

तितिक्षा—अर्थात् द्वन्द सहिष्णुता को तितिक्षा कहते हैं। तात्पर्य यह है कि शीत, उष्ण निन्दा, स्तुति, जय, पराजय, हानि-लाभ, इत्यादि परस्पर विरोधी दोनों प्रकार की सहिष्णुता वा सहनशीलता को तितिक्षा कहते हैं।

श्रद्धा—अर्थात् गुरुमुखश्रुत वेद, एवं वेदाविरुद्ध वेदांतादि शास्त्रीयवाक्य में अविचलित विश्वास को ही श्रद्धा कहते हैं।

समाधान—अर्थात् यहाँ पर सगुण समाधि को ही समाधान कहते हैं। तात्पर्य यह है कि अविच्छिन्नतया दो बार ध्येय स्वरूपाकार अंतःकरणवृत्ति उदय होने पर उसे एकाग्रता कहते हैं। एवं क्रमशः तैलधारावत् अविच्छिन्नतया एकाग्रता के द्वादशगुण परिमाण ध्येय स्वरूपाकार अंतःकरण वृत्ति उदय होने पर उसे धारणा कहते हैं।

एवं क्रमशः तैलधारावत् अविच्छिन्नतया धारणा के द्वादशगुण परिमाण ध्येय स्वरूपाकार अंतःकरण वृत्ति उदय होने पर, उसे ध्यान कहते हैं। और क्रमशः तैलधारावत्

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अविच्छिन्नतया ध्यान के द्वादशगुण परिमाण ध्येयस्वरूपाकार अंतःकरण वृत्ति उदय होने पर, उसे समाधि वा समाधान कहते हैं।

चतुर्थं साधन मुमुक्षुता—अर्थात् मुक्ति की उत्कट इच्छापन ही मुमुक्षुता नाम से अभिहित होती है।

इति साधन चतुष्टय वर्णन, तथा प्रथम परिच्छेद समाप्त।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



# द्वितीय परिच्छेद

## प्रतिपाद्य-विषय ब्रह्म का स्वरूप वर्णन :—

परम कल्याणकारी असीम कृपानिधान भोगापवर्ग-दाता सगुण ब्रह्म श्री श्री भगवान् ने ब्रह्म का स्वरूप जैसा कथन किया है, अथवा कहो कि वेद शास्त्र में ब्रह्म का स्वरूप जैसा वर्णित हुआ है, वह यहाँ पर संक्षेपतः वर्णन किया जाता है। यथाः—

१—"कालत्रयाबाधितं ब्रह्म" तात्पर्य यह है कि भूत भविष्यत्, वर्त्तमान, तीनों काल के बीच में किसी काल में भी जिसका बाध अर्थात् अप्रतीति वा अभाव नहीं होता है उसे ब्रह्म कहते हैं।

२—"अनाद्यनन्तं ब्रह्म" अर्थात् जिसका आदि नहीं है तथा अन्त भी नहीं है, उसे ब्रह्म कहते हैं।

३—"नित्यं वा सत्यात्मकं ब्रह्म" अर्थात् जो नित्य वा सत्य स्वरूप है उसे ब्रह्म कहते हैं।

४—"अखंडाद्वितीयं ब्रह्म" तात्पर्य यह है कि जो अखंड है अर्थात् जो अविच्छिन्न वा पूर्ण है, तथा जो अद्वितीय

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



है अर्थात् जो सजातीय विजातीय स्वगत भेदविरहित है, उसे ब्रह्म कहते हैं।

५—"पादचतुष्टयात्मकं ब्रह्म" तात्पर्य यह है कि जो एक मात्र अखंडाद्वितीय होने पर भी, चित् आदि वा विद्यादि की समता और प्रधानता तथा अप्रधानता से पादचतुष्टयात्मक है, उसे ब्रह्म कहते हैं।

## तत्पाद चतुष्टय वर्णन यथा :—

सत् और आनन्द की समता एवं चित् अथवा विद्या की अप्रधानता से प्रथमपाद अचित् वा अविद्या पाद नाम से अभिहित होता है। एवं सत् तथा आनंद की समता और चित् अथवा विद्या की प्रधानता से द्वितीय पाद चित् अथवा विद्यापाद नाम से अभिहित होता है। और सच्चित् की समता एवं आनन्द की प्रधानता से तृतीय पाद आनन्द पाद नाम से अभिहित होता है। एवं सच्चिदानन्द की समता होने के कारण चतुर्थपाद तुरीय नाम से अभिहित होता है।

६—"सर्वप्रकाशकमपिच स्वयं प्रकाशात्मकं ब्रह्म" तात्पर्य यह है कि जो गुण साम्या मूला प्रकृति और गुण विषमा माया अविद्या प्रभृति कार्य कारणात्मक समस्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विश्व का प्रकाशक है, अर्थात् द्रष्टा वा विज्ञाता है, अपिच जो स्वयं प्रकाश है, अर्थात् जो स्वयं ही स्वकीय द्रष्टा वा विज्ञाता स्वरूप है, उसे ब्रह्म कहते हैं।

७—"सगुणनिर्गुणस्वरूपं ब्रह्म" अर्थात् गुण विषमा त्रिगुणात्मिका माया अविद्या उपाधि के सहित प्रकाश की अल्पता हेतु, आध्यासिक तादात्म्य संबंधविशिष्ट प्रतिबिंब रूप चैतन्य वा ब्रह्म को सगुण ब्रह्म कहते हैं। एवं सर्वव्यापक होते हुए भी प्रकाश की अधिकता हेतु उपाधि के सहित आध्यासिक तादात्म्य संबंध विरहित, बिंबरूप चैतन्य वा ब्रह्म को, निर्गुण ब्रह्म कहते हैं।

८—"सकलावस्थावाधितं ब्रह्म" अर्थात् जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति प्रभृति किसी भी अवस्था में जिसका बाध अर्थात् अप्रतीति वा अभाव नहीं होता है, उसे ब्रह्म कहते हैं।

९—"देशतः कालतो वस्तुतः परिच्छेदविरहितं ब्रह्म" तात्पर्य यह है कि जो देशकाल वस्तु द्वारा अपरिच्छिन्न है, अर्थात् जो सकल देश में, सकल काल में, सकल वस्तु में, सर्वदा विद्यमान रहता है उसे ब्रह्म कहते हैं।

१०—"इन्द्रियातीतं ब्रह्म" अर्थात् अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अरस, तथा अगन्ध होने के कारण नेत्रादि इन्द्रिय जिसको ग्रहण नहीं कर सकती हैं, उसे ब्रह्म कहते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



११—"सत्यज्ञानानन्दं ब्रह्म" अर्थात् जो सत्य और ज्ञान तथा आनन्दस्वरूप है, उसे ब्रह्म कहते हैं।

१२—"सर्वपरिपूर्णं ब्रह्म" अर्थात् जो सर्वव्यापक है, उसे ब्रह्म कहते हैं।

१३—"अस्ति भाति प्रियात्मकं ब्रह्म" अर्थात् जो अस्ति भाति प्रियरूप है, अथवा कहो कि जो सच्चिदानन्द स्वरूप है, उसे ब्रह्म कहते हैं।

१४—"जगदधिष्ठानात्मकं ब्रह्म" तात्पर्य यह है कि जो कार्य कारणात्मक संपूर्ण जगत् का अधिष्ठान अथवा आधारस्वरूप है, अर्थात् सम्पूर्ण जगत् जिस अधिकरण में मरुजल, रज्जु सर्पादिवत् भासमान होता है, उसे ब्रह्म कहते हैं।

१५—"षड् विकारविरहितं ब्रह्म" अर्थात् जो उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि, परिणाम, अपक्षय तथा विनाश ये छै प्रकार के विकार विरहित है, उसे ब्रह्म कहते हैं।

१६—"प्रमाता चैतन्यात्मकं ब्रह्म" तात्पर्य यह है कि, जो प्रमाता चैतन्यस्वरूप है, अर्थात् जो असंग रूप से द्रष्टा अथवा विज्ञाता है, उसे ब्रह्म कहते हैं।

१७—परम कल्याणकारी असीम कृपानिधान श्री श्री भगवान् ने तो इस विषय में "येनरूपं रसं गन्धं शब्दान्

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



स्पर्शांश्च मैथुनान्, एतेनैव विजानाति एतद्वैतत्" "अयमात्मा ब्रह्म" "प्रज्ञानं ब्रह्म" "निर्मलं निष्कलं ब्रह्म" "शुद्धबुद्धमुक्तस्वरूपं ब्रह्म"

"एकमेव सनातनं ब्रह्म" "प्रपंचोपशमं शांतं शिवमद्वैतं ब्रह्म" इत्यादि अनेक प्रकार से और भी बहुत कुछ कथन किया है।

इति द्वितीय परिच्छेद समाप्त।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



# तृतीय परिच्छेद

## विषय—कार्य कारणात्मिका प्रकृति सृष्टि और तदीय कार्यादिवर्णन :—

आदि वा प्रथम गुणसाम्या मूला प्रकृति—

प्रकाश की अल्पता हेतु भ्रांतिवशतः मरु में जैसा जल बोध होता है, रज्जु में जैसा सर्प का अनुभव होता है, शुक्ति में जैसा रजत का ज्ञान होता है, एवं ठूंठ में जैसा पुरुष प्रतीति होता है, अपिच स्फटिक में जैसा लौहित्य वा रेखादि भासमाना होती है। तद्वत् चित् वा प्रकाश की अप्रधानता वा अल्पता हेतु अविद्यापादात्मक ब्रह्म में, स्वभावतः ही सृष्टि काल में, मरुजल रज्जु सर्पादिवत् असद्रूपा परिणाम शीला लोहित शुक्ल कृष्ण अथवा कहो कि सत्वरजस्तमः त्रिगुणात्मिका गुणसाम्यामूला प्रकृति भासमाना होती है, अथवा कहो कि दर्शन होता है। वह दर्शन अथवा अन्यथा प्रतीति ही वेद वेदांतादि शास्त्र में सृष्टि वा उत्पत्ति नाम से अभिहित हुआ है।

एकमात्र अखंडाद्वितीय ब्रह्म से भिन्न वस्तुतः गुणसाम्या प्रकृति नाम सें प्रसिद्धा कोई सद् वस्तु न होने के



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कारण, गुणसाम्या प्रकृति को ब्रह्म से भिन्न नहीं कहा जा सकता है। एवं एक मात्र अखंडाद्वितीय सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म में वस्तुतः मिथ्याभूत गुणसाम्या प्रकृति न होने के कारण, गुण साम्या प्रकृति को ब्रह्म से अभिन्न भी नहीं कहा जा सकता है। इसलिये वेद शास्त्र के किसी किसी स्थलों में गुण साम्या प्रकृति को अनिर्वचनीया विशेषण से भी अभिहित किया है। गुण साम्या प्रकृति ही सर्वापेक्षा आदि दृश्य है। इससे आदि कोई भी मिथ्याभूत दृश्य न होने के कारण वेद शास्त्र में, गुण साम्या प्रकृति को अनादि विशेषण से भी अभिहित किया है। और एक बात यह है कि गुण साम्या प्रकृति में अधिष्ठानात्मक ब्रह्म का प्रतिबिंब भासमान नहीं होता है। क्योंकि शुद्ध सत्त्वगुण प्रधाना, एवं सत्त्वगुण प्रधाना तथा मलिन सत्त्वगुण प्रधाना माया महत्तत्त्व अहंकार, तथा अविद्या उपाधि में ही प्रतिबिंब भासमान होता है, अन्यत्र प्रतिबिंब भासमान नहीं होता है। अपर स्थिति काल अवसान होने पर, अर्थात् समष्टि जगत् के आत्यंतिक प्रलय होने पर, आत्म स्वभावतः ही गुण साम्या प्रकृति अदृश्या वा विलुप्ता होती है। अथवा कहो कि तब गुणसाम्या प्रकृति का भी आत्यंतिक प्रलय होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



परंतु सृष्टि काल समागत होने पर, ब्रह्म स्वभावतः ही नवीन अथवा कहो कि अपूर्व गुण साम्या प्रकृति, पूर्ववत् सनातन ब्रह्माधिकरण में भासमान होती है, क्योंकि ब्रह्म का स्वभाव वैसा ही है।

## अथ शुद्ध सत्त्वगुणप्रधाना प्रकृति :—

परिणामशीला गुणसाम्या प्रकृति का सत्त्वगुण जब स्वकीय स्वभाव वशतः रजस्तमो गुणद्वय को अभिभूत करता है, तब गुण साम्या त्रिगुणात्मिका प्रकृति से सत्त्व-गुणाभिभूत, शुद्ध सत्त्वगुण प्रधाना प्रकृति प्रादुर्भूत वा उत्पत्ति होती है। आवरणशक्ति, कारणोपाधि, अव्यक्त, माया प्रभृति उसका ही नामांतर है। एवं वही सगुण ब्रह्म परमेश्वर की उपाधि है।

## अथ रजोगुणाभिभूत सत्त्वगुणप्रधाना प्रकृति :—

ईश्वर की इच्छा से शुद्ध सत्त्वगुण प्रधाना प्रकृति का रजोगुण जब सत्त्वतमोगुणद्वय को अभिभूत करता है, तब शुद्ध सत्त्वगुण प्रधाना प्रकृति से रजोगुणाभिभूत सत्त्वगुण प्रधाना प्रकृति की उत्पत्ति होती है। उसका अन्य नाम महत्तत्त्व है। एवं रजोगुणाभिभूत सत्त्वगुण प्रधाना प्रकृति ही, हिरण्यगर्भ नाम से प्रसिद्ध ईश्वर की उपाधि है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



## अथ तमोगुणाभिभूत सत्त्वगुणप्रधाना प्रकृति :—

ईश्वर की इच्छा से रजोगुणाभिभूत सत्त्वगुण प्रधाना प्रकृति का तमोगुण, जब सत्त्वरजोगुणद्वय को अभिभूत करता है, तब उस प्रकृति से, तमोगुणाभिभूत सत्त्वगुण प्रधाना प्रकृति की उत्पत्ति होती है। अहंकार उसका नामांतर है। एवं तमोगुणाभिभूत सत्त्वगुण प्रधाना प्रकृति ही विराट् नाम से प्रसिद्ध ईश्वर की उपाधि है।

## अथ मलिन सत्त्वगुण प्रधाना प्रकृति :—

परमेश्वर की इच्छा से, तमोगुणाभिभूत सत्त्वगुण प्रधाना प्रकृति का रजस्तमोगुणद्वय, जब सत्त्वगुण को अभिभूत करता है, तब उससे रजस्तमो गुणद्वयाभिभूत मलिन सत्त्वगुण प्रधाना असंख्या प्रकृति उत्पत्ति होती हैं। अज्ञान, अविद्या, अंतःकरण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इसके नामांतर हैं। एवं यह मलिन सत्त्वगुण प्रधाना प्रकृति निचय ही देवता, मनुष्य, पशु पक्षी प्रभृति जीवसमूह की उपाधि वा कारण देह नाम से अभिहित होता है।

## अथ पंच तन्मात्रा :—

परमेश्वर की इच्छा से, मलिन सत्त्वगुण प्रधाना

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्रकृति वा अविद्या का रजस्तमो गुणद्वय ने जब सत्त्वगुण को अभिभूत किया है तब उससे रजस्तमोगुण प्रधान शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पंच तन्मात्राओं की उत्पत्ति हुई है।

## अथ पंच महाभूत :—

परमेश्वर की इच्छा से शब्द तन्मात्रा से शब्दगुण विशिष्ट, आकाश की उत्पत्ति हुई है। तथा स्पर्श तन्मात्रा से स्पर्शगुण विशिष्ट वायु की उत्पत्ति हुई है, एवं रूप तन्मात्रा से रूप गुण विशिष्ट अग्नि की उत्पत्ति हुई है तथा रस-तन्मात्रा से रसगुण विशिष्ट जल की उत्पत्ति हुई है। एवं गन्ध तन्मात्रा से गन्धगुण विशिष्ट पृथिवी की उत्पत्ति हुई है। अपंचीकृत पंच महाभूत अथवा सूक्ष्म पंच महाभूत इसका नामांतर है।

## अथ अंतःकरण वृत्तिपंचक :—

अनंतर परमेश्वर की इच्छा से अपंचीकृत पंच महाभूतों के सम्मिलित समष्टि सत्त्वगुण से पंचक्रिया वृत्तात्मक अंतःकरण पंचक उत्पन्न होकर जो सकल कार्य संपादन करते हैं, सो यहाँ पर वर्णन किया जाता है। यथाः—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



१—अंतःकरण वृत्ति वस्तुका स्वरूपानुसन्धान पूर्वक, अभिन्नतया तदाकार में परिणता होती है।

२—मनोवृत्ति संशयात्मक मनन अथवा संकल्प करती है।

३—बुद्धिवृत्ति निश्चय करती है।

४—चित्तवृत्ति पूर्वानुभूत विषय को स्मरण करती है।

५—अहंकारवृत्ति अहंता ममतारूप द्विविध अभिमान करती है। अर्थात् नित्यानित्य वस्तु समूह में, मैं और मेरा इस प्रकार भाव को धारण करती है।

## अथ ज्ञानेन्द्रिय पंचक :—

ईश्वर की इच्छा से सूक्ष्म पंचभूतों के व्यष्टि सत्त्वगुण से, पंच ज्ञानेन्द्रिय उत्पन्न होकर, वे जो सकल कार्य संपादन करती हैं, सो यहाँ पर वर्णन किया जाता है। यथाः—

१—आकाश के सत्त्वगुण से उत्पन्न होकर, श्रवणेन्द्रिय शब्द ग्रहण वा श्रवण करती है।

२—वायु के सत्त्वगुण से उत्पन्न होकर, त्वक् इन्द्रिय, शीत, उष्ण, कोमल, कठिनादि ग्रहण वा स्पर्श करती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



३—अग्नि के सत्त्वगुण से उत्पन्न होकर दर्शनेन्द्रिय रूप ग्रहण वा दर्शन करती है।

४—जलके सत्त्वगुण से उत्पन्न होकर रसनेन्द्रिय कटु, अम्ल, लवणादि रस ग्रहण करती है।

५—पृथिवी के सत्त्वगुण से उत्पन्न होकर घ्राणेन्द्रिय गन्ध ग्रहण करती है।

## अथ कर्मेन्द्रिय पंचक :—

ईश्वर की इच्छा से सूक्ष्म पंचभूतों के व्यष्टि रजोगुण से पंच कर्मेन्द्रिय उत्पन्न होकर वे जो सकल कार्य संपादन करती हैं, सो यहाँ पर वर्णन किया जाता है। यथाः—

१—आकाश के रजोगुण से उत्पन्न होकर, वाक् इन्द्रिय शब्द उच्चारण करती है।

२—वायु के रजोगुण से उत्पन्न होकर पाणि-इन्द्रिय घटादि वस्तु को ग्रहण करती है।

३—अग्नि के रजोगुण से उत्पन्न होकर पाद-इन्द्रिय गमन करती है।

४—जल के रजोगुण से उत्पन्न होकर उपस्थेन्द्रिय रतिक्रिया तथा शुक्र मूत्रादि का परित्याग करती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



५—पृथिवी के रजोगुण से उत्पन्न होकर पायु-इन्द्रिय अपानवायु तथा मलादि का परित्याग करती है।

## अथ प्राणपंचक :—

ईश्वर की इच्छा से सूक्ष्म पंचभूतों के सम्मिलित समष्टि रजोगुण से प्राणपंचक उत्पन्न होकर, वे जो सकल कार्य संपादन करते हैं, सो यहाँ पर वर्णन किया जाता है। यथा:—

१—प्राणवायु श्वास रूप में भीतर प्रवेश करता है, एवं प्रश्वास रूप में वाहर निकलता है।

२—अपानवायु भुक्त अन्नजलादि का अधोनयन करता है।

३—समान वायु भुक्त अन्न जलादि परिपाक के लिये जठरानल को उद्दीपन करता है, एवं भुक्त अन्न-जलादि के परिणाम रस रक्तादि को नाड़ी मार्ग द्वारा सर्वशरीर में पहुँचाता है।

४—उदानवायु भुक्त अन्नजलादि को ऊर्ध्वनयन, और हिक्का तथा परिपक्क अन्नजलादि का विभागादि क्रिया संपादन करता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



५—व्यान वायु देह के अंगसमूह को घुमाने फिराने की क्रिया संपादन करता है।

## अथ सूक्ष्म देह :—

उपरोक्त अंतःकरण पंचक, ज्ञानेन्द्रिय पंचक, कर्मेन्द्रिय पंचक, एवं प्राणपंचक, इनके समूह को सूक्ष्म देह कहते हैं। इसका ही नामांतर लिंग शरीर है।

## अथ पंचीकरणः—

ईश्वर की इच्छा से आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी ये सूक्ष्म पंचभूतों के आकाशादि प्रत्येक भूत, पहिले आठ-आठ आना करके दो-दो भागों में विभक्त हुआ है। अनंतर आकाशादि प्रत्येक भूत के प्रथम-प्रथम भाग को छोड़ कर, द्वितीय-द्वितीय भाग के आठ-आठ आना पुनः दो-दो आना करके, चार चार भागों में विभक्त हुआ है। तदनंतर आकाशादि प्रत्येक भूत के स्वकीय प्रथम भाग के आठ आना को छोड़कर, अन्य चार भूतों के आठ आने के सहित आकाशादि प्रत्येक भूत के द्वितीय-द्वितीय भाग के दो-दो आना करके सम्मिलन करने को पंचीकरण कहते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



## अथ स्थूल पंचभूतः—

ईश्वर की इच्छा से उपरोक्त नियमानुसार अपंचीकृत पंचभूत, पंचीकृत होकर स्थूल पंचभूत रूप में परिणत होता है। पंचीकृत पंचभूत इसका ही नामांतर है।

## अथ स्थूल देह :—

ईश्वर की इच्छा से पंचीकृत पंचभूतों से, अथवा कहो कि स्थूल पंचभूतों से, स्थूल देहादि संपूर्ण स्थूल जगत् की उत्पत्ति होती है। एवं स्थूल देह को अवलंवन करके ही जागतिक सकल कार्य संपादित होता है। अपिच स्थूल देह को अवलंवन करके ही वैषयिक सुख-दुख भोग होता है।

कार्य कारणात्मिका प्रकृति के कार्य संबंध में यहाँ पर कुछ कथन किया जाता है। यथा :—

निमेष, उन्मेष, छींक, जँभाई, उद्गार, वमन, धारण, पोषण, जन्म, मरण, क्षुधा, तृष्णा, काम, क्रोध, लोभ, मोह-मद, मात्सर्य, राग, द्वेष, हर्ष, शोक, पुण्य, पाप, सुख, दुःख, भयाभय, भजन, भक्ति, शुभइच्छा, सद्विचार, वंधन, विमुक्ति, प्रभृति, उक्त, अनुक्त, जागतिक समस्त क्रिया ही इन्द्रिय, अंतःकरण प्राण तथा उपप्राण अर्थात्, नाग,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कूर्म, कुकर, देवदत्त, धनंजय प्रभृति कार्यरूप में परिणता प्रकृति संपादन करती है।

२—प्राकृतिक प्रलय काल में, अर्थात् सृष्टि, स्थिति, प्रलयकर्त्ता परमेश्वर जब जागतिक कार्य से उपराम होकर, योगनिद्रा अवलंवनपूर्वक, तुरीय अवस्था में स्थित होता है, तब कार्यरूपा प्रकृति, क्रमशः निज निज कारणात्मिका प्रकृति में विलीन होती है, एवं तिस काल में समष्टि जीव के उपाधि समष्टि अविद्यात्मिका प्रकृति भी सबीज रूप में ईश्वर की उपाधि माया रूपा प्रकृति में विलीन होती है। परन्तु परमेश्वर के व्युत्थान होने पर ईश्वर की इच्छा से ही यथाक्रम से संपूर्ण जगत् पुनः पूर्ववत् प्रादुर्भूत होता है।

३—प्रकृति असंभव को भी संभव करके दिखलाती है। माया तथा अविद्यारूपा प्रकृति, अपने आलंवन अथवा आश्रय स्वरूप ब्रह्म को भी आच्छादन करती है।

४—परम कल्याणकारी असीम कृपानिधान भोगापवर्गदाता सगुण ब्रह्म श्री श्री परमेश्वर की इच्छा से, प्रारब्ध भोगावसानकाल में, कृतकृत्य जीवन्मुक्त जीवकी उपाधिरूपा प्रकृति विनष्टा होती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



५—माया से उद्भूत समष्टि जगत् के आत्यंतिक प्रलय काल में, परमेश्वर की इच्छा से समष्टि जीव की उपाधिरूपा समष्टि अविद्या विनष्टा होती है।

६—माया कार्य समस्त जगत् के आत्यंतिक प्रलय होने पर ईश्वर की उपाधि, शुद्ध सत्त्वगुण प्रधाना प्रकृति भी विलीना वा विनष्टा होती है।

७—शुद्ध सत्त्वगुणप्रधाना प्रकृति के विलय होने के अनंतर, ब्रह्म स्वभावतः ही गुण साम्या प्रकृति भी, अदृश्या वा विलुप्ता होती है, तदा एकमात्र अखंडाद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म ही अवशेष रहता है।

## अथ शंका समाधान

कोई यदि ऐसी आशंका करे कि जड़ वस्तु की क्रिया करना असंभव है, तो उस आशंका निवारण के लिये ऐसा कहा जा सकता है कि, भूमि का कंपन, जलका अधोगमन, अग्नि का ऊर्ध्व धावन, तथा वायु का संचलन, इत्यादि जड़ वस्तु की क्रिया तो प्रत्यक्ष तथा शास्त्रीय प्रमाण सिद्ध है। अतएव जड़ वस्तु की क्रिया करना असंभव है, ऐसा कहना विचार संगत नहीं है।

अपर कोई यदि ऐसा कहे कि, भूमि जल अग्नि वायु

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इत्यादि जड़ वस्तु में जो क्रिया देखने में आती है, उसका तो उपयुक्त कारण है; तो इसके उत्तर में ऐसा कहा जा सकता है कि, जड़रूपा प्रकृति जो जागतिक समस्त कार्य संपादन करती है उसका भी उपयुक्त कारण विद्यमान है। वह यह है कि जड़रूपा प्रकृति की उत्पत्ति, स्थिति, विनाशता, एवं सत्त्व रजस्तमः तीनों गुणों का पारस्परिक अभिभूत कारकत्व और प्रकृति की परिणाम शीलता तथा पंचभूतों की भागविषमता, अपिच यथायोग्य रूप में परस्पर संबद्धता इत्यादि उपयुक्त कारण विद्यमान वशतः इन्द्रिय अंतः-करणादि रूप में परिणता प्रकृति जागतिक समस्त कार्य संपादन करती है।

अथवा जिस प्रकार उपयुक्त शक्तिशाली स्टीम के विद्यमान वशतः जड़ इंजिन, धावनादि क्रिया करने में समर्थ होता है वैसा ही अधिष्ठान चैतन्य की विद्यमानता तथा पाञ्चभौतिक देहयंत्र की निर्माण विचित्रता प्रभृति उपयुक्त कारण विद्यमान वशतः ही इन्द्रिय, अंतःकरण प्राण प्रभृति रूप में परिणता प्रकृति जागतिक समस्त कार्य संपादन करने में समर्था होती है।

इति तृतीय परिच्छेद समाप्त।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



# अथ चतुर्थ परिच्छेद

## विषय—सप्तविध चेतन्य एवं ईश्वर के स्वरूप तथा ईश्वरीय कार्यादि वर्णनः—

जैसा आकाश वस्तुतः एक मात्र अखंड वा अभिन्न होने पर भी, उपाधि की भिन्नता हेतु, जलाकाश, घटाकाश, गृहाकाश, महाकाश प्रभृति अनेक नाम से अभिहित होता है। वैसा ही ब्रह्म वा चैतन्य वस्तुतः एक मात्र अखंडाद्वितीय होने पर भी, सर्वोपाधिविनिर्मुक्त, एवं उपाधि संग विरहित, अपिच उपाधि विशिष्ट तथा सर्वव्यापक होने के कारण, श्रुति-भगवती ने चैतन्य को व्यवहारतः सप्त श्रेणी में विभक्त करके वर्णन किया है। तद् यथाः—

"शुद्धमीश्वर चैतन्यं जीवचैतन्य मेवच।
प्रमाता च प्रमाणं च प्रमेयंच फलं तथा॥"

इति कठरुद्रोपनिषत् ॥

भाषार्थः—शुद्ध चैतन्य अर्थात्—सर्वोपाधि विनिर्मुक्त चैतन्य अथवा कहो कि, जिसमें गुण साम्या प्रकृति आदि कार्य कारणात्मक जगत् नहीं है, वह चैतन्य, २—ईश्वर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



चैतन्य, अर्थात् मायोपाधि विशिष्ट चैतन्य। ३–जीवचैतन्य अर्थात् अविद्या उपाधि विशिष्ट चैतन्य। ४–प्रमाता चैतन्य अर्थात् माया अविद्या उपाधि संग विरहित अधिष्ठानात्मक साक्षी चैतन्य। ५–प्रमाण चैतन्य अर्थात् अंतःकरण मनोबुद्ध्यादि वृत्तिव्यापक चैतन्य। ६–प्रमेय चैतन्य अर्थात् अविज्ञातविषय व्यापक चैतन्य। ७–फल चैतन्य अर्थात् विज्ञात विषय व्यापक चैतन्य।

अधुना श्रुति भगवती ने ईश्वर के सुस्पष्ट लक्षण जैसा कथन किया है। सो यहाँ पर वर्णन किया जाता है। यथाः—दर्पण में जैसा मुखादिबिंब का प्रतिबिंब भासमान होता है वैसा ही सत्त्वगुणाभिभूत शुद्ध सत्त्वगुण प्रधाना प्रकृति में, अथवा कहो कि माया में अधिष्ठानात्मक बिंबरूप चित् का प्रतिबिंब भासमान होता है, वह माया प्रतिबिंबित चैतन्य ही साकार तथा निराकार द्विविध ईश्वर नाम से अभिहित होता है। तात्पर्य यह है कि व्यवहारतः यहाँ पर तीन वस्तुयें देखने में आती हैं। एक तो बिंब रूप चित् और द्वितीय माया, एवं तृतीय माया में भासमान चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास, इन तीनों के बीच में माया को तो ईश्वर की देह वा उपाधि कहते हैं। एवं बिंबरूप चित् को निराकार ईश्वर, तथा प्रतिबिंबरूप चिदाभास को

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



साकार ईश्वर कहते हैं। साकार निराकार भेद का कारण यह है कि चित् एवं चिदाभास वस्तुतः निराकार होने पर भी, बिंबरूप चित् की अपेक्षा प्रतिबिंबरूप चिदाभास में प्रकाश की अल्पता हेतु, आवरण शक्तिमती तथा अव्यक्त आकारवती माया के सहित चिदाभासका आध्यासिक तादात्म्य संबंध होता है। अर्थात् प्रकाश की अल्पता हेतु भ्रान्ति वशतः चिदाभास अव्यक्त आकारवती माया के सहित (अग्नि लौहवत्) एक रूपता वा अभिन्न भावापन्न होता है। इस हेतु ही माया में भासमान चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास को साकार ईश्वर कहते हैं।

माया विशिष्ट चैतन्य, सगुण ब्रह्म, माया अभिमानी, सर्व नियंता, सर्वज्ञ, भगवान, भोगापवर्ग दाता, आदि नारायण इत्यादि अव्यक्त साकार ईश्वर के नामांतर हैं। एवं चिदाभास की अपेक्षा चित्त में प्रकाश की अधिकता हेतु माया के सहित चित् का आध्यासिक तादात्म्य संबंध नहीं होता है। इस हेतु ही माया उपहित अर्थात् माया संगविरहित अधिष्ठानात्मक चित् को निराकार ईश्वर कहते हैं। ईश्वर साक्षी, अंतर्यामी, निर्गुण ब्रह्म, निरभिमानी, नित्यमुक्त अभोक्ता, परमकारण इत्यादि निराकार ईश्वर के नामांतर हैं। अतः पर, मायोपाधि विशिष्ट परमेश्वर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ने "एकोऽहं बहुस्याम" अर्थात् मैं एकाकी बहु हो जाऊँ, इत्याकार संकल्प करते हुए क्रमशः कार्य कारणात्मक संपूर्ण जगदरूप धारण किया है।

अधुना अव्यक्त साकार ईश्वर के व्यक्त जगद्रूप धारण करने का क्रम प्रदर्शन अथवा कहो कि ईश्वर सृष्टि वर्णन किया जाता है। यथाः—

भोगापवर्ग दाता अव्यक्त साकार ईश्वर के संकल्प वशतः, शुद्धसत्वगुण प्रधाना प्रकृति के रजोगुण ने, जब सत्त्व तमोगुणद्वय को अभिभूत किया है, तब उससे रजोगुणाभिभूत सत्त्वगुण प्रधाना प्रकृति की उत्पत्ति हुई है। महत्तत्त्व इसका नामांतर है। एवं यह महत्तत्त्व प्रतिबिंबित चैतन्य ही हिरण्यगर्भ नाम से अभिहित हुआ है।

अनंतर ईश्वर के संकल्प वशतः महत्तत्त्व के तमोगुण ने जब सत्त्व रजोगुणद्वय को अभिभूत किया है, तब उससे तमोगुणाभिभूत सत्त्वगुण प्रधाना प्रकृति की उत्पत्ति हुई है। अहंकार इसका नामांतर है, एवं यह अहंकार, प्रतिबिंबित चैतन्य ही विराट् नाम से अभिहित हुआ है। अर्थात् ईश्वर ही माया को, आश्रय करके हिरण्यगर्भ तथा विराट् रूप धारण किया है।

अतः पर, सर्वनियन्ता ईश्वर के संकल्प वशतः सृष्टि



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कार्य संपादनार्थ भगवान हिरण्यगर्भ ही ब्रह्मारूप में प्रगट हुआ है। एवं स्थिति वा पालन कार्य संपादनार्थ विराट् भगवान् ही विष्णु रूप में प्रगट हुआ है। अपिच प्रलय कार्य संपादन करने के लिये ईश्वर ही स्वकीय इच्छा प्रणोदित होकर, मोक्षमूलक अविद्याविनाशक शिवरूप में प्रगट हुआ है। अर्थात् एक मात्र ईश्वर ही माया को आश्रय करके व्यक्ताव्यक्त सकल प्रकार की सृष्टि, स्थिति, प्रलयकार्य संपादनार्थ, हिरण्यगर्भ एवं विराट् के सहित ब्रह्मा विष्णु और मंगलमय शिवरूप धारण पूर्वक क्रमशः सम्पूर्ण जगद्रूप धारण किया है।

## अथ ईश्वरीय कार्य वर्णन यथा:—

( १ )

मायोपाधि विशिष्ट अव्यक्त साकार ईश्वर, हिरण्यगर्भ एवं विराट् के सहित ब्रह्मा विष्णु और मंगलमय शिव रूप में सृष्टि, स्थिति, एवं प्रलयकार्य संपादन करते हैं।

( २ )

कभी कभी सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान ईश्वर "अघटन घटन पटीयसी" माया को आश्रय करके वामन, वराह,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



नृसिंह, शरभ, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, अपिच भगवती, जगद्धात्री, दुर्गा, काली, सावित्री, महालक्ष्मी, गायत्री तथा अविद्या विध्वंसकारिणी सरस्वती प्रभृति रूप में अवतीर्ण होकर जीवगण के असाध्य अनेक प्रकार के अति विचित्र वा अद्भुत कार्य समूह संपादन करते हैं।

( ३ )

कर्म फल दाता परमेश्वर स्वकल्पित नियमानुसार प्राणीगण के किया हुआ पाप पुण्यात्मक छोटा बड़ा प्रत्येक कर्म का फल, उपयुक्त काल में अर्थात् इसी जन्म में अथवा भविष्यत् जन्म में अवश्य ही अज्ञ वा अभिमानी जीव को प्रदान करते हैं।

( ४ )

मुक्तिदाता परमेश्वर अप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान प्राप्त कृत्यकृत्य जीवन्मुक्त जीव की अविद्या उपाधि को प्रारब्ध भोगावसान काल में विध्वंस करके उसे विमुक्त करते हैं।

( ५ )

प्राकृतिक प्रलय काल में परमेश्वर सृष्टि, स्थिति प्रलयादि जागतिक कार्य से उपराम होकर, योगनिद्रा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अवलंवनपूर्वक अति दीर्घ काल पर्यन्त तुरीय अवस्था में स्थित रहते हैं और तदनंतर स्वभावतः ही तुरीय अवस्था से अथवा योगनिद्रा से उत्थित होकर मायाविलीन अथवा कहो कि प्रकृति विलीन प्राणियों के भोगापवर्गार्थ पुनः सृष्टि स्थिति प्रलयादि कार्य संपादन करते रहते हैं।

( ६ )

ऊपर में जैसा वर्णित हुआ है, तिस प्रकार से एक वार योगनिद्रा अवलंवनपूर्वक अति दीर्घकाल, पर्यन्त तुरीय अवस्था में संस्थित होना एवं तुरीय अवस्था से अथवा कहो कि योगनिद्रा से, उत्थित होकर पुनः अति दीर्घ काल पर्यन्त, सृष्टि, स्थिति, प्रलयादि कार्य संपादन करना; पुनः पुनः इस प्रकार करते हुए जव ईश्वर का स्थिति काल प्रायः समाप्त होता है, तव ईश्वर जगल्लीला समाप्त करने का संकल्प करते हैं। तदनंतर ईश्वर के संकल्प वशतः सृष्टि कर्त्ता ब्रह्मा, सृष्टि कार्य को परित्याग करके स्वकीय आत्मभूत हिरण्यगर्भ में ही प्रवेश करते हैं। एवं पालनकर्त्ता विष्णु पालन कार्य को परित्याग करके स्वकीय आत्मभूत विराट् में ही प्रवेश करते हैं। अपिच ईश्वर के संकल्प वशतः प्रलयकर्त्ता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मंगलमय महेश्वर समस्त कार्य के सहित समस्त जीवों की उपाधि, समस्त अविद्याओं को निर्बीजरूप से प्रलय करते हुए निखिल प्राणी वृन्द को विमुक्त करके स्वकीय आत्म-भूत ईश्वर में ही प्रवेश करते हैं।

( ७ )

सृष्टि, स्थिति, प्रलयकर्त्ता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर निज निज कार्य समाप्त करके हिरण्यगर्भ विराट् और ईश्वर में प्रवेश करने के अनंतर ईश्वर संकल्प वशतः विराट् की उपाधि अहंकार का प्रलय होने के साथ ही साथ प्रति-बिंबात्मक विराट् चैतन्य, आत्मभूत बिंब चैतन्य स्वरूप निर्गुण ब्रह्म में विलीन होते हैं।

( ८ )

विराट् विमुक्त होने के अनंतर ईश्वर संकल्प वशतः हिरण्यगर्भ की उपाधि महत्तत्त्व के प्रलय होने के साथ ही साथ प्रतिबिंबात्मक हिरण्यगर्भ चैतन्य, आत्मभूत बिंब चैतन्य स्वरूप निर्गुण ब्रह्म में विलीन होते हैं।

प्रकरणोपसंहार में वक्तव्य यह है, कि मायोपाधि विशिष्ट सगुण ब्रह्म परमेश्वर संबंधी सृष्टि, स्थिति, प्रलयादि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वर्णन कार्य तो यहाँ पर ही समाप्त हुआ। अधुना स्वाभाविक प्रलय कार्य वर्णन किया जाता है यथाः—

( १ )

हिरण्यगर्भ विमुक्त होने के अनंतर ईश्वर की उपाधि, शुद्ध सत्त्वगुण प्रधाना प्रकृति आत्म स्वभावतः प्रलय होने के साथ ही साथ, प्रतिबिंबात्मक ईश्वर चैतन्य, स्वकीय आत्मभूत, बिंबचैतन्य स्वरूप निर्गुण ब्रह्म में विलीन होते हैं।

( २ )

अव्यक्त साकार ईश्वर विमुक्त होने के अनंतर आत्म स्वभावतः गुण साम्यामूला प्रकृति भी अदृश्या वा विलीना होती है। अतएव उस काल में केवल अखंडाद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप शुद्ध वा निर्विशेष ब्रह्म ही अवशेष रहते हैं।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

इति चतुर्थ परिच्छेद समाप्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



# अथ पंचम परिच्छेद

## विषय जीवात्मा और तदीयकार्य वर्णनः--

श्रुति भगवती ने जीवात्मा का सुस्पष्ट लक्षण जैसा कथन किया है, सो यहाँ पर वर्णन किया जाता है यथाः--

दर्पण में जैसा मुखादि विंब का प्रतिविंब भासमान होता है, वैसा ही रजस्तमोगुणद्वयाभिभूति मलिन सत्त्वगुण प्रधाना प्रकृति में अथवा कहो कि अविद्या वा अंतःकरण में, अधिष्ठानस्वरूप चिदात्मक विंब का प्रतिविंब, भासमान होता है। वह अविद्या प्रतिविंबित चैतन्य ही साकार तथा निराकार द्विविध जीवात्मा नाम से अभिहित होता है।

तात्पर्य यह है कि व्यवहारतः यहाँ पर तीन वस्तुयें देखने में आती हैं। एक तो अविद्या का अधिष्ठान चिदात्मक विंब, और दूसरी अविद्या एवं तीसरा अविद्या में भासमान चित् प्रतिविंब वा चिदाभास। इन तीनों के बीच में अविद्या को तो जीवात्मा की कारण देह अथवा उपाधि कहते हैं। एवं चिदात्मक विंब को निराकार जीवात्मा, तथा चित् प्रतिविंब वा चिदाभास को साकार जीवात्मा कहते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



साकार निराकार भेद के कारण यह हैं कि ज्ञानात्मक अथवा प्रकाशस्वरूप चित्, एवं चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास, वस्तुतः निराकार होने पर भी, चिदात्मक बिंब की अपेक्षा चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास में प्रकाश वा ज्ञान की अल्पता हेतु, आकारवती देह के सहित चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास का आध्यासिक तादात्म्य संबंध होता है। अर्थात् अग्नि लौहवत् एक रूपत्व प्राप्त वा अभिन्न भावापन्न होता है। इस हेतु ही कारण देह अविद्या में, भासमान चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास को साकार जीवात्मा कहते हैं। अविद्या वा अंतःकरण विशिष्ट चैतन्य सगुण ब्रह्म, पुरुष, अभिमानी, अल्पज्ञ, अल्पशक्तिशाली, ईश्वरांश, जीव, अजड़, अविनाशी भोक्ता वा सुख दुःख के अनुभव कर्त्ता, त्रिकालावाध्य, सनातन, सत्यनारायण इत्यादि साकार जीवात्मा के नामांतर अथवा विशेषण हैं।

अपर चिदाभास की अपेक्षा चित् में प्रकाश वा ज्ञान की अधिकता हेतु, अविद्या और तत्कार्य देह के सहित, बिंबरूप चित् का आध्यासिक तादात्म्य संबंध नहीं होता है। इस हेतु अविद्या उपहित अर्थात् अविद्या वा आकारवती देह संगविरहित बिंबरूप चित् को, निराकार जीवात्मा कहते हैं। जीव साक्षी, द्रष्टा वा विज्ञाता, निर्गुण ब्रह्म, निरभिमानी,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



असंग, अभोक्ता, नित्यमुक्त, अंतर्यामी, परमकारण, इत्यादि निराकार जीवात्मा के नामान्तर अथवा विशेषण हैं।

## जीवात्मा के कार्य यथा :—

( १ )

प्रकाश अथवा ज्ञान की अल्पता हेतु, उपाधि वा देह के सहित संबद्ध होकर, अर्थात् आत्मा से भिन्न अनात्म देह के सहित अग्नि लौहवत् एकता प्राप्त वा अभिन्नभावापन्न होकर, भ्रांति वशतः साकार जीवात्मा, देह तथा देह संबंधी धर्म कर्म को अपने में आरोप करके, आध्यात्मिक आधिभौतिक तथा आधिदैविक नानाविध सुख दुख भोगता है। अथवा कहो कि नाना विध सुख दुख अनुभव करता है।

( २ )

सृष्टिकाल से ही भ्रांति वशतः साकार जीवात्मा कभी तो मैं देह हूँ एवं कभी देह मेरी है।

इस प्रकार से अवास्तव अर्थावधारण करके, नित्य प्रति नानाविध व्यवहार संपादन करता है। किंतु एक मात्र देहाधिकरण में, परस्पर मिथ्यात्व प्रतिपादक मैं देह हूँ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



एवं देह मेरी है, यह उभय वाक्य प्रयोग करने के कारण, उभय वाक्य ही मिथ्या प्रमाणित होते हैं। अर्थात् मैं देह हूँ, इस वाक्य को सत्य मानने से, देह मेरी है, यह वाक्य मिथ्या प्रमाणित होता है। एवं देह मेरी है, इस वाक्य को सत्य मानने से मैं देह हूँ यह वाक्य मिथ्या प्रमाणित होता है। क्योंकि एक मात्र देहाधिकरण में एक ही जीवात्मा का प्रयोग किया हुआ परस्पर विरुद्ध भावान्वित उभय वाक्य सत्य होना तो सर्वथा असंभव है। परन्तु भ्रांति एवं अभ्यास वशतः छोटा बड़ा सकल मानव ही, नित्य प्रति, परस्पर मिथ्यात्व प्रतिपादक, मैं और मेरी इन उभय वाक्यों का ही प्रयोग करते हैं।

पुनः किसी किसी काल में कोई कोई साकार जीवात्मा ऐसा भी कहता है कि मैं देह नहीं हूँ, एवं देह मेरी नहीं है। क्योंकि मैं तो वस्तुतः देह से भिन्न देहादि दृश्य पदार्थ का द्रष्टा अथवा विज्ञाता हूँ।

अपिच किसी किसी काल में कोई कोई साकार जीवात्मा ऐसा भी कहता है कि मैं तो वस्तुतः सर्वोपाधि विनिर्मुक्त शुद्ध ब्रह्म हूँ। इस प्रकार से एक मात्र साकार जीवात्मा भिन्न भिन्न काल में, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, प्रभृति भिन्न भिन्न आकार संपन्न अनेक प्रकार के देह को, एवं साथ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ही साथ कभी साकार जीवात्मा को, अपिच कभी जीवसाक्षी को, तथा कभी उपाधि विनिर्मुक्त शुद्ध ब्रह्म को, मैं कहकर कथन करता है। अतएव इनके बीच में वस्तुतः मैं कौन हूँ, भली भाँति विचारपूर्वक इसका निश्चय करना उचित वा आवश्यक है।

इति पंचम परिच्छेद समाप्त।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



# अथ षष्ठ परिच्छेद

## विषय—अहंतत्त्व का विचारः—

संस्कृत भाषा में जिसको अहं कहते हैं, हिन्दी भाषा में उसे ही मैं कहते हैं। सृष्टिकाल से ही भ्रांतिवशतः साकार जीवात्मा मैं देह हूँ, ऐसा अवास्तव अर्थावधारण करके, किसी किसी काल में, अर्थात् यदा यदा पुरुष लक्षण विशिष्ट स्थूल देह प्राप्त होता है। तत्तत् काल में अपने को पुरुष समझकर कहता है कि मैं पुरुष हूँ। पुनः किसी किसी काल में, अर्थात् यदा यदा स्त्री लक्षण विशिष्ट स्थूल देह प्राप्त होता है, तत्तत् काल में साकार जीवात्मा अपने को स्त्री समझकर कहता है कि मैं स्त्री हूँ। सुतरां इससे तो यही प्रमाणित होता है कि मैं स्थूल देह हूँ। क्योंकि स्त्रीत्व तथा पुरुषत्व धर्म तो स्थूल देह के बिना अन्य किसी का नहीं है। अपिच मुझे मारा है अथवा बाँध लिया है, एवं मैं अंध, खोरा, काला, गोरा, अतिशय मोटा वा पतला हूँ, इत्यादि वाक्य द्वारा भी प्रमाणित होता है कि मैं स्थूल देह हूँ, क्योंकि प्रहार तथा बंधनादि क्रिया का कर्म पद भी तो स्थूल देह ही है। एवं गौरत्व, कृशत्वादि धर्म समूह भी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



स्थूल देह का ही है। अतएव वस्तुतः मैं स्थूल देह हूँ अथवा नहीं, पहिले इसका ही विचार किया जाता है। यथाः—

(१)

दृश्यात्मिका अथवा कहो कि मिथ्याभूत जड़ात्मिका जन्मादि षड् विकारवती प्रकृति के जैसा अजड़ अविकारी, एक ही मेरा, कभी स्त्री कभी पुरुष, एवं कभी देवता, कभी मनुष्य, अपिच कभी कभी पशु पक्षी वृक्ष, लता, मीन कूर्म, इत्यादि अनेक प्रकार के देह रूप में परिणत होना सर्वथा असंभव हेतु, यही प्रमाणित होता है कि वस्तुतः मैं स्थूल देह नहीं हूँ।

(२)

दृश्यात्मिका घटादि अथवा देहादि जड़ वस्तु जो ज्ञातृत्व शक्ति विहीन है, एवं एकमात्र निरावरण आत्मा ही जो, जड़ चेतन समस्त पदार्थ का द्रष्टा अथवा विज्ञाता है, सो तो उपनिषदादि शास्त्रीय प्रमाण सिद्ध है। एवं मैं ही जो घट द्रष्टा के जैसा, स्थूल देह का भी द्रष्टा अथवा विज्ञाता हूँ, यह भी तो सब का ही अनुभूत है। अपिच द्रष्टा जो दृश्य पदार्थ से भिन्न है, सो तो विचारवान किसी का भी अस्वीकार्य नहीं है। अतएव नानाविध युक्ति तथा वेद

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



एवं वेद मूलक शास्त्रीय प्रमाण, अपिच निज निज अनुभूति द्वारा संशय शून्य रूप में, यही प्रमाणित होता है कि वस्तुतः मैं स्थूल देह नहीं हूँ।

अधुना सूक्ष्म देह में हूँ, अथवा नहीं ? इसका विचार किया जाता है। यथाः—

(१)

मेरी दर्शनेन्द्रिय शक्तिहीन हुई है, तथा मेरी बुद्धि अब ठीक नहीं है, अपिच मेरा प्राण अतीव अस्थिर, अथवा व्याकुल हुआ है, तथाच मेरा मन अतिशय चंचल है, इत्यादि वाक्यों से यही भाव द्योतन होता है कि सूक्ष्म देह मेरी है। एवं जो मेरी है, वह मैं होना तो सर्वथा असंभव है। अतएव इससे तो यही प्रमाणित होता है कि यथा मेरे पिता माता भगिनी भ्राता और वस्त्र, आभूषण इत्यादि मैं नहीं हूँ, तथा मेरी सूक्ष्म देह भी वस्तुतः मैं नहीं हूँ।

(२)

जैसा मैं स्थूल देह का द्रष्टा हूँ, वैसा ही मैं सूक्ष्म देह का भी द्रष्टा अथवा विज्ञाता हूँ। एवं सूक्ष्म देह का द्रष्टा होने के कारण, तथा चैतन्य स्वरूप द्रष्टा, जड़ात्मक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



दृश्य पदार्थ से भिन्न होने के कारण, शास्त्रीय प्रमाण, और अनुभूति द्वारा यही प्रमाणित होता है कि मैं वस्तुतः सूक्ष्म देह नहीं हूँ।

शंका :—

सूक्ष्म देह के (रूपदर्शनादि) कार्यों का तो अवश्य ही मैं द्रष्टा हूँ। परंतु सूक्ष्म देह अदृश्य होने के कारण, मैं उसका द्रष्टा कैसे हो सकता हूँ ?

समाधान :—

सूक्ष्म देह भी वस्तुतः अदृश्य नहीं है। क्योंकि—

"स तेषां सत्त्वांशसमष्टितः पंचक्रियाकृत्यात्मकमंतःकरण मसृजत्"

पैंगलोपनिषदुक्त इस वाक्य में क्रिया शब्द का प्रयोग न करके, पंचकृत्यात्मक मंतःकरणमसृजत्, ऐसा कहने पर ही तो कारण देहरूप अंतःकरण से, सूक्ष्मदेहान्तर्गत अंतःकरणवृत्ति जो भिन्न है, सो तो प्रतिपादित हो सकता था। परंतु ऐसा न कहकर, "पंचक्रियावृत्त्यात्मकम्" इत्याकार कहकर, अर्थात् 'उद्वर्त्तोहि ग्रंथः समधिकफलमाचष्टे" इस वाक्यावलंबनतया

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



क्रिया और वृत्ति इन दोनों शब्दों का प्रयोग करके, श्रुतिभगवती ने यही भाव द्योतन किया है कि—वृत्ति एवं तत् क्रिया इन दोनों का स्वरूप अभिन्न वा सर्वथा तुल्यरूप है।

और एक बात यह है कि—आवरण भंग के हेतुभूत, प्रत्येक वस्तु के स्वरूपाकार में परिणामशीला अंतःकरण-वृत्ति, यदा जिस वस्तु के स्वरूपाकार में परिणता होती है, तदा तिस वस्तु का ही जो दर्शन अथवा अपरोक्ष ज्ञान होता है, सो तो किसी भी विचारवान को अस्वीकार्य नहीं है।

उपरोक्त प्रमाणभूत वाक्यद्वय उद्धृत करने का अभिप्राय यह है कि —सूक्ष्म देह तथा सूक्ष्म देह का कार्य इन दोनों का स्वरूप अभिन्न वा सर्वथा तुल्यरूप होने के कारण, जिसको तुम सूक्ष्म देह का कार्य कहते हो, वह सूक्ष्म देह होना असंभव नहीं है। अर्थात् अंतःकरणवृत्ति यदासूक्ष्म देहान्तर्गत अहंकार वृत्ति के स्वरूपाकार में परिणता होती हैं, तदा अहंकार वृत्ति ही देखने में आती है और अंतःकरण वृत्ति, यदा अहंकार वृत्ति की अहंता ममता रूप कार्य के स्वरूपाकार में परिणता होती है, तदा अहंकार वृत्ति का कार्य ही देखने में आता है।

अपिच जब गुणसाम्या मूला प्रकृति आदि कार्यकारणात्मक समस्त जड़ जगत् ही दृश्यात्मक है, अर्थात् स्थूल

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सूक्ष्मकारण सकलवस्तु ही जब देखने में आती हैं, तब पुनः सूक्ष्मदेह क्यों न देखने में आवेगी ? सूक्ष्मदेह भी तो दृश्यात्मिका है। अतएव शास्त्रीय प्रमाण और नानाविध युक्ति, तथा अनुभूति द्वारा यही प्रमाणित होता है कि—मैं वस्तुतः सूक्ष्मदेह नहीं हूँ। मैं तो सूक्ष्मदेह का भी द्रष्टा अथवा विज्ञाता हूँ।

अधुना मैं कारण देह हूँ अथवा नहीं ? इसका विचार किया जाता है। यथाः—

सुषुप्ति अवस्था में अंतःकरणवृत्ति, जाग्रत तथा स्वप्न अवस्था के दृश्य निचय को परित्याग करके, तैलधारावत् अविच्छिन्नरूप में कारण देह अज्ञान तथा अज्ञानाच्छादित ब्रह्मानंद के स्वरूपाकार में परिणता होने के कारण, तत्काल में जो कारणदेह अज्ञान तथा अज्ञानाच्छादित ब्रह्मानन्द का दर्शन अथवा अनुभव होता है, सो तो सुषुप्ति अवस्था से व्युत्थान प्राप्त मानवगण मुखनिःसृत, "मैंने ऐसा सुखपूर्वक शयन किया था कि, सांसारिक शब्द स्पर्शरूप रसादि किसी विषय का भी ज्ञान नहीं था।" इस वाक्य से भी प्रमाणित होता है।

तात्पर्य यह है कि, अननुभूत विषय का स्मरण होना असंभव हेतु, यही कहना पड़ेगा कि सुषुप्ति अवस्था का अनुभूत



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कारणदेह अज्ञान तथा अज्ञानाच्छादित ब्रह्मानन्द का स्मरण करके ही, जाग्रत अवस्था में, इस प्रकार कहा जाता है कि—"मैंने ऐसा सुख पूर्वक शयन किया था कि सांसारिक शब्द, स्पर्श, रूप, रसादि किसी विषय का भी ज्ञान नहीं था।* अतएव कारणदेह का भी द्रष्टा अथवा विज्ञाता होने के कारण शास्त्रीय प्रमाण और नानाविध युक्ति तथा अनुभूति द्वारा यही प्रमाणित होता है कि वस्तुतः मैं कारण देह भी नहीं हूँ।

अधुना देहादि पदार्थ मेरे हैं अथवा नहीं? इसका विचार किया जाता है। यथाः—

( १ )

यदि ऐसा प्रश्न किया जाय कि, मानवगण अध्यास† अथवा भ्रांतिवशतः किसको मेरा कहते हैं, तो इसके उत्तर

---

*अभाव प्रत्ययावलंवनावृत्तिर्निद्रा" पातंजलदर्शनोक्त इस सूत्र से भी उपरोक्त बात प्रमाणित होती है।

†टिप्पणी—अध्यास अर्थात् मरुजल, रज्जु, सर्पादिवत् जो जिसका यथार्थ स्वरूप और गुण कर्म वा धर्म नहीं है, उसमें उसकी प्रतीति वा ज्ञान को अर्थात् अन्यथा प्रतीति वा मिथ्याज्ञान को अध्यास कहते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अध्यास द्विविध है—एक तो ज्ञानाध्यास, और द्वितीय अर्थाध्यास, अर्थात् अन्यथा प्रतीति वा मिथ्याज्ञान को ज्ञानाध्यास कहते हैं। एवं मिथ्या ज्ञान का विषय जो मिथ्यावस्तु है, उसे अर्थाध्यास कहते हैं॥

अर्थाध्यास का भी, पुनः, प्रकार भेद वर्णित हुआ है।

यथाः—एक तो स्वरूपाध्यास, और द्वितीय संसर्गाध्यास। अर्थात् ज्ञान द्वारा बाधयोग्य मिथ्या वस्तु का स्वरूप, अध्यस्त होने के कारण, उसे स्वरूपाध्यास कहते हैं। एवं आत्मा, त्रिकालाबाध्य वा सदा अपरोक्ष स्वरूप होने के कारण, नित्य वा सत्य स्वरूप आत्मा का तो स्वरूपाध्यास होना असंभव है। अतएव अनात्म वस्तु में जो आत्मा का संसर्गमात्र का ही अध्यास होता है, उसे ही संसर्गाध्यास अथवा संबंधाध्यास कहते हैं। शास्त्र में केवल सम्बन्धाध्यास, संबंध सहित संबंधी का अध्यास, केवल धर्माध्यास, धर्म सहित धर्मी का अध्यास, अन्योन्याध्यास, अन्यतराध्यास इत्यादि अध्यास के अनेक प्रकार भेद वर्णित हुये हैं। उपाधि के सहित चिदाभास का तादात्म्य संबंध अन्योन्याध्यास के अंतर्गत है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



में ऐसा कहा जा सकता है कि, वस्तुतः अहं देह न होने पर भी, आध्यासिक तादात्म्य संबंधवशतः साकार जीवात्मा का यदा जिस देह में अहंता रूप अभिमान होता है, अर्थात् यदा जिस देह में अहंज्ञान, अथवा यह देह मैं हूँ, इस प्रकार का बोध होता है, वह साकार जीवात्मा तदा तिस देह संबंधी हस्त, पद, मस्तक, पिता, माता, पुत्र, कन्या, वस्त्र, आभूषण इत्यादि पदार्थ को मेरा कहकर कथन करता है।

परंतु पहिले ही जब उत्तम रूप से प्रमाणित हुआ है कि वस्तुतः मैं देह नहीं हूँ, तब पुनः अहंतारूप अभिमानास्पद, देह सम्बन्धी हस्त, पद, मस्तक, पिता-माता, पुत्र-कन्या, वस्त्र आभूषण इत्यादि पदार्थ निचय, मेरे होवेंगे कैसे ? वस्तुतः ऐसा होना तो सर्वथा असंभव है। अतएव इससे तो संशय शून्यतया यही प्रमाणित होता है कि वस्तुतः देहादि पदार्थ मेरे नहीं हैं।

( २ )

तृतीय परिच्छेद में वर्णित हुआ है कि अहंकार वृत्ति देहादि पदार्थ में, अहंता ममता रूप अभिमान करती है। एवं जो अभिमान करती है, उसे ही तो अभिमानिनी कहना उचित है। कार्य करेगी कोई, और कर्ता कहोगे अन्य किसी को ? अर्थात् अभिमान करेगी अहंकारवृत्ति, और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अभिमानी कहोगे जीवात्मा को वा मुझको ? ऐसा कहना तो विचार दृष्टि से ठीक नहीं जँचता है। अतएव मैं वस्तुतः देहादि का अभिमानी* न होने के कारण, यही

*टिप्पणी—कोई यदि ऐसी आशंका करे कि श्रुति स्मृति आदि शास्त्रों का किसी किसी स्थल में, ईश्वर तथा जीवात्मा को अभिमानी कहकर कथन किया है। अथच यहाँ पर यह भाव प्रकटित हुआ है कि, मैं वस्तुतः देहादि का अभिमानी नहीं हूँ। अतएव यह वाक्य तो शास्त्रीय प्रमाण विरुद्ध है। तो उसकी आशंका निवारण के लिये, ऐसा कहा जा सकता है कि, लौकिक व्यवहार का अनुवाद करके शास्त्रों के किसी किसी स्थल में, ईश्वर तथा जीवात्मा को अभिमानी कहकर वर्णन किया है, यह बात ठीक है। परंतु अनुवादात्मक श्रुति वाक्य का भी जो प्रमाणत्व नहीं है, यह वाक्य भी ध्रुव सत्य है। अपिच श्रुति भगवती ने तो सुस्पष्टतया कथन किया है कि, अहंता ममतारूप अभिमान कार्य, अहंकार वृत्ति का है। एवं यह श्रुतिवाक्य, अनुवादात्मक न होने के कारण, इसका प्रमाणत्व सिद्ध है। अतएव मैं जो वस्तुतः अभिमानी नहीं हूँ यह बात शास्त्रीय प्रमाण विरुद्ध नहीं है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्रमाणित होता है कि वस्तुतः देहादि पदार्थ निचय मेरे नहीं हैं।*

अब यदि किसी के चित्त में ऐसा भाव उदय हुआ हो कि, देह जो वस्तुतः मैं नहीं हूँ; एवं देह तथा देह सम्बन्धी हस्तपद, मस्तक, पिता, माता, पुत्र, कन्या, वस्त्र, आभूषण इत्यादि पदार्थ निचय भी जो वस्तुतः मेरे नहीं हैं। सो तो युक्ति तथा शास्त्रीय प्रमाण और अनुभूति द्वारा समझ में आ गया है। परन्तु क्यों? साकार ईश्वर तथा ज्ञानी, अज्ञानी, छोटे बड़े समस्त मानवगर्ण, देहादि दृश्य निचय को मैं और मेरा कहकर नानाविध व्यवहार सम्पादन करते हैं, सो अभी तक भलीभाँति समझ में नहीं आया है। तो अतः पर, मैं जो कुछ कहता हूँ, सो ध्यानपूर्वक श्रवण करो।

बात यह है कि—विभिन्न सूक्ष्म देहान्तर्गत अहंकार-

---

*टिप्पणी—वर्तमान समय के प्रचलित विचारचन्द्रोदयादि किसी किसी ग्रंथ में ऐसा वर्णित हुआ है कि, देह मेरी नहीं है, क्योंकि देह तो पंचभूतों की है। परंतु देह का उपादानकारण द्योतक वाक्यद्वारा देह जो मेरी नहीं है, यह बात प्रमाणित होना असंभवहेतु, ऐसा कहना विचार-संगत नहीं है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वृत्ति, यदा जिस प्रकार लक्षण विशिष्ट स्थूल देह में अहंता रूप अभिमान करती है, तदा बुद्धिवृत्ति भी यह देह मैं हूँ इस प्रकार निश्चय करती है। एवं बुद्धि कृत निश्चयानुसार वाक्-इन्द्रिय, मैं बालक, बालिका, युवक, युवती, अन्ध, खोरा, काला, गोरा, मोटा वा पतला हूँ; इत्यादि नानाविध वाक्य उच्चारण करती है। और अहंकार वृत्ति, यदा अहंता रूप अभिमानास्पद देह तथा देह सम्बन्धी पदार्थों में, ममता रूप अभिमान करती है; तदा बुद्धि वृत्ति भी यह मेरा है, इस प्रकार निश्चय करती है; एवं बुद्धिकृत निश्चयानुसार वाक् इन्द्रिय, यह मेरा है, इस प्रकार वाक्य उच्चारण करती है। केवल इतना ही नहीं जागतिक समस्त कार्य ही देह रूप में परिणता प्रकृति संपादन करती है। तात्पर्य यह है कि, साकार ईश्वर तथा ज्ञानी, अज्ञानी, छोटे, बड़े मानवों के बीच में कोई भी देहादि दृश्य निचय को मैं और मेरा कहकर, नानाविध व्यवहार संपादन नहीं करते हैं। वस्तुतः देह सम्बन्धी समस्त व्यवहार, देह द्वारा ही संपादित होते हैं। परन्तु प्रज्वलित अग्नि के सहित, चक्र वा त्रिकोणादि रूप गुण विशिष्ट लौहखंड का संयोग सम्बन्ध वशतः, निज-निज रूप गुणादि परस्पर अध्यस्त होकर जैसा तादात्मय् अर्थात् एकरूपत्व वा अभिन्नत्व प्राप्त होता है। तद्वत् चित्

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्रतिबिंब वा चिदाभास के सहित, उपाधि वा देह के सम्बन्ध वशतः परस्पर अध्यस्त होकर, अर्थात् देह में चिदाभास का संसर्ग मात्र अध्यस्त होकर, एवं चिदाभास में रूपगुण धर्म कर्मादि विशिष्ट देह का स्वरूप अध्यस्त होकर, अवास्तव तादात्म्य हेतु, अर्थात् देह के सहित चिदाभास का एक रूपत्व वा अभिन्न भावापन्नत्व हेतु, साकार ईश्वर तथा ज्ञानी* अज्ञानी छोटे बड़े समस्त प्राणीगण सृष्टि काल से ही मैं और मेरा कहकर, नानाविध व्यवहार संपादन करते हैं। ऐसा बोध होता है। किन्तु वे वस्तुतः कुछ भी नहीं करते

---

*टिप्पणी—यहाँ पर वक्तव्य यह है कि, तुरीय अवस्था में, उपाधि का बाध हेतु, तादात्म्य संबंध का बाध होने पर भी, जाग्रदादि अवस्था में, साकार ईश्वर तथा कृतकृत्य जीवनमुक्त ज्ञानियों का, उपाधि वा देह के सहित आध्यासिक तादात्म्य संबंध विद्यमान रहता है। इसलिये ही साकार ईश्वर तथा जीवनमुक्त ज्ञानीगण, तुरीय अवस्था से व्युत्थित होकर व्यवहार काल में, अज्ञवत् मैं और मेरा कहकर नानाविध व्यवहार संपादन करते हैं। परंतु ज्ञानीगण अपने को अकर्ता समझते हैं; और अज्ञजन अपने को ही कर्ता समझते हैं। इतना ही अंतर है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हैं। दैहिक समस्त कार्य ही जो देह द्वारा संपादित होते हैं; यही सुनिश्चित सिद्धान्त की बात है।

अधुना बिंब का प्रतिबिंब वस्तुतः बिंब से भिन्न है, अथवा अभिन्न है ? इसका विचार किया जाता है। यथा :—

दर्पणादि उपाधि में बिंब का प्रकाश भासमान होने पर, उसे प्रतिबिंब कहते हैं। चर्म मांसादि विशिष्ट मुख के प्रतिबिंब में, वैज्ञानिक उपाय से भी ढूँढ़ने से यत् किंचित् चर्म मांसादि मिलेंगे क्या ? लेशमात्र भी नहीं, कितना ही क्यों न ढूँढ़ो, एकमात्र प्रकाशभिन्न अन्य कुछ भी नहीं मिलेगा। अतएव निज-निज अनुभव और नानाविध युक्ति तथा शास्त्रीय प्रमाणों से यही प्रमाणित होता है कि—प्रतिबिंब, मुखादि बिंब के प्रकाशभिन्न अन्य कुछ भी नहीं है। एवं धर्मी से, तत् स्वरूप भूत धर्मादियों का भिन्न होना सर्वथा असंभव हेतु; विचारादि द्वारा संशय शून्यतया यही निश्चित होता है कि, मुखादि बिंब का प्रकाश, अथवा प्रतिबिंब, बिंब से वस्तुतः अभिन्न है। परन्तु मुखादि बिंब से, उपाधि रूप दर्पण भिन्न होने के कारण, दर्पण में भासमान, बिंब का प्रकाश अथवा प्रतिबिंब, बिंब से भिन्न रूप में देखने में आता है। किंतु यह भिन्नता दर्शन मरुजल रज्जु सर्पादि दर्शनवत् भ्रान्तिमूलक है। अतएव बिंब का प्रतिबिंब जो बिंब से

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वस्तुतः अभिन्न है; यही नानाविध युक्ति तथा शास्त्रीय प्रमाणादि द्वारा सुनिश्चित सिद्धांत की बात है।

यह तो हुई दृष्टांत की बात। अधुना दार्ष्टांत की बात सुनो। तद् यथा :—

( १ )

जैसा दर्पण उपाधि में भासमान बिंब का प्रकाश अथवा प्रतिबिंब, बिंबरूप मुखादि के प्रकाश से वस्तुतः अभिन्न है। वैसा ही माया एवं अविद्या उपाधि में भासमान् चित्-प्रतिबिंब वा चिदाभास, बिंबरूप चित् से वस्तुतः अभिन्न है।

( २ )

जैसा जलरूप उपाधि में, भासमान सूर्य का प्रकाश अथवा प्रतिबिंब, बिंब रूप सूर्य से वस्तुतः अभिन्न है, वैसा ही चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास, बिंबरूप चित् से वस्तुतः अभिन्न है।

( ३ )

चिदात्मक ब्रह्म ही तो चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास का स्वरूप है। सुतरां चित् प्रतिबिंब, वा चिदाभास, अपने स्वरूप से भिन्न होगा कैसे? नित्य, वा अनित्य, जो कोई

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भी वस्तु ही क्यों न हो, अपने स्वरूप से भिन्न होना तो सर्वथा असंभव है। अतएव इससे भी तो यही प्रमाणित होता है कि, चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास, बिंब रूप चित् से वस्तुतः अभिन्न है।

( ४ )

"द्रष्टा दृश्यवशाद्बद्धो दृश्याभावे विमुच्यते" तात्पर्य यह है कि—श्रुति भगवती ने यहाँ पर उपाधि विशिष्ट अर्थात् उपाधि के सहित आध्यासिक तादात्म्य बन्धनाबद्ध चिदाभास जो, उपाधि उपहित, अर्थात् उपाधि के सहित तादात्म्य बन्धन विमुक्त बिंबरूप द्रष्टा से वस्तुतः अभिन्न है, यह भाव द्योतनार्थ ही चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास को द्रष्टा नाम से अभिहित किया है।

अपिच—चित् प्रतिबिंब, वा चिदाभास, बिंबरूप चित् से वस्तुतः अभिन्न होने के कारण ही तो, श्रुति भगवती ने, उपाधि के सहित आध्यासिक तादात्म्य बन्धनाबद्ध, साधन चतुष्टय संपन्न जीव के लिये, अभिन्नतया द्रष्टा ध्यान, अथवा निदिध्यासन करने के विधि वा आज्ञा प्रदान की है। अतएव निज-निज अनुभव और नानाविध युक्ति तथा वेद एवं वेदा-विरुद्ध वेदांतादि शास्त्रीय प्रमाणों से, यही प्रमाणित होता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



है कि—चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास, बिंबरूप चित् से वस्तुतः अभिन्न है।

आनुषंगिक विषय की आलोचना यहाँ पर ही समाप्त करके, अधुना प्रकरण संबंधी प्रधान विषय अहंतत्त्व विचारणीय है।

जीवात्मा के स्वरूप वर्णन काल में, उक्त हुआ है कि, अविद्या प्रतिबिंबित चैतन्य ही, जीवचैतन्य वा जीवात्मा नाम से अभिहित हुआ है। एवं तत्र यह भी वर्णित हुआ है कि, व्यवहारतः यहाँ पर तीन वस्तुयें देखने में आती हैं। एक तो अधिष्ठानात्मक बिंब चैतन्य, और द्वितीय अविद्या, एवं तृतीय अविद्या-उपाधि में भासमान प्रतिबिंब चैतन्य। इन तीनों के बीच में, स्थूल सूक्ष्म देह के सहित, अविद्या उपाधि, वा कारण देह जो, वस्तुतः मैं नहीं हूँ; सो तो संशय शून्यतया पहिले ही प्रमाणित हुआ है। अवशेष बिंब तथा प्रतिबिंब चैतन्य, वा ब्रह्म मैं हूँ, अथवा नहीं हूँ ? इसका विचार किया जाता है। तद् यथा :—

( १ )

वेद एवं वेदाविरुद्ध वेदांतादि शास्त्र में, ऐसा वर्णित हुआ है कि, जिसका बाध होता है; अर्थात् जो किसी काल

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



में, भासित, वा दृष्ट, अथवा विज्ञात होकर, पुनः किसी काल में, विलुप्त, वा अदृष्ट, अथवा अविज्ञात होता है; किंवा जो वस्तु पहिले नहीं थी, और अधुना विद्यमान है, किंतु आगे नहीं रहेगी, सो कार्य कारणात्मक समस्त जगत् ही, मरुजल रज्जुसर्पादि दर्शनवत्, अनित्य वा मिथ्या है। और किसी काल में भी जिसका बाध नहीं होता है; अर्थात् जो, अविकृत रूप में सदाकाल विद्यमान रहता है; सो त्रिकालाबाध्य अखंडाद्वितीय सच्चिदानन्दात्मक ब्रह्म वा आत्मतत्त्व ही, नित्य वा सत्य है। उपरोक्त शास्त्रीय वाक्य के सहित, अपने अनुभव का मिलान करके देखने से, संशय शून्यतया यही जानने में आता है कि, मैं त्रिकालाबाध्य ब्रह्म हूँ। क्योंकि देहादि दृश्यमान जगत् जो बाध योग्य है, एवं भूत भविष्यत् वर्त्तमान किसी भी काल में जो मेरा बाध अर्थात् अप्रतीति वा अभाव नहीं होता है, सो तो मेरा तथा सब का ही अनुभूत है।

( २ )

उपनिषदादि वेदांत शास्त्र के सिद्धांत की बात यह है कि, ज्ञातृत्व शक्ति विहीन होने के कारण, घटादि वा बुद्धि आदि जड़ वस्तु समूह, अपने को भी नहीं जान सकती है,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तथा अन्य किसी को भी नहीं जान सकती है; एकमात्र निरावरण ब्रह्म, अथवा कहो कि—आत्मतत्त्व ही, जड़ चेतन समस्त पदार्थ का द्रष्टा अथवा विज्ञाता है।* सुतरां वेद वेदांतादि शास्त्रीय वाक्य के सहित्र अपने अनुभव का मिलान करके, भली भाँति निरीक्षण करने से संशय शून्य रूप में, यही जानने में आता है कि मैं ही जड़ चेतन समूह पदार्थ का द्रष्टा अथवा विज्ञाता हूँ। क्योंकि मैं ही जो, मुझको, एवं

---

*टिप्पणी—कोई यदि एसी कल्पना करे कि, अंतः-करण वृत्ति का अवलंवर्न करके ही आत्मा समस्त वस्तु को जानता है। अतएव एक मात्र आत्मा को ही विज्ञाता कहना उचित नहीं है। तो उसके भ्रम निवारणार्थ ऐसा कहा जा सकता है कि, जब अंतःकरण वृत्ति नहीं थी। एवं आत्मा की आच्छादिका अविद्या तथा मायारूपा प्रकृति भी नहीं थी, तब एक मात्र निरावरण ब्रह्म, मरुजल रज्जु सर्पादिवत्, भासमाना गुण साम्यामूला प्रकृति को कैसे देखा अथवा विज्ञात हुआ? अंतःकरण वृत्ति तो आवरण भंग के निमित्तमात्र है। अतएव एक मात्र निरा-वरण आत्मा ही जो, द्रष्टा अथवा विज्ञाता है; यही सुनिश्चित सिद्धांत की बात है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



दर्शन योग्य, जड़ चेतन समूह पदार्थ को जानता हूँ। सो तो मेरा तथा सब का ही अनुभूत है।

( ३ )

ब्रह्म वस्तुतः, एकमात्र अखंडाद्वितीय होने पर भी, व्यवहारतः उपाधिविशिष्ट, प्रतिबिंब चैतन्य स्वरूप में, अर्थात् देह के सहित तादात्म्य बन्धनाबद्ध, साकार जीव चैतन्य रूप में, मैं ही जो, देह संबंधी नानाविध सुख दुःखादि अनुभव करता हूँ; सो तो मेरा, तथा सब का ही अनुभूत है।

एवं उपाधि उपहित अर्थात् देह के सहित तादात्म्य बन्धनविमुक्त, द्रष्टा, वा निराकार जीव चैतन्य रूप में, मैं ही जो मुझको, एवं दर्शन योग्य, जड़चेतन समूह पदार्थ को जानता हूँ; सो भी तो मेरा तथा सब का ही अनुभूत है।

( ४ )

भक्त वत्सला परम कल्याणकारिणी श्रुति भगवती ने, "तत्त्वमसि" आदि महावाक्यों का उपदेश प्रदानपूर्वक, अति सुस्पष्ट रूप से ही कथन किया है कि, वस्तुतः तुम अखंडाद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म हो।

प्रकरणोपसंहार काल में वक्तव्य यह है कि, नानाविध युक्ति तथा वेद एवं वेदाविरुद्ध वेदांतादि शास्त्रीय प्रमाणों

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



के सहित, निज-निज अनुभव का मिलान करके, भली भाँति विचार करने पर, संशय शून्य रूप में, यही जानने में आता है कि, वस्तुतः मैं सच्चिदानन्द स्वरूप अखंडाद्वितीय ब्रह्म हूँ।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः॥

इति षष्ठ परिच्छेद समाप्त।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



# सप्तम परिच्छेद

## विषय विविध

### अथ चेतावनी

अहं तत्त्व विचाराख्य प्रसंग के उपसंहार काल में, वर्णित हुआ है कि, निज-निज अनुभव और नानाविध युक्ति, तथा उपनिषदादि शास्त्रीय प्रमाण अवलंबनपूर्वक, भली भाँति विचार करने से, संशय शून्याकार में, यही जानने में आता है कि, वास्तव में तो अहं वा मैं त्रिकालाबाध्य सच्चिदानन्द स्वरूप अखंडाद्वितीय ब्रह्म हूँ। अतएव श्रोताओं के बीच में, जो-जो संशय शून्य होकर, इत्याकार निश्चय करने में समर्थ हुए हैं कि—"अहं ब्रह्मास्मि" अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ। वे तो अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानी हैं, इस विषय में तो अणु मात्र भी संदेह नहीं है। क्योंकि यह तो निज-निज अनुभव, तथा शास्त्रीय प्रमाणादि द्वारा प्रमाणित है।

श्रुति भगवती ने कहा है कि :—

"अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद परोक्ष ज्ञानमेव तत्।
अहं ब्रह्मेति चेद्वेद साक्षात्कारः स उच्यते॥"

इति कृष्णयजुर्वेदीय वराहोपनिषत्।



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भाषार्थ—श्रवणादि द्वारा ब्रह्म है, इस प्रकार निश्चयात्मक ज्ञान को परोक्ष ज्ञान कहते हैं; एवं स्वकीय अनुभव तथा शास्त्रीय प्रमाणादि द्वारा, मैं ब्रह्म हूँ, इत्याकार ज्ञान ही साक्षात्कार, अथवा अपरोक्ष नाम से अभिहित होता है।

परन्तु यह अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान द्विविध है। एक तो सप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान, एवं द्वितीय अप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान। इन दोनों के बीच में, अप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानीवृन्द ही, कृतकृत्य जीवन्मुक्त नाम से अभिहित होते हैं। एवं वही कैवल्य मुक्ति के अधिकारी हैं। अतएव जो लोग सप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानी हैं; अर्थात् जिन लोगों का मल, विक्षेप तथा आवरणाख्य प्रतिबन्धत्रय दूरीभूत नहीं हुआ है। वे लोग, अपने को कृतकृत्य समझकर, शास्त्रविहित निष्काम कर्म, और उपासना, तथा यथाविधि निदिध्यासन विवर्जित होकर, दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति तथा नित्य निरतिशय सुख संप्राप्ति रूप कैवल्य मुक्तिलाभ से वंचित न होवें।

अथ द्विविध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान का लक्षणादि वर्णन :—

मल, विक्षेप तथा आवरणाख्य प्रतिबन्धत्रय विद्यमान रहते हुए भी, निज-निज अनुभव, तथा शास्त्रीय प्रमाणादि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



द्वारा जीव वृन्द का जो, मैं ब्रह्म हूँ, इत्याकार अपरोक्ष ब्रह्म ज्ञान उदय होता है, उसे सप्रतिवद्ध अपरोक्ष ब्रह्म ज्ञान कहते हैं। सप्रतिवद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान काल में, परोक्ष रूप में जगत् का बाध होता है; अर्थात् जगत् का मिथ्यात्व निश्चय होता है। किंतु अप्रतीति वा अपरोक्ष रूप में, जगत् का बाध नहीं होता है। अर्थात् सप्रतिवद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान काल में, जगत् का भी दर्शन होता है और सप्रतिवद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान काल में, आत्मा से भिन्न अनात्म देह के सहित, प्रतिबिंब रूप मेरा, आध्यासिक तादात्म्य संबंध विद्यमान रहने के कारण, मैं जो देह के सहित अभिन्न वा एकीभावापन्न होकर, नानाविध सुख दुख अनुभव करता हूँ; सो भी तो शास्त्रीय प्रमाणादि द्वारा प्रमाणित, तथा अपरोक्ष रूप में, सब का ही अनुभूत है। अतएव यह सप्रतिवद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान, कार्यकारणात्मक जगद्विरहित, एक मात्र अखंडाद्वितीय ब्रह्मज्ञान नहीं है, यह तो जगद्विशिष्ट ब्रह्मज्ञान है। एवं इस प्रकार के अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान काल में, देहादि दृश्य का, अप्रतीति वा अपरोक्ष रूप में बाध न होने के कारण, चित् जड़ की ग्रंथिभेदन भी नहीं होता है, और ग्रंथिभेदन न होने के कारण, परमात्मा के सहित जीवात्मा की एकतासिद्धि भी नहीं होती है; तथा निरावरण ब्रह्मानन्द वा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



निरतिशय सुख का भी अनुभव नहीं होता है। अपिच जन्म मरण का भी अवसान नहीं होता है। तात्पर्य यह है कि, सप्रतिवद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान से, दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति, तथा नित्य निरतिशय सुख संप्राप्ति रूप, कैवल्य मुक्तिलाभ नहीं होता है।

अपर यथाविधि निदिध्यासन के प्रभाव से, जब कार्य-कारणात्मक, समस्त जगत् का अपरोक्ष रूप में बाध होता है, तथा आवरणात्मक प्रतिबन्ध भी दूरी भूत होता है; तब उस काल के ज्ञान को ही अप्रतिवद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान कहते हैं। एवं इस अप्रतिवद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान काल में, निरावरण ब्रह्मानन्द का अनुभव, और चित्जड़ की ग्रंथिभेदन, तथा परमात्मा के सहित जीवात्मा की एकतासिद्धि, वा जीवन्मुक्ति अवस्था की प्राप्ति होती है। एवं इस अप्रतिवद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान से ही, कृतकृत्य जीवन्मुक्त के प्रारब्ध भोगावसान काल में, दुःख की आत्यंतिक निवृत्ति, तथा नित्य निरतिशय सुख संप्राप्ति रूप कैवल्य मुक्तिलाभसिद्ध होता है।

## अथ सप्रतिवद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान की सुलभता वर्णन।

वेदवेदांतादि शास्त्रवाक्य के सहित, निज-निज अनुभव

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



को मिलाकर, जिस प्रकार विचार करने से, आस्तिक, तथा बुद्धिमान बुद्धिमती नरनारीगण, अनायास से, और अति अल्प काल में ही, अर्थात् मिनिटों के बीच में ही, संशय शून्याकार में, सप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सकता है; सो विचार प्रक्रिया, प्रमाणवाक्य के सहित यहाँ पर वर्णन किया जाता है। यथा :—

( १ )

जो त्रिकालबाध्य है, अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमान, किसी काल में भी, जिसका बाध अर्थात् अप्रतीति वा अभाव नहीं होता है, वह ब्रह्म अथवा आत्मतत्त्व ही नित्य वा सत्य है। एवं तद्भिन्न बाध योग्य अर्थात् सुषुप्ति आदि अवस्था में अप्रतीति वा अभाव योग्य देहादि कार्यकारणात्मक समस्त जगत् ही अनित्य वा मिथ्या है।

( २ )

घटादि वा बुद्ध्यादि जड़वस्तु समूह अपने को भी नहीं जान सकती है; तथा अन्य किसी को भी नहीं जान सकती है; एकमात्र ब्रह्म वा आत्मतत्त्व ही द्रष्टा अथवा विज्ञाता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



( ३ )

ब्रह्म स्वयं प्रकाश है; अर्थात् ब्रह्म सर्वदा आप ही आपको भी जानता है।

( ४ )

ब्रह्म वा आत्मतत्त्व ही निरतिशय प्रिय, अर्थात् सबसे अधिक प्रिय है।

जिज्ञासु का अनुभव द्योतन। यथा :—

( १ )

जाग्रत अवस्था में विद्यमान रहकर, तुम ही जो द्रष्टा वा विज्ञाता रूप से, स्थूल देहादि दृश्यसमूह को देखते हो अथवा जानते हो; तथा भोक्तारूप से तुम ही जो, नानाविध सुख दुख अनुभव करते हो, सो तो तुम्हारा अनुभूत है।

अपिच

स्वप्न अवस्था में विद्यमान रहकर तुम ही जो, स्वप्न-दृश्य वस्तुसमूह को जानते हो तथा नानाविध सुखदुख अनुभव करते हो; सो भी तो तुम्हारा अनुभूत है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तथाच

सुषुप्ति अवस्था में स्थूल सूक्ष्म समस्त जगत् का अपरोक्ष-बाध अर्थात् अप्रतीति होते हुए भी, तदा विद्यमान रहकर तुम ही जो कारणदेह अज्ञान को जानते हो, तथा अज्ञानाच्छादित आनन्द का अनुभव करते हो, सो भी तो तुम्हारा अनुभूत है।

( २ )

अतीतकाल में तुम विद्यमान थे, वर्त्तमान काल में तुम विद्यमान हो, एवं भविष्यत् काल में तुम विद्यमान रहोगे, तात्पर्य यह है कि—किसी काल में भी तुम्हारा जो, बाध अर्थात् अप्रतीति वा अभाव नहीं होता है, सो भी तो तुम्हारा अनुभूत है।

( ३ )

वस्तुतः अरूप अशब्द अगन्ध तथा अरस और अस्पर्श होने के कारण, इन्द्रियग्राह्य न होने पर भी, स्वयं प्रकाश-स्वरूप तुम ही जो, सर्वदा सकल अवस्था में अपरोक्षतया तुमको भी जानते हो, सो भी तो तुम्हारा अनुभूत है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



( ४ )

तुम ही जो, तुम्हारा निरतिशय प्रिय, अर्थात् सबसे अधिक प्रिय हो, सो भी तो तुम्हारा अनुभूत है।

अब तुम्हारा अनुभव के सहित वेदवेदांतादि शास्त्रीय प्रमाण वाक्यों का मिलान करके भलीभाँति विचारपूर्वक संशयशून्यतया निश्चय करो तुम कौन हो? अर्थात् तुम बाध योग्य मिथ्याभूत दृश्यात्मक देह हो? अथवा तुम देहादि दृश्यों का द्रष्टा तथा सुखदुःखों का अनुभवकर्ता वा विज्ञातास्वरूप सत्यात्मक ब्रह्म हो? सो विचारपूर्वक निश्चय करो।

पहिले वर्णित हुआ है कि—वेद एवं वेदाविरुद्ध शास्त्र-श्रवणमननों से उत्पन्न हुआ, ब्रह्म है, इत्याकार ज्ञान को परोक्षज्ञान कहते हैं और मैं ब्रह्म हूँ इत्याकार ज्ञान ही साक्षात्कार अथवा अपरोक्ष नाम से अभिहित होता है।

## अपिच

"तत्त्वमसि" आदि महावाक्यों के उपदेश प्रदान काल में, विश्वहितैषिणी श्रुति भगवती ने अति सुस्पष्ट रूप से भी कथन किया है कि, वह ब्रह्म तुम ही हो।

अतएव तुम्हारा अनुभव श्रुतिवाक्यों के अनुरूप होने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



के कारण, तुमही जो ब्रह्म हो, इस विषय में तुम्हारा यदि अणुमात्र भी संशय होवे तो उसे प्रकट करो। और संशय न होने पर तो यही कहना पड़ेगा कि—तुम सप्रतिवद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानी हो। एवं तुमको भी यही कहना पड़ेगा कि, मैं सप्रतिवद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानी हूँ।

## अथ अप्रतिवद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान की दुर्लभता वर्णन

ईश्वरावतार श्री श्री भगवान श्रीकृष्णजी ने अति सुस्पष्ट रूप से अप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान की दुर्लभता-ज्ञापनार्थ कथन किया है कि:—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मांवेत्ति तत्त्वतः॥

भाषार्थः—शास्त्रीयज्ञान कर्म योग्य अनेक सहस्र मनुष्यों के बीच में, कोई कोई व्यक्ति ही, अनेक जन्मकृत पुण्यों के प्रभाव से आत्मज्ञानसिद्धि के लिये प्रयत्न करता है; एवं प्रयत्नकारी सिद्धों के बीच में, अर्थात् जिन लोगों ने उपयुक्त प्रयत्नद्वारा, सप्रतिबद्ध अपरोक्ष रूप में, ब्रह्म को जान लिया है; उन सिद्धों के बीच में, कोई कोई व्यक्ति ही, वेद विहित निदिध्यासन परिपाक के अंत में आवरण-भंग होने पर, "तत्त्वतः" अर्थात् अप्रतिबद्ध अपरोक्ष रूप में

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



"मां" परमात्मानं "वेत्ति", अर्थात् अखंडाद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म को जानता है।

विश्व हितैहितैषिणी श्रुति भगवती ने भी कहा है कि—

"अनुभूतिं विनामूढ़ वृथा ब्रह्मणि मोदते।
प्रतिबिंबित शाखाग्रफलास्वादन मोदवत्।"

भाषार्थः—अप्रतिवद्ध अपरोक्षानुभूति विना, सप्रतिवद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानियों के बीच में, जो मूढ़ है; वह अपने को कृतकृत्य ब्रह्मज्ञानी समझकर, वृथा ही आनन्दित होता है। उसका वह आनन्द, प्रतिबिंबित शाखाग्र फलास्वादन-जनित आनन्द के ही तुल्य है।

पुनः श्रुति भगवती ने कहा है कि—

"अधीत्य चतुरो वेदान् बहुशास्त्रान्यनेकशः।
ब्रह्मतत्त्वं न जानाति दर्वी पाकरसं यथा॥"

भाषार्थः—जैसी दर्वी (पाक द्रव्य संचालन लकड़ी विशेष) पाकरस को नहीं जान सकती है; तद्वत् निपुण व्यक्ति भी, वेद, वेदांत, न्याय, मीमांसा इत्यादि अनेक प्रकार के बहु शास्त्र अध्ययन करके, सप्रतिवद्ध अपरोक्षतया ब्रह्म को जानते हुए भी वेदवेदांतादि शास्त्रविहित, निष्काम कर्म, तथा उपासना, और निदिध्यासन विना, अप्रतिवद्ध अपरोक्ष रूप में ब्रह्म को नहीं जान सकता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पुनरपि श्रुति भगवती ने कहा है कि,

"नाविरतो दुश्चरितान्नाशांतो ना समाहितः।
नाशांतो मानसो वापि प्रज्ञानेनैन प्राप्नुयात्॥"

भाषार्थः—जो व्यक्ति वेद निषिद्ध पापकर्म से निवृत्त नहीं हुआ है, वह सप्रतिवद्ध अपरोक्ष रूप में अनुभूत इस आत्म तत्त्व को अखंडाद्वितीय स्वरूप में प्राप्त नहीं होता है। अर्थात् जीवनमुक्त अवस्था वा कैवल्य मुक्ति लाभ नहीं कर सकता है। एवं जो व्यक्ति पाप कर्म से निवृत्त हुआ है, परंतु अशांत है, अर्थात् अजितेन्द्रिय है, वह भी सप्रतिवद्ध अपरोक्ष रूप में अनुभूत इस आत्मतत्त्व को, अखंडाद्वितीय स्वरूप में प्राप्त नही होता है। एवं जो व्यक्ति पाप कर्म से विरत और जितेन्द्रिय भी हुआ है; परंतु अशांत मानस है, अर्थात् उपासना द्वारा जिसके चित्त की चंचलता दूरीभूत नहीं हुई है, वह भी सप्रतिवद्ध अपरोक्ष रूप में अनुभूत इस आत्मतत्त्व को, अखंडाद्वितीय स्वरूप में प्राप्त नहीं होता है। अपिच जो व्यक्ति पापकर्म से विरत, और जितेन्द्रिय, तथा शांतमानस भी हुआ है, परंतु असमाहित है, अर्थात् निर्विकल्प समाधि अवस्था प्राप्त नहीं हुई है; वह भी सप्रतिवद्ध अपरोक्षरूप में अनुभूत इस आत्मतत्त्व को, अखंडाद्वितीय स्वरूप में प्राप्त नहीं होता है। अभिप्राय

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



यह है कि, जो व्यक्ति, वेद निषिद्ध पापकर्म से विरत होकर, निष्काम कर्म के अनुष्ठान द्वारा शुद्ध मानस हुआ है, एवं शुद्धांतः करणोद्भूत विचारजन्य वैराग्य वशतः जितेन्द्रिय होके उपासना द्वारा शांतमानस होकर, यथा विधि निदिध्यासन प्रभाव से समाहित हुआ है, अर्थात् निर्विकल्प समाधि अवस्था प्राप्त हुई है, आवरण भंग होने के कारण वही, अप्रतिवद्ध अपरोक्ष रूप में अखंडाद्वितीय ब्रह्म को प्राप्त होता है।

अपिच :—

"दुर्लभो विषयो त्यागो दुर्लभं तत्त्व दर्शनम्।
दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणांविना ॥"

× × ×

इत्यादि अनेक प्रकार से, उपनिषदों में अप्रतिवद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान की दुर्लभता वर्णन किया है।

अधुना अत्यंत सुलभ सप्रतिवद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान से जो, कैवल्य मुक्तिलाभ नहीं होता है, इसका एक शास्त्रीय दृष्टांत प्रदर्शन किया जाता है। तद् यथाः—

सुनने में आता है कि, जन्मान्तरीय स्मृति विद्यमान रहने के कारण, जड़ भरतजी ने गुरुमुख से यथाविधि वेद

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वेदांतादि शास्त्र श्रवण पूर्वक, ब्रह्मविद्या का उपदेश ग्रहण नहीं किया था। परंतु वे अप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके कृतकृत्य हुए थे। अथच वेद वेदांतादि शास्त्र में वर्णित हुआ है कि, गुरु कृपा बिना तत्त्वज्ञान होना सर्वथा असंभव है। अतएव यही स्वीकरणीय है कि, जड़ भरतजी को व्यवहित पूर्वजन्म में अर्थात् महाराजा भरत शरीर में गुरु कृपा अवश्य ही प्राप्त हुई थी। अर्थात् गुरुमुख से यथाविधि वेद वेदांतादि शास्त्र श्रवण पूर्वक संशय शून्याकार में, सप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ था। एवं गुरु-देव की कृपा से भलीभाँति निदिध्यासन विधि भी अवगत हुई थी। अपिच अप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिये, राज्यादि को परित्याग करके तपोवन गमन पूर्वक यथाविधि निदिध्यासन कार्य संपादन करने में भी प्रवृत्त हुआ था। परंतु ईश्वर संकल्प वशतः कृतकृत्य होने के पहिले ही कर्मफल भोगार्थ, एक बार मरकर हरिणदेह में, एवं द्वितीयवार मरकर जड़ भरत देह में, जन्म लेना पड़ा था। यदि अत्यंत सुलभ सप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान से ही कैवल्य मुक्तिलाभ सिद्ध होता, तब तो और महाराज भरत जी का पुनर्जन्म नहीं होता।

अतएव उपनिषदादि शास्त्रीय प्रमाण और नानाविध

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



युक्ति तथा निज-निज अनुभूति द्वारा संशय शून्याकार में यही जानने में आता है कि, अत्यंत सुलभ सप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्म ज्ञान से कैवल्य मुक्ति लाभ नहीं होता है। उपनिषदादि में वर्णित अत्यंत दुर्लभ अप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान से ही दुःख की आत्यंतिक निवृत्ति तथा नित्य निरतिशय सुखसंप्राप्ति रूप कैवल्य मुक्ति लाभ सिद्ध होता है।

इति सप्तम परिच्छेद समाप्त।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



# अष्टम परिच्छेद

## विषय कर्म योग

श्रुति भगवती ने कहा है कि:—

"कर्म कर्तव्यमित्येव विहितेष्वेव कर्मसु।
बन्धनं मनसोनित्यं कर्मयोगः स उच्यते ॥"

तात्पर्य यह है कि दुःखकी आत्यंतिक निवृत्ति, तथा नित्य निरतिशय सुख संप्राप्ति रूप कैवल्य मुक्ति के लिये, वेद निषिद्ध पाप कर्म को परित्याग करके, इह पारलौकिक वैषयिक फल कामना विवर्जित होकर, अप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान प्राप्ति का प्रथम प्रतिबन्ध मल* निवारणार्थ, अर्थात् अंतःकरण शुद्धयर्थ वेदविहित वा ईश्वरोपदिष्ट कर्म करना

*टिप्पणी—ग्रामोफोन के रेकर्ड रेखावत् वर्तमान जन्मकृत एवं अतीत के अनेक जन्मकृत पापकर्म का संस्कार, अंतःकरण में निबद्ध रहता है। जिसके प्रभाव से पुनः पाप-कर्म करने की रुचि उत्पन्न होती है। अंतःकरणस्थ उस पापकर्म के संस्कार को ही मल कहते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कर्त्तव्य है, केवल इस भाव से, नित्य प्रति निजनिज कर्तव्य कर्म में ही, मनोनिवद्ध करने को अर्थात् अन्यान्य विषय संबंधी चिंतन से, मन को हटाकर, वेद विहित दिनचर्यांतर्गत कर्म समूह के वीच में यदा जो कर्म करणीय है, तदा तिस कर्म में ही मनो नियुक्त करके, भली भाँति कार्य संपादन करने को कर्म योग कहते हैं।

श्री कृष्ण भगवान ने भी, प्रिय जिज्ञासु अर्जुन को कहा है कि—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म फलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्व कर्मणि॥

भाषार्थः—मोहवश कर्त्तव्यविमूढ़, अतएव अशुद्धांतःकरण विशिष्ट तुम्हारा अप्रतिवद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिये, संन्यास लक्षण ज्ञानयोगानुष्ठान करने का अधिकार नहीं है। अतः "कर्मण्ये वाधिकारस्ते" अर्थात् वेदविहित कर्म में ही तुम्हारा अधिकार है, एवं तुम मुमुक्षु हो सुतरां "माफलेषु कदाचन" अर्थात् कभी किसी भी अवस्था में कर्मफलों में तुम्हारा अधिकार नहीं है। तात्पर्य यह है कि फलकामना विवर्जित होकर, केवल कर्तव्य वुद्धि से, वेद विहित निष्काम कर्म में ही तुम्हारा अधिकार है। अतएव "माकर्म फलहेतुर्भूः" अर्थात् तुम्हारा आचरणीय कर्म,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



फलनिमित्त वा फल भोगार्थ न हो, एवं "माते संगोऽस्त्व-कर्मणि" अर्थात् वेदविहित कर्तव्य कर्म न करने में तुम्हारी रुचि न होवे।

अधुना वेद एवं वेदमूलक सनातन धर्म शास्त्रोक्त कर्म योगांतर्गत कर्तव्यकर्मों का, संक्षेपतः नामोल्लेख पूर्वक निष्काम कर्म का स्वरूप वर्णन किया जाता है। यथाः—

पिता, माता, पति प्रभृति गुरुजनों की सेवा, बालक और वृद्ध की सेवा, रोगियों की सेवा, अतिथि सेवा, पशु पक्षी वृक्षलता प्रभृति समस्त प्राणियों की सेवा, प्रतिष्ठित मूर्त्ति आदि में यथा विधि पूजनात्मक श्री श्री भगवान की सेवा, सद्गुरु की सेवा, सर्वभूतांतरस्थ सच्चिदानंद स्वरूप अंत-र्यामी भगवान की सेवा, आत्मसेवा, गायत्री आदि मंत्र का अर्थचिंतन सहित जपयज्ञ, अग्नि होत्रादि आहुत्यात्मक नानाविधयज्ञ, यज्ञशाला, तथा देवमन्दिर निर्माण, तपस्वियों के लिये तपोवन अथवा तपोवाटिका निर्माण, सर्वसाधारण के लिये पंथघाट कूपादि निर्माण, यथाविधि वेदादि अध्य-यन, अध्यापन, तप, दान, अपिच आहार विहारादि शास्त्र विहित सकल कर्म ही सकाम तथा निष्काम उभयभाव से किया जा सकता है। अर्थात् नाम, यश, धन, पुत्र, पुण्योदय, पापक्षय, आयुवृद्धि, शक्ति तथा आरोग्यादि फलकामना



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सहित भी शास्त्रविहित कर्म का अनुष्ठान किया जा सकता है। एवं नाम, यश, धन पुत्रादि वैषयिक फल कामना विवर्जित होकर, कैवल्य मुक्ति के प्रथम प्रतिबन्ध निवृत्यर्थ अथवा भगवत् प्रीत्यर्थ, किंवा वेद विहित वा ईश्वरोपदिष्ट कर्म करना कर्त्तव्य है, केवल इस भाव से भी नित्यप्रति, निज निज कर्त्तव्य कर्म का अनुष्ठान किया जा सकता है। अपिच पूर्वापर विचार विहीन होकर निरपराधि दुर्बल पीड़न, चोरी, जारी, डकैती, बलात्कार, विश्वास घातकता, प्रभृति शास्त्रनिषिद्ध पाप कर्म भी किया जा सकता है। इनके बीच में वेद एवं वेदमूलक शास्त्रनिषिद्ध पापकर्म को परित्याग करके, नाम यश, धन, पुत्र, आयु, बल, आरोग्य प्रभृति इह पारलौकिक वैषयिक फल कामना विवर्जित होकर, कैवल्य मुक्ति का प्रथम प्रतिबन्ध निवृत्त्यर्थ अथवा भगवत् प्रीत्यर्थ, किंवा वेद विहित वा ईश्वरोपदिष्ट कर्म करना कर्त्तव्य है, केवल इस भाव से, दिनचर्यांतर्गत नित्य नैमित्तिक कर्म समूह के बीच में, यदा जो कर्म करणीय है, तदा तिस कर्म में ही मनोनिबद्ध करके, अर्थात् अन्यान्य विषयों से मन को हटा कर, वर्त्तमान काल के करणीय कर्म में ही मनोनियुक्त करके, नित्य प्रति निजनिज कर्त्तव्य कर्म भली भाँति संपादन करने को ही निष्काम कर्म अथवा कर्मयोग कहते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



## शंका समाधान

कोई यदि अविचारवशतः ऐसी आशंका करे कि आहार विहारादि कार्य समूह तो निष्कामभाव से अनुष्ठित होना असंभव है तो उसकी आशंका निवारणार्थ यहाँ पर कुछ वर्णन किया जाता है। यथाः—

( १ )

श्री श्री परमेश्वर ने भोगापवर्गार्थ मानव देह का सृजन करके, देह संरक्षणार्थ यथायोग्य आहार करने की विधि वा आज्ञा प्रदान की है। एवं सर्व नियामक ईश्वरकृत नियम वशतः आहार विना किसी का भी देह संरक्षण नहीं हो सकता है। एवं देह विना प्रारब्ध कर्म का फलभोग तथा मुक्ति का साधन रूप योगानुष्ठान नहीं हो सकता है। अपिच कर्मयोग भक्तियोग तथा ज्ञान योग के अनुष्ठान विना कैवल्य मुक्ति का प्रतिबन्धत्रय, अर्थात् मल, विक्षेप, तथा आवरण की निवृत्ति भी नहीं हो सकती है। एवं प्रतिबन्ध निवृत्ति विना कैवल्य मुक्तिलाभ नहीं हो सकता है। अतएव ईश्वर संकल्पित, प्रारब्धकर्म का फलभोग, और दुःख की आत्यंतिक निवृत्ति, तथा नित्य निरतिशय सुख संप्राप्ति रूप कैवल्य मुक्ति के लिये, देह संरक्षणार्थ वेद विहित वा ईश्वरोपदिष्ट आहार करना कर्त्तव्य है। केवल इस भाव

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



को अवलंवन करके, स्वादिष्ट द्रव्य का रसास्वादन, देह पुष्टि एवं शक्ति वृद्धि प्रभृति फल कामना विवर्जित होकर यथा लब्ध वेद विहित यज्ञावशिष्ट हितकर द्रव्य द्वारा प्राणाहुति* प्रदानादि विधि अवलंवन पूर्वक, प्रसन्न चित्तसे आहार करना असंभव नहीं है।

---

*उपनिषद् में अभिन्न रूप में उपासना का श्रेष्ठत्व ज्ञापन, तथा वैश्वानर का स्वरूप वर्णनपूर्वक, वैश्वानर विद् मानव का भोजन संबंधी अग्निहोत्रात्मक प्राणाहुति विधि वर्णित हुई है। तद् यथाः—

"तान्हो वाचैतेवैखलु यूयं पृथगिवेममात्मानं वैश्वानरंविद्वाँ सोऽन्नमत्त्य यस्त्वेत मेवं प्रादेश मात्रमभि विमानमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते स सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषू सर्वेष्वात्मस्वन्नमत्ति ॥"

छान्दोग्योपनिषद् अध्याय ५, खंड १८॥

तात्पर्य यह है कि अश्वपति राजा ने जिज्ञासु रूप में समागत उद्दालक औपमन्यव सत्य यज्ञ प्रभृति मुनियों से कहा है कि, वस्तुतः अपृथक् होने पर भी इस वैश्वानर आत्मा को, तुम लोग अपने से पृथग्वत् जानकर अन्नभक्षण करते हो। परंतु जो व्यक्ति में ही सर्वाधिष्ठा-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



नात्मक वैश्वानर आत्मा हूँ, इस प्रकार अपृथकतया, प्रादेश-मात्र (अर्थात् आपाद मस्तक) सबके आधारभूत अथवा कहो कि संपूर्ण विश्व का आधार अथवा अधिष्ठानस्वरूप वैश्वानर आत्मा की उपासना करता है। वह समस्त लोकों में समस्त भूतों में समस्त आत्माओं में अन्न भक्षण करता है। अभिप्राय यह है कि, वैश्वानरवेत्ता सर्वात्मा होकर, अन्न भक्षण करता है, अज्ञवत् देहमात्राभिमानी होकर, अन्नभक्षण नहीं करता है ॥१॥

अथ वैश्वानर का स्वरूप वर्णन। यथा :—

"तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्च-क्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मात्मा संदेहो बहुलो वस्तिरे-वरीयः पृथिव्येव पादावुर एववेदिर्लोमानि वर्हिर्हृदयं गार्ह-पत्यो मनोऽन्वाहार्यं पचन आस्य माहवनीय," ॥२॥

तात्पर्य यह है कि पूर्वोक्त इस वैश्वानर आत्मा का मूर्धैव सुतेजाः (मस्तक ही द्युलोक है) चक्षुर्विश्वरूप—(चक्षु ही सूर्य है) प्राणः पृथग्वर्त्मात्मा (प्राण ही वायु है) संदेहोबहुलः (देह का ही मध्य भाग आकाश है) वस्तिरेव रयिः (नाभिका अधोभाग अथवा मूत्राशय पुट ही जल है) पृथिव्येव पादौ (पृथिवी ही दोनों चरण है) उर एववेदिः

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



(वक्ष ही वेदि है) लोमानिर्वर्हिः (लोमनिचय ही दर्भ है) हृदयं गार्हपत्यः (हृदय ही गार्हपत्याग्नि है) मनोऽन्वाहार्यपचन (मन ही अन्वाहार्य पचनाग्नि वा दक्षिणाग्नि है) आस्यमाहवनीयः (मुख ही आहवनीय अग्नि है) ॥२॥

पहिली आहुति का वर्णन यथा :—

"तद्यद्भक्तं प्रथममा गच्छेत्तद्धोमीयं स यां प्रथमाहुतिं जुहुयात्तां जुहुयात्प्राणाय स्वाहेति प्राणस्तृप्यति ॥

प्राणो तृप्यति चक्षुस्तृप्यति चक्षुषि तृप्यत्यादित्यस्तृप्यत्यादित्ये तृप्यति दद्यौस्तृप्यति दिवि तृप्यन्त्यां यत्किंचदद्यौश्चादित्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तितृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥२॥

भाषार्थ—प्रथमागत हवनीय अन्न से प्राणाय स्वाहा इस मंत्र द्वारा प्रथम आहुति प्रदान पूर्वक ऐसा चिंतन करके कि इस आहुति से प्राणवायु की पुष्टि होती है; एवं प्राणवायु की पुष्टि होने पर, दर्शनेन्द्रिय की पुष्टि होती है; तथा दर्शनेन्द्रिय की पुष्टि होने पर, सूर्यदेव तृप्त होता है; एवं सूर्यदेव तृप्त होने पर, दद्युलोक तृप्त होता है, तथा दद्युलोकस्थ देवगण तृप्त होने पर, द्युलोक और सूर्य परिपालित सब के ही तृप्तिलाभ होता है। अपिच सकल के तृप्ति लाभ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



के साथ वा अनंतर यज्ञकर्त्ता वा भोक्ता भी, प्रजा, पशु, अन्नादि एवं तेज तथा ब्रह्मतेज द्वारा तृप्त होता है।

## दूसरी आहुति का वर्णन यथा :—

अथ यां द्वितीयां जुहुयाद् व्यानाय स्वाहेति व्यानस्तृप्यति ॥१॥ व्याने तृप्यति श्रोत्रं तृप्यति, श्रोत्रे तृप्यति, चन्द्रमास्तृप्यति चन्द्रमसितृप्यति दिशस्तृप्यन्तिदिक्षु तृप्यन्तीषु यत्किंच दिशश्च चन्द्रमाश्चाधितिष्ठन्ति तत्तृप्यति तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥२॥

तात्पर्य यह है कि, "व्यानाय स्वाहा" इस मंत्र द्वारा द्वितीय आहुति प्रदानपूर्वक ऐसा चिंतन करे कि, इस आहुति से व्यानवायु की पुष्टि होती है, एवं व्यानवायु की पुष्टि होने पर श्रवणेन्द्रिय की पुष्टि होती है, तथा श्रवणेन्द्रिय की पुष्टि होने पर चन्द्रमा तृप्त होता है, एवं चन्द्रमा तृप्त होने पर दिक्पाल देवगण तृप्त होते हैं, तथा दिक्पाल देवगण के तृप्त होने पर, दिक्पाल और चन्द्र प्रतिपालित सबके ही तृप्तिलाभ होता है। अपिच सकल के तृप्तिलाभ के साथ वा अनंतर यज्ञ कर्त्ता वा भोक्ता भी, प्रजा, पशु, अन्नादि एवं तेज तथा ब्रह्म तेज द्वारा तृप्त होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तीसरी आहुति का वर्णन। यथा:—

अथ यांतृतीयां जुहुयात्तां जुहुयादपानाय। स्वाहेत्यपानस्तृप्यति ॥१॥ अपाने तृप्यति वाक्तृप्यति वाचि तृप्यन्त्यामग्निस्तृप्यत्यग्नौतृप्यतिपृथिवीतृप्यति पृथिव्यां तृप्यन्त्यां यत्किंच पृथिवीचाग्निश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तितृप्यति प्रजया, पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्च से नेति ॥२॥

तात्पर्य यह है कि, "अपानाय स्वाहा" इस मंत्र द्वारा तृतीय आहुति प्रदानपूर्वक, ऐसा चिंतन करे, कि इस आहुति से अपानवायु की पुष्टि होती है; एवं अपान वायु की पुष्टि होने पर, वाक् इन्द्रिय की पुष्टि होती है; तथा वाक्इन्द्रिय की पुष्टि होने पर अग्निदेव तृप्त होता है, एवं अग्निदेव तृप्त होने पर पृथिवी देवी तृप्त होती है, तथा पृथिवी देवी तृप्त होने पर, पृथिवी और अग्नि परिपालित सब के ही तृप्तिलाभ होता है। अपिच सकल के तृप्तिलाभ के साथ वा अनंतर यज्ञ कर्त्ता वा भोक्ता भी प्रजा, पशु, अन्नादि, एवं तेज तथा ब्रह्मतेज द्वारा तृप्त होता है।

चौथी आहुति का वर्णन। यथा :—

"अथ यां चतुर्थीं जुहुयात्तां जुहुयात्समानाय स्वाहेति समान स्तृप्यति ॥१॥ समाने तृप्यति मनस्तृप्यति मनसि तृप्यति पर्यन्य-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



स्तृप्यति पर्यन्येतृप्यति विद्युत्तृप्यति विद्युति तृप्यन्त्यां यत्किंच विद्युच्च पर्यन्यश्चाधि तिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥२॥

तात्पर्य यह है कि "समानाय स्वाहा" इस मंत्र द्वारा चतुर्थ आहुति प्रदानपूर्वक ऐसा चिंतन करे कि, इस आहुति से समान वायु की पुष्टि होती है। एवं समान वायु की पुष्टि होने पर मन की भी पुष्टि होती है तथा मन की पुष्टि होने पर पर्यन्यदेव (इन्द्र) तृप्त होता है। एवं पर्यन्य देव तृप्त होने पर विद्युत्देवी (लक्ष्मी) तृप्त होती है। तथा विद्युद्देवी तृप्त होने पर, विद्यु द्देवी और पर्यन्य देव परिपालित सबके ही तृप्तिलाभ होता है, अपिच सकल के तृप्ति लाभ के साथ वा अनंतर यज्ञकर्त्ता वा भोक्ता भी प्रजा पशु अन्नादि एवं तेज तथा ब्रह्म तेज द्वारा तृप्त होता है ॥१-२॥

पंचम आहुति का वर्णन। यथाः—

"अथ यां पंचमीं जुहुयात्तांजुहुयादुदानाय स्वाहेत्युदानस्तृप्यति ॥१॥ उदाने तृप्यति त्वक्तृप्यति त्वचितृप्यन्त्यां वायुस्तृप्यति वायौ तृप्यत्याकाशस्तृप्यत्याकाशेतृप्यति यत्किंच वायुश्चाकाशश्चाधि तिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



(२)

रोग हुआ है, अतएव शास्त्र विहित औषध सेवन करना उचित है, केवल इस बुद्धि से, आरोग्य रूप फल कामना न करके भी, औषध सेवन करना असंभव नहीं है। एवं आरोग्य कामना करने पर ही जो औषध फलदायक होगा, ऐसा भी कोई नियम नहीं है। अपिच आरोग्य कामना करने पर भी तो सब समय आरोग्यलाभ नहीं होता है, तो पुनः व्यर्थ आरोग्य कामना क्यों करे ? आरोग्यलाभ हो

---

प्रजया पशुभि रन्नादयेन तेजसा ब्रह्म वर्चसेनेति ॥२॥

तात्पर्य यह है कि "उदानाय स्वाहा" इस मंत्र द्वारा पंचम आहुति प्रदानपूर्वक, ऐसा चिंतन करे कि इस आहुति से उदान वायु की पुष्टि होती है, एवं उदान वायु की पुष्टि होने पर त्वक् इन्द्रिय की पुष्टि होती है। तथा त्वक् इन्द्रिय के पुष्टि होने पर वायु देव तृप्त होता है। एवं वायुदेव तृप्त होने पर आकाशस्थानीय श्री श्री भगवान विष्णुदेव तृप्त होते हैं। तथा विष्णुदेव तृप्त होने पर, वायु और विष्णु परिपालित सब को ही तृप्तिलाभ होता है। अपिच सकल के तृप्तिलाभ के साथ वा अनंतर यज्ञकर्त्ता वा भोक्ता भी प्रजा, पशु अन्नादि एवं तेज तथा ब्रह्म तेज द्वारा तृप्त होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अथवा मत हो रोग होने पर कर्त्तव्य बुद्धि से शास्त्रविहित औषध सेवन करना असंभव अथवा अनुचित नहीं है।

( ३ )

सृष्टि कर्त्ता श्री श्री भगवान ब्रह्माजी ने, मैथुनिक सृष्टि के समस्त साधन सामग्री सृजन करके, गृहस्थाश्रमियों को प्रजा सृष्टि के लिये, शास्त्रविहित काल में[1] मैथुन करने की विधि वा आज्ञा प्रदान की है। अतएव ईश्वरोपदिष्ट कर्म संपादन करना उचित है, विचारपूर्वक केवल इसी प्रकार भाव को अवलंबन करके, पुत्र कामना, अथवा मैथुन जनित आनंद कामना न करके भी, शास्त्र विहित काल में पति-पत्नी का मैथुन करना असम्भव नहीं है।

---

[1]टिप्पणी—चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा, तिथि में तथा संक्रांति दिन में, दिवाभाग में, संधिकाल में, व्रत के दिन में, श्राद्ध दिन में, व्रत एवं श्राद्ध के पूर्व दिन में, रोगी अवस्था में, रजःस्वला होने के पश्चात् प्रथम तीन दिन में, तथा पूर्ण गर्भावस्था में स्त्रीसंसर्ग करना निषेध है। अतएव एतद्भिन्न काल में जब पति-पत्नी दोनों के देह पवित्र तथा चित्त प्रसन्न हो तब स्त्रीसंसर्ग करने का शास्त्रविहित काल है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



(४)

यथा विधि मैथुन करने पर भी यदि किसी कारण वशतः पुत्रोत्पन्न नहीं होवे. तो सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी ने, पुत्रेष्टि यज्ञ करने की विधि वा आज्ञा प्रदान की है। सुतरां भगवदाज्ञापालनार्थ वेद विहित वा ईशरोपदिष्ट यज्ञ करना कर्त्तव्य है, केवल इसी प्रकार कर्त्तव्य बुद्धि से पुत्रकामना न करके भी पुत्रेष्टि यज्ञ करना असंभव नहीं है ।

अतएव कथित प्रकार से विचारपूर्वक, वैषयिक फल-कामना विवर्जित होकर, केवल कर्त्तव्य बुद्धि से, अथवा अंतःकरण शुद्धयर्थ, किंवा ईश्वर प्रीत्यर्थ वेद विहित वा ईश्वरोपदिष्ट आहार विहारादि जागतिक समस्त कर्म ही निष्काम भाव से भी किया जा सकता है, तथा सकाम भाव से भी किया जा सकता है। परंतु सकाम कर्म तो घटिका यंत्रवत् पुनः पुनः जन्म मरण के हेतुभूत संसार बंधनका, ही कारण है। और अंतः करण शोधक निष्काम कर्म तो, परंपरा से कैवल्य मुक्ति का ही कारण है। अतएव दुःख की आत्यंतिक निवृत्ति तथा नित्य निरतिशय सुख संप्राप्ति रूप कैवल्य मुक्ति के लिए बुद्धिमान बुद्धिमती नरनारियों को निष्काम कर्म करना ही उचित है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



शंका :—

मुक्ति का साधन रूप कर्म समूह का फल तो मुक्ति ही है। अतएव मुमुक्षु जनों का अनुष्ठित मोक्ष साधन रूप कर्म निचय को तो सकाम कर्म ही कहना पड़ेगा। क्योंकि मुमुक्षुजनों को तो मुक्तिरूप फल कामना अवश्य ही रहती है।

समाधान :—

घटिका यंत्रवत् पुनः पुनः जन्म मरण के हेतुभूत, इह पारलौकिक वैषयिक फल कामना पूर्वक, जो सकल कर्म अनुष्ठित होता है उसे ही सकाम कर्म कहते हैं। यह भोग प्रापक सकाम कर्म, संसार प्रवृत्तिमूलक है। अपर उपाधिका आत्यंतिक प्रलय काल में जीवात्माका परमात्मा में विलीन होने को कैवल्यमुक्ति कहते हैं। सुतरां कैवल्य मुक्ति का साधन रूप कर्म निचय, संसार निवृत्ति मूलक है। अतएव परस्पर विपरीत भावापन्न, विषय, निर्विषय तथा प्रवृत्ति, निवृत्तिमूलक, उभय कर्म एक कोटि के कैसे हो सकते हैं? ऐसा होना तो सर्वथा असंभव है। अतएव कैवल्य मुक्ति की शुभ-इच्छा विद्यमान रहने पर भी मुमुक्षु जनों का अनुष्ठित

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मोक्ष साधन रूप, कर्म निचय को सकाम कर्म कहना विचार संगत नहीं है।

शंका :—

जैसा शास्त्र निषिद्ध पापकर्म का फलरूप दुःख, भोगने की इच्छा न करने पर भी, कर्मफल दाता ईश्वरकृत नियमानुसार उपयुक्त काल में, किसी न किसी निमित्त से दुःख भोगना ही पड़ता है। तद्वत् शास्त्रविहित पुण्यकर्म का फलरूप सुख, भोगने की इच्छा न करने पर भी, कर्मफल दाता ईश्वरकृत नियमानुसार उपयुक्त काल में, किसी न किसी निमित्त से सुख तो अवश्य ही मिलेगा। क्योंकि "सर्वेव क्रिया हेतुमती फलमतीच" अर्थात् छोटी बड़ी समस्त क्रिया हो, हेतुमती तथा फलवती हैं। ज्ञानीदेह कृत अशुक्ल कृष्ण कर्मातिरिक्त, किसी प्रकार की भी क्रिया फल विरहित नहीं है। सुतरां फलकामना करे या न करे, कर्म करने से फल तो अवश्य ही मिलेगा, तो फिर व्यर्थ निष्काम कर्म करने के लिये उपदेश देने की आवश्यकता क्या है ?

समाधान :—

ब्रह्मज्ञान विहीन व्यक्ति को कर्म करने से, फल तो मिलेगा ही, यह बात तो ध्रुव सत्य है। परंतु परमेश्वर ने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भोग एवं मोक्ष के लिये मानव वृन्द का सृजन किया है। एवं भोग तथा मोक्ष इन दोनों के बीच में सकाम कर्म द्वारा सुख दुःखादि भोग तो अवश्य ही सिद्ध होता है। किंतु मोक्ष नहीं होता है। और निष्काम कर्म द्वारा, भोग तथा मोक्ष दोनों ही सिद्ध होते हैं, अतएव निष्काम कर्म करने का उपदेश देने की आवश्यकता है।

उपरोक्त विषय, दृष्टांत सहित यथा संभव सुस्पष्ट रूप से, समझाने के लिये प्रयत्न किया जाता है। यथाः— मानलो कि तुम्हारा परिचित, कमलापति नामधेय, सहाय-संपद-विहीन, अतिबुद्धिमान एक सुशील बालक है। तुमने यदि सकाम रूप से अर्थात् कमलापति जब एम० ए०, एल-एल० बी० परीक्षा में उत्तीर्ण होगा, तब मैं इसके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दूंगा। अथवा कमलापति को कर्मचारी बनाकर, अपने पास रखूंगा, यह मेरी संपत्ति संरक्षणादि कार्य भली भाँति संपादन करेगा। तुमने मन ही मन में ऐसी कामना पूर्वक बहुत अर्थ व्यय करके कमलापति को उच्चतम शिक्षा प्रदान की है। अब कमलापति यदि किसी कारण वशतः तुम्हारी कन्या का विवाह न करे, अथवा कर्मचारी बनकर तुम्हारी संपत्ति कार्य संरक्षणदि कार्य न करे, तो तुम्हें बहुत ही दुःख होगा। और तुमने यदि किसी प्रकार

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



की कामना न करके केवल कर्त्तव्य बुद्धि से ही कमलापति को शिक्षा प्रदान की है तो कमलापति अपनी रुचि अनुसार चाहे जिस किसी का भी विवाह करे एवं स्वकीय उन्नति के लिये चाहे कहीं भी किसी प्रकार का कार्य करे उसमें तुमको अणुमात्र भी दुःख नहीं होगा। इस प्रकार का दुःख न होना तो निष्काम कर्म का अवांतर फल है, अंतःकरण शुद्ध होना ही निष्काम कर्म का प्रधान फल है।

पक्षांतर में मान लो कि तुमने नाम यशादि किसी प्रकार की भी फलकामना न करके, केवल कर्तव्य बुद्धि से या अंतःकरण शुद्धयर्थं अथवा भगवत्प्रीत्यर्थं कमलापति को शिक्षा प्रदान की है। इधर तुम्हारी कन्या भी विवाह योग्य हुई है। एवं योग्य पात्र को ही कन्यादान करना उचित है, और योग्यपात्र को ही कर्मचारी रखना कर्त्तव्य है। एवं कमलापति अतियोग्यपात्र है। अतएव कर्त्तव्य बुद्धि से कमलापति के साथ कन्या विवाह देनेका तथा कमलापति को कर्मचारी रखने का प्रस्ताव उत्थापन करने पर, सुशील सुदक्ष, तथा निष्काम कर्मानुष्ठानकारी कमलापति यदि कर्त्तव्य बुद्धि से तुम्हारी कन्या का विवाह करे, एवं कर्त्तव्य-बुद्धि से ही कर्मचारी बनकर, तुम्हारी संपत्ति संरक्षणादि कार्य भलीभाँति संपादन करे, तो तुमको जो अत्यंत सुख होगा,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



एवं तुम्हारा ग्रहस्थाश्रम जो, अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण होगा, इस विषय में तो अणुमात्र भी संदेह नहीं है। अतएव अपूर्ण कामनोत्पन्न दुख से वचने के लिये, तथा संसार में अपेक्षाकृत अधिकतर शांतिके लिये, अपिच पुनः पुनः जन्म मरणादि रूप दुःख से वचने के लिये, अथवा कहो कि दुःख की आत्यंतिक निवृत्ति तथा नित्य निरतिशय सुख संप्राप्ति रूप कैवल्य मुक्ति लाभार्थ शक्ति तथा रुचि संपन्न बुद्धिमान बुद्धिमती नरनारियों को, निष्काम कर्म करने के लिये उपदेश देने की आवश्यकता है।

अपर और एक बात यह है कि, आजकल अति उत्कट बड़े बड़े पापरूप सकाम कर्म का फल स्वरूप, महान दुःख जो भोगने में आ रहा है, सो तो प्रायः किसी को भी अविदित नहीं है। अतएव प्रत्यक्ष प्रमाण ग्राह्य दृष्टांत विद्यमान रहने के कारण, बुद्धिमान बुद्धिमती नर नारियों का, भोग प्रापक सकाम कर्म करना कर्त्तव्य है? अथवा निष्काम कर्म करना कर्त्तव्य है? सो विचारपूर्वक समझने का, समझाने का, उपयुक्त समय समागत हुआ है। अभिप्राय यह है कि वर्त्तमान काल में यूरोप, एशिया, तथा अमेरिका देशांतर्गत प्रायः सर्वत्र ही जो घोर अशांति वा महान दुख उपस्थित हुआ है, विचार पूर्वक इसका कारणानुसंधान करने से



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



यही देखने में आता है कि, उत्तमोत्तम सर्वविध भोग्यवस्तु उपयुक्त परिमाण में विद्यमान रहने पर भी उसमें संतुष्ट न रह कर के निज निज नाम, यश, आधिपत्य, तथा राज्य-वाणिज्यादि वृद्धि करने के लिए अति बुद्धिमान और महान शक्तिशाली अपिच ऐश्वर्यवन्त राष्ट्रपति तथा राष्ट्रीय प्रजावृन्द ने प्रमाद वशतः, अथवा जिस किसी कारणसे क्यों न हो, ईश्वरोपदिष्ट विश्वके समस्त नरनारियों का परम कल्याण कारक वेदवाक्य उल्लंघन पूर्वक, तथा वेदा-विरुद्ध अन्यान्य धार्मिक ग्रंथोक्त कल्याणकारक नीति वाक्य का उल्लंघनपूर्वक माईन, टर्पेडो, बम, परमाणु बम, प्रभृति महान अनिष्ट मूलक, अर्थात् सर्व विध भोग्य वस्तु समूह का विध्वंस कारक, तथा लोक संहारक नानाविध अस्त्र-शस्त्रादियों का निर्माण पूर्वक, जहाँ तहाँ तिसका प्रयोग करके अर्थात् रणनीति अनुसार रणक्षेत्र निर्वाचन न करके पथ-मध्य में, एवं देश के जहाँ तहाँ माईन, टर्पेडो, वम, परिमाणु वम प्रभृति का प्रयोग करके अन्न वस्त्रादि सर्व विध भोग्य वस्तु समूह जो विध्वंस किया है, तथा युद्ध असहयोगी आवाल वृद्ध वनिता मनुष्य एवं पशु पक्षी प्रभृति असंख्य प्राणियों की जो हत्या की है। सो तो प्रायः किसी को भी अविदित नहीं है। एवं असाधारण बुद्धिमान और महान शक्तिशाली, अपिच

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ऐश्वर्यवन्त राष्ट्रपति एवं मंत्री तथा सेनापतियों का अनुष्ठित धर्म विरुद्ध घोर युद्धात्मक अति उत्कट पापरूप कर्म का फलस्वरूप महान दुख जो साथ ही साथ उन सकाम कर्मियों को भोगना पड़ा है, सो भी तो प्रायः किसी को अविदित नहीं है। अतएव फ्रांच, लंडन, इटाली, एशिया तथा जर्मन, जापान प्रभृति देशवासियों का शास्त्रनिषिद्ध महान् पापरूप सकाम कर्म के फल में, विश्व में जो प्रायः सर्वत्र ही घोर अशांति वा नानाविध असहनीय दुख उपस्थित हुआ है, उसे स्मरण करके अधुना भली भांति विचार पूर्वक समझने की बात यह है कि, अभ्रांत विचार तथा उपयुक्त प्रयत्न पूर्वक सकाम कर्म का अनुष्ठान करने से जो नाम, यश, आधिपत्य तथा उत्तमोत्तम विषय प्राप्ति एवं वैषयिक सुख भोग होता है यह तो ध्रुव सत्य है। परंतु नाम, यश, आधिपत्यादि वैषयिक सुख साधन समूह, अनित्यता, सातिशयता, परिवर्त्तनशीलता, विरसता तथा क्षणभंगुरता प्रभृति दोष दुष्ट होने के कारण, वैषयिक सुख के सहित, पराधीन वा विवश होकर महान दुख भी भोगना पड़ता है। अपिच सकाम कर्म द्वारा कभी कभी दुःख की सामयिक निवृत्ति होने पर भी आत्यंतिक निवृत्ति नहीं होती है। अतएव सर्वविध दुःख की आत्यंतिक निवृत्ति तथानित्य निरतिशय

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सुख संप्राप्तिरूप कैवल्य मुक्ति लाभार्थ नाम, यश आधिपत्यादि वैषयिक फल कामना विवर्जित होकर; यथा विधि निष्काम कर्म का अनुष्ठान करना ही परम कर्त्तव्य है।

अतः प्रकरण समाप्ति काल में निर्मलानन्द का उपदेश यह है कि, यदि इच्छा हो तो यथासंभव दुःख की निवृत्ति तथा अपेक्षाकृत अधिकतर सांसारिक शांति वा सुख संप्राप्ति के लिये, अपिच दुःख की आत्यंतिक निवृत्ति तथा नित्य निरतिशय सुख संप्राप्ति रूप कैवल्य मुक्ति का प्रतिवन्ध मल निवृत्ति वा अंतःकरण शुद्धि के लिये सुखी दुखी पुण्यापुण्यवानों में यथाक्रम से मैत्री करुणा मुदिता एवं उपेक्षावृत्ति उत्पादनपूर्वक अर्थात् सुखसंपन्न प्राणियों में, ईर्षानिवृत्तिकारक मैत्री वा मित्रभावात्मिका वृत्ति उत्पादनपूर्वक; तथा दुखियों में करुणा अर्थात् स्वकीय दुखनिवृत्ति की इच्छावत् अन्यान्य दुखियों की दुखनिवृत्ति की इच्छारूप परापकार चिकीर्षानिवारक करुणावृत्ति उत्पादनपूर्वक, एवं पुण्यशीलों में मुदितावृत्ति उत्पादन अर्थात् स्वकीय दानादि पुण्य वा शुभानुष्ठान में जैसा हृष्ट वा प्रसन्न होते हो वैसा ही अन्यान्य पुण्यवानों का दानादि पुण्य वा शुभानुष्ठान में हृष्ट वा प्रसन्न होकर अर्थात् असूयानिवृत्तिकारक मुदितावृत्ति उत्पादनपूर्वक, अपिच अपुण्यवानों में उपेक्षावृत्ति उत्पादन अर्थात्

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जो सकल मानवगण अपनी शिक्षाधीन अथवा शासनाधीन नहीं हैं, ऐसे पापियों के पाप कर्म को देख सुन के, भला बुरा कुछ भी न कहकर सकल प्रकार से औदासीन्यात्मक अमर्ष निवृत्तिकारक उपेक्षावृत्ति उत्पादनपूर्वक, यथाविधि निष्काम कर्म का अनुष्ठान करो। क्योंकि ऐसा निष्काम कर्मानुष्ठान विना विश्व में शांति लाभ होना जो सर्वथा असंभव है, यही सनातन धर्म[1] संबंधी उपनिषदादि शास्त्रीय निर्विरोध सिद्धांत की बात है। अतएव सनातन धर्मावलंबी हो अथवा आत्मधर्मत्यागी[2] बौद्ध ईसाई मुसलमान प्रभृति जो कोई

---

[1]टिप्पणी—जगत् सृष्टि के अनंतर परमेश्वर ने सबसे पहिले वैदिक धर्म का ही प्रचार किया है इसलिये वैदिक धर्म को सबसे प्राचीन धर्म अथवा सनातन धर्म कहते हैं।

[2]टि०—उपधर्म प्रचार होने के पहिले, केवल भारतवर्षस्थ मानवगण ही नहीं, विश्व के सकल देशस्थ मानवगण ईश्वरोपदिष्ट सनातन वैदिकधर्मावलंबी ही थे। अतएव यही कहना पड़ेगा कि, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान प्रभृति उपधर्म प्रचार होने के पहिले सनातन वैदिक धर्म ही विश्व के सकल मनुष्यों का, आत्मधर्म वा स्वधर्म था। सुतरां बौद्ध आदि उपधर्म प्रचार होने के पश्चात् जिन लोगों

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भी धर्मावलंबी ही क्यों न हो, श्रद्धा एवं शक्ति तथा रुचि संपन्न विश्व के समस्त नरनारियों का ही यथाविधि निष्काम कर्म करने का अधिकार है।

हरिः ॐ तत्सत्

बोलो सत्यनारायण की जय।

इति कर्म योग तथा अष्टम परिच्छेद समाप्त ॥

---

ने निज-निज सनातन वैदिक धर्म का परित्याग करके, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान, प्रभृति उपधर्म को अवलंबन किया है उन लोगों को आत्मधर्म त्यागी कहते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



# अथ नवम परिच्छेद

## विषय

### भक्ति योग

*

#### भक्ति योग का स्वरूप वर्णन

जैसा फल कामना विवर्जित होकर शास्त्रविधि अनुसार समयोपयोगी कर्त्तव्य कर्म में ही मनोनिवद्ध करने को कर्मयोग कहते हैं। वैसा ही भगवल्लोक प्राप्ति आदि फल कामना विवर्जित होकर, उपासना काल में देहादि कार्य कारणात्मक जागतिक अन्यान्य सकल वस्तु से, अंतःकरणवृत्ति को हटाकर, परम कल्याणकारी असीम कृपानिधान भोगापवर्गदाता सगुण ब्रह्म श्री श्री भगवान् में ही अंतःकरणवृत्ति वा मनोनिवद्ध करने को भक्तियोग कहते हैं।

श्रीमद्भागवत् आदि पुराणों में नवधा भक्ति अर्थात् नौ प्रकार का भक्ति साधन वर्णित हुआ है। तद् यथा—

"श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥"

*

चित्तस्य बन्धन यत्तु भगवत परमेश्वरे।
भक्तियोगः सविज्ञेयो विक्षेप ध्वंसकारकः॥

अनाथ धर है कि —

CC0. In Public Domain. Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



श्रवणादि का भावार्थ यथा—

पहिले श्रवण अर्थात् यथाविधि गुरुमुख से प्राणायाम तथा जप ध्यानादि का मंत्र समन्वित ईश्वरोपासना संबंधी वाक्य सुननेको, श्रवण कहते हैं। अपिच गुरु किंवा अन्यान्य भक्त जनों के मुख विनिर्गत भगवत् संबन्धी कथा तथा कीर्त्तनादि सुनने को भी श्रवण कहते हैं।

( २ )

कीर्त्तन—अर्थात् भगवत संबन्धी कथा कथन करने को कीर्त्तन कहते हैं। अपिच उच्च स्वर से स्तुति और मंत्र-जप तथा नामजप करने को भी कीर्त्तन कहते हैं।

( ३ )

स्मरण—अर्थात् भगवान का स्वरूप चिंतन करने को स्मरण वा ध्यान कहते हैं।

( ४ )

पादसेवन—अर्थात् मानस पूजन के समय पर, पूजनांग-भूत भोजन के पश्चात् शय्या पर विश्राम काल में, भक्त जन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भगवान के चरणादि दवाता है एवं ग्रीष्म ऋतु में शीतल सुगन्धि द्रव्यलेपन तथा व्यजन करते हैं उसे पादसेवन कहते हैं। अपर स्वप्नदर्शन, ध्यानदर्शन तथा भावदर्शन[1] काल में भी संस्कार संपन्न कोई कोई भक्त-जन भगवान का पादसेवन करता है।

---

[1]टि०—जन्मजन्मांतरीय संस्कार संपन्न भगवद् भक्त का स्वप्न अवस्था में भगवान का दर्शन होने पर उसे स्वप्न दर्शन कहते हैं, और ध्यान अवस्था में भगवान का दर्शन होने पर ध्यान दर्शन कहते हैं। एवं ध्यान प्रयत्न बिना ही जन्मजन्मातरीय ध्यानजन्य संस्कार प्रभाव से, गमन तथा उपवेशनादि काल में भगवान का दर्शन होने पर उसे भावदर्शन कहते हैं। परंतु यह सकल दर्शन तथा भाषणादि प्रातिभाषिक सत्तावान् है। एवं इस लोक में कृष्ण, राम, नृसिंह प्रभृतिरूप में अवतीर्ण होने पर, जाग्रत अवस्था में जो भगवान का दर्शन होता है, सो प्रातिभासिकांतर्गत व्यवहारिक सत्तावान है तात्पर्य यह है कि एक मात्र आत्मातिरिक्त, इह पारलौकिक दृश्यमात्र ही प्रातिभासिक तथा प्रातिभासिकांतर्गत व्यवहारिक सत्तावान हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



( ५ )

अर्चन—अर्थात् प्रतिष्ठित मूर्त्ति आदि में यथाविधि श्री श्री भगवान के पूजन करने को अर्चन कहते हैं।

( ६ )

वन्दन—अर्थात् भगवान की स्तुति आदि करने को वन्दन कहते हैं।

( ७ )

दास्य—अर्थात् अपने को भगवान का दास मानकर, अथवा कहो कि, सेवक मानकर पूर्वोक्त पाद सेवादि से भिन्न, भगवत् संबंधी अन्यान्य सेवाकार्य संपादन करने को दास्य साधन कहते हैं।

( ८ )

सख्य—अर्थात् अपने को भगवान का सखा मानकर भगवल्लीला संबंधी सखा कार्य संपादन करने को सख्य साधन कहते हैं।

( ९ )

आत्मनिवेदन—अर्थात् आत्मा को भी अथवा कहो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कि, अपने को भी भगवदर्पण करने को आत्म निवेदन कहते हैं।

यहाँ पर मुमुक्षुजनों का कुछ ज्ञातव्य विषय संक्षेपतः वर्णन किया जाता है। यथा—

( १ )

कर्मयोगानुष्ठान द्वारा अंतःकरण शुद्धि होने के अनंतर विशुद्धांतःकरणोद्भूत शुभविचार प्रवाह द्वारा पुनः पुनः दोषदर्शनवशतः जब विषयों में वैराग्य उदय होता है; तब भक्तियोग के अनुष्ठान द्वारा आत्मसाक्षात्कार का द्वितीय प्रतिबन्ध विक्षेप निवृत्ति के लिये, मुमुक्षु जनों का वेदवर्णित नियमानुसार, गृहस्थाश्रम को परित्याग करके वानप्रस्थाश्रम को ग्रहण करना ही सर्वथा श्रेयस्कर है।

( २ )

विशेष कोई प्रतिबन्ध विद्यमान रहने से तो अवश्य गृहस्थाश्रम में ही रहना पड़ेगा; परंतु गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी यदि संभव हो तो अधिक समय सापेक्ष्य धनोपार्जनादि कर्म निचय से उपराम होकर, यथाविधि श्रवण कीर्तनादि साधनावलंबनपूर्वक, निज-निज शक्ति अनुसार क्रमशः

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विक्षेप निवृत्ति के लिये उपयुक्त प्रयत्न करना ही मुमुक्षु जनों का परम कर्त्तव्य है।

## स्वरूप ध्यान

( ३ )

श्रवण कीर्तनादि साधनपेक्षा, परम कल्याणकारी असीम कृपानिधान भोगापवर्गदाता सगुण ब्रह्म श्री श्री भगवान का वेद वर्णित स्वरूप-ध्यान, अंतरंग वा उत्तम साधन है। क्योंकि श्रवण कीर्तन तथा पूजनादि काल में, भगवान से अतिरिक्त भिन्न-भिन्न शब्द प्रतिपाद्य अर्थ में, तथा पूजा का उपकरणादि अनेक वस्तु में, मनोनिवेश अथवा मनसंलग्न होने के कारण केवल श्रवण कीर्तनादि साधनों से पूर्णतया विक्षेपनिवृत्ति होना असंभव है।

( ४ )

पूर्व जन्मार्जित उपयुक्त संस्कार विहीनत्वादि दोष निवन्धन प्रयत्न करते हुए भी, जिन लोगों को ध्यानाभ्यास काल में भगवान का दर्शन नहीं होता है, वे लोग पहिले चित्त को एकाग्र करने के लिये, यथाविधि युक्ति सहित, गुरुमुखश्रुत मंत्र का अर्थ चिंतनपूर्वक मानसजप, प्राणायाम नादानुसंधान

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तथा ज्योतिर्ध्यानादि साधनावलंवन करके क्रमशः विक्षेप-निवृत्ति का प्रयत्न करे।

( ५ )

साधनावस्था में यदि विपरीत बुद्धि आदि किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित होवे तो यथासंभव शीघ्र ही गुरुजी के पास प्रकट करना उचित है। एवं यदि केवल भगवत् कृपया किंवा गुरु कृपामात्र से, विघ्ननिवृत्ति नहीं होवे तो यथाविधि गुरुमुखश्रुत, युक्ति तथा योग्य उपाय अवलंवन-पूर्वक विघ्ननिवृत्ति करना उचित है।

( ६ )

जप ध्यानादि काल में, यदि ऐसा देखने में आ जाय कि चंचल मन लक्ष्य वस्तु को छोड़ कर अनभिलषित किसी विषय में संलग्न हुआ है तो तत्काल में ही मन को उस विषय से हटाकर, पुनः लक्ष्य वस्तु में संलग्न करो। गुरुमुख निःसृत, शास्त्रविहित योग्य उपाय अवलंवनपूर्वक पुनः पुनः अभ्यास करने से अतिशय चंचल मन भी किसी न किसी दिन ध्येय वस्तु में निवद्ध होकर शांत होता है।

( ७ )

श्रीकृष्ण भगवान ने भी प्रिय जिज्ञासु अर्जुनको कहा है कि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



असंशयं महाबाहो ! मनोदुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तुकौन्तेय ! वैराग्येण च गृह्यते ॥
(अ० ६ श्लोक ३५)

भाषार्थ—हे महाबाहो ! मन जो अतिशय चंचल स्वभाव, अपिच दुर्निग्रह वा दुर्निबद्ध है, इसमें तो किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं है। परंतु हे कौन्तेय पुनः पुनः विषयों में अनित्यत्व सातिशयत्वादि दोष दर्शनात्मक विचारोद्भूत वैराग्य अवलंबनतया विषयों से मन को हटाकर, ध्येय वस्तु में मनोनिबन्धनार्थ बारंबार प्रयत्नरूप अभ्यास करते-करते अतिशय चंचल मन भी जो क्रमशः ध्येय वस्तु में निग्रहित वा निबद्ध होकर निवातस्थित दीपवत् शांत होता है, इस विषय में भी अणुमात्र संदेह नहीं है।

~~पातंजलयोग~~

( ८ )

पातंजलदर्शन में भी वर्णित हुआ है कि, "अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः" ॥ (स० १२ सू० ॥) अर्थात् अभ्यास और वैराग्य द्वारा पूर्वोक्त विजातीय मनोवृत्ति निचय निरोध होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



व्याधिस्त्यान संशय प्रमादालस्या विरति
भ्रांति दर्शनालब्ध भूमिकत्वानवस्थितत्वानि
चित्त विक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥ स० ३० सू० ॥

तात्पर्य यह है कि—व्याधि-ज्वरादि, स्त्यान-चित्त की अकर्मण्यता अर्थात् इच्छा रहते हुए भी कार्य संपादन योग्य मानसिक उद्यम शून्यता, संशय उभय कोटि का ज्ञान अर्थात् योग कर सकूँगा अथवा नहीं, किंवा योग साध्य है अथवा नहीं, इत्याकार उभय कोटि का ज्ञान; प्रमाद-योगसाधन कार्य में उदासीनता वा उपेक्षाभाव, आलस्य-देह चित्त की गुरुता, अर्थात् कफादि के आधिक्य हेतु देह की गुरुता, तथा तमोगुणाधिक्य हेतु चित्त की गुरुता, अविरति-विषय तृष्णा अर्थात् यह होना चाहिये, वह होना चाहिये इत्याकार वासना; भ्रांतिदर्शन—विपरीतज्ञान अर्थात् जो वस्तुतः हितकर है उसमें अहितकर बुद्धि, एवं जो अहितकर है उसमें हितकर बुद्धि; अलब्धभूमिकत्व—अर्थात् अभ्यास करने पर भी किसी न किसी कारणवशतः वक्ष्यमाण किसी भी योग भूमि का प्राप्त न होना; अनवस्थितत्व—किसी न किसी योगभूमि का प्राप्त होने पर भी उसमें स्थित न होना; यह चित्त विक्षेपनिचय, योग वा समाधि का अन्तराय अर्थात् विघ्नस्वरूप है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्व श्वास प्रश्वासाविक्षेपसह-भुवः ॥ स० ३१ सू०॥

तात्पर्य यह है कि पूर्वोक्त चित्तविक्षेप के सहित त्रिविध दुःख, दौर्मनस्य—इच्छाभिधात हेतु चित्त क्षोभ, अर्थात् घबराहट वा मनोद्विग्नता; अंगमेजयत्व—शरीरकंपन, श्वासप्रश्वास—प्राणविकार विशेष यह सकल उपद्रव उत्पन्न होता है।

तत् प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥ स० ३२ ॥ सू० ।

इसका भावार्थ यह है कि, तिसविक्षेपनिवृत्ति के लिये, एक तत्त्वाभ्यास अर्थात् परमकल्याणकारी असीम कृपानिधान भोगापवर्गदाता सगुणब्रह्म श्री श्री भगवान का ध्यान करना कर्त्तव्य है।[1]

---

[1]टि०—यद्यपि पातंजल दर्शन में वक्ष्यमाण विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थिति निबन्धनी, विशोका वा ज्योतिष्मती स्वप्ननिद्रा ज्ञानावलंबनं वा, यथाभिमतध्यानाद्वा, प्रभृति सूत्र द्वारा मनः स्थिरता के लिये, नाना प्रकार की ध्येय वस्तु वर्णित हुई है, तथापि भक्ति योगाभ्यासियों के लिये एक मात्र भगवान ही ध्येय है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



## अथ पातंजल दर्शनोक्तयोगांग यथा :—

**यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावंगानि ॥ स० २९ सू० ॥**

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, योग के ये आठ अंग हैं।

प्रथम भागमें यमका स्वरूप वर्णन यथा :—

**अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः ॥ सा० ३० ॥**

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इस पाँच प्रकार के व्रत पालन करने को यम कहते हैं।

## यम

## अहिंसादि के अर्थ यथा :—

अहिंसा—अर्थात् अवैध रूप से मन वाणी देह द्वारा किसी को वध न करने को, एवं किसी को प्राणवियोग तुल्य दुख न देने को अहिंसा कहते हैं।

सत्य—अर्थात् सर्वभूत हितार्थ, यथार्थाभिभाषण करने को सत्य कहते हैं। अभिप्राय यह है कि जैसा देखा और जैसा सुना अपिच जैसा समझा सर्वभूत हितार्थ ठीक वैसा ही बोलने को सत्य कहते हैं।



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अस्तेय—अर्थात् अवैध रूप से मनवाणी देह द्वारा परद्रव्य ग्रहण न करने को अस्तेय कहते हैं।

ब्रह्मचर्य :—

कायेन मनसा वाचा सर्वावस्था सुसर्वदा।
सर्वथा[1] मैथुन त्यागो ब्रह्मचर्यः स उच्यते॥

अर्थात् सर्वदा सकल अवस्था में मन वाणी देह से सकल प्रकार के मैथुन त्याग करने को ब्रह्मचर्य कहते हैं।

(अथवा)

श्रवणं प्रेक्षणं केलिः स्मरणं गुह्यभाषणम्
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेवच॥
एतन्मैथुनमष्ठांगं प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्यं मनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः॥

श्रवणादिके अर्थ यथा :—

प्रथम श्रवणं—अर्थात् रसपूर्वक मैथुन संवन्धी वाक्य सुनना, द्वितीय प्रेक्षणं—अर्थात् रसपूर्वक किसी स्त्री किंवा स्त्रीचित्र को दर्शन करना, तथा किसी युगलों का मैथुन

---

[1] सर्वत्र इति पाठांतरम्।....

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



देखना, तृतीय स्मरणं—अर्थात् पूर्वानुभूत मैथुनों का स्मरण अथवा चिन्तन करना, चतुर्थ संकल्प—अर्थात् मैथुन करने का संकल्प करना, पंचम गुह्यभाषण—अर्थात् गुप्तरूप से किसीके साथ मैथुन करने की इच्छा प्रकाशक वातचीत करना, षष्ठकेलि—अर्थात् रसपूर्वक मुख चुंवनादि कामोद्दीपक चेष्टा करना, सप्तम अध्यवसाय—अर्थात् रति क्रिया वा मैथुन संवन्धी दैहिक चेष्टा करना, अष्टम-क्रियानिष्पत्ति—अर्थात् वीर्य्यपात होना।

मनीषीगण इन आठ प्रकार की क्रिया विशेष को अष्टांग मैथुन कहते हैं। और इसके विपरीत को अर्थात् उल्लिखित आठ प्रकार के मैथुन न करने को ब्रह्मचर्य कहते हैं। भक्ति तथा ज्ञान योगाभ्यासी मुमुक्षुओं का यह ब्रह्मचर्य व्रत भी अवश्य अनुष्ठेय है।

अपरिग्रह—अर्थात् यह होना चाहिये, वह होना चाहिए, इस प्रकार के तृष्णा विवर्जित होकर देह संरक्षणातिरिक्त पदार्थ ग्रहण न करने को अपरिग्रह कहते हैं ॥ सा० ३० सूत्र ॥

**जाति देश काल समयानवच्छिन्नासार्वभौमा महाव्रतम्**

**॥ सा० ३१ सू० ॥**

तात्पर्य यह है कि—उल्लिखित अहिंसादि पंचविध यम नामक व्रत यदि जाति, देश, काल तथा समय द्वारा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अपरिच्छिन्न हो, तो वह यमव्रत ही सार्वभौम महाव्रत नाम से अभिहित होता है। यहाँ पर वक्तव्य यह है कि काल और समय दोनों एकार्थ द्योतक होने के कारण, केवल काल शब्द का प्रयोग करने से ही तो कार्यसिद्ध हो सकती थी। परंतु "उद्वर्तोहि ग्रंथः समधिक फलमाचष्टे" इस विधि अनुसार ग्रंथकर्त्ता ने समय शब्द का प्रयोग करके, यह अधिक फल द्योतन किया है कि, भक्ति तथा ज्ञान योगाभ्यासी मुमुक्षुगण जो केवल अवैध हिंसा ही न करे ऐसा नहीं ? जितना संभव हो सके वे वैध हिंसा भी न करें। अर्थात् अपनी सामर्थ्य विद्यमान रहते हुए भी, भक्ति तथा ज्ञान योगाभ्यासी मुमुक्षुगण हननोद्यत मानव अथवा सिंह सर्पादि को भी आत्मसंरक्षणार्थ हनन करने की इच्छा न करें। एवं वाणी द्वारा भी उसे भयादि प्रदर्शन न करे। अभिप्राय यह है कि हिंसा करने की बात तो दूर रही, हननोद्यत प्राणियों का भी लेशमात्र अहितचिंतन भी न करे। सा० ३१ सूत्र।

**अहिंसा प्रतिष्ठायांतत्सन्निधौवैरत्यागः ॥ सा० ३५ सू० ॥**

अर्थात् अहिंसा प्रतिष्ठा होने पर, तत् समीप में सकल प्राणियों का वैर त्याग होता है ॥ सा० ३५ सूत्र।

महाभारत में भी वर्णित हुआ है कि,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



"अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यश्चरते मुनिः।
न तस्य सर्व भूतेभ्यो भयमुत्पद्यते क्वचित् ॥"

अर्थात् जो मुनि सर्वभूतों को अभयदान करके विचरण करता है उस मुनि को कभी भी सर्वभूतों से भयोत्पन्न नहीं होता है।

पातंजलदर्शन में तो सत्यादि प्रतिष्ठा का फल भी वर्णित हुआ है। परंतु विशेष आवश्यक बोध न होने के कारण सो यहाँ पर लिपिवद्ध नहीं हुआ।

## नियम

अधुना द्वितीय योगांग नियम का स्वरूप वर्णन किया जाता है। यथा :—

शौच संतोष तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः॥
सा० ३२ सूत्र ॥

तात्पर्य यह है कि शौच, संतोष, तपः, स्वाध्याय, तथा ईश्वर प्रणिधान इन पाँच प्रकार के अनुष्ठान वा क्रिया विशेष को नियम कहते हैं।

## अथ शौचादि के अर्थ यथा :—

शौच—अर्थात् शुद्धि को शौच कहते हैं। बाह्य एवं आभ्यंतर भेद से शौच द्विविध है। तद् यथा :—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जल मिट्टी आदि द्वारा स्थूल देह शुद्धि को बाह्य शौच कहते हैं। तथा मैत्री, करुणा, मुदिता, एवं उपेक्षा भाव अवलंबनपूर्वक यथाविधि निष्काम कर्म के अनुष्ठान द्वारा अंतःकरण शुद्धि को आभ्यंतर शौच कहते हैं।

संतोष—अर्थात् अनुकूल अथवा रुचिकर अन्न वस्त्रादियों की तृष्णा रहित होकर, देह रक्षा के लिये, भगवदिच्छा वा प्रारब्धवशतः जो कुछ मिल जाय उसमें ही सर्वदा प्रसन्न रहने को संतोष कहते हैं।

तप—अर्थात् क्षुत् पिपासा, शीतोष्ण, एवं मौन, काष्ठ मौन, तथा स्थानासनजनित क्लेश, अपिच कृच्छ्रसांतपन, तप्तकृच्छ्र, पराक, प्राजापत्य, चांद्रायण, प्रभृति व्रतानुष्ठान जनित क्लेश सहन करने को तप कहते हैं।

स्वाध्याय—अर्थात् वेद एवं वेदमूलक वेदांतादि मोक्ष शास्त्र के अध्ययन करने को स्वाध्याय कहते हैं। ईश्वर प्रणिधान —अर्थात् जगद्गुरु श्री श्री भगवान में विधिपूर्वक स्वानुष्ठित समस्तकर्म के समर्पण करने को ईश्वर प्रणिधान कहते हैं।

## अथ आसन यथा :—

स्थिर सुखमासनम् ॥ सा० ४६ ॥ सूत्र।

तात्पर्य यह है कि जिससे मेरुदंड को सीधा रखकर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अभ्यास की परिपक्व अवस्था में दीर्घकाल पर्यंत अपरिवर्तित रूप से निश्चलतया सुखपूर्वक स्थित हो सकता है उसे आसन कहते हैं। जैसा सुप्रसिद्ध पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन प्रभृति।

## अथ प्राणायाम यथा :—

**तस्मिन्सतिश्वास प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदःप्राणायामः ॥**

अर्थात् आसन जय होने पर; शास्त्रविधि अवलंवन-पूर्वक श्वास प्रश्वास की स्वाभाविक गति विच्छेद वा निरोध करने को प्राणायाम कहते हैं॥ सा० ४९ सू० ॥

## अथ प्रत्याहार यथा :—

**स्वविषया संप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः। सा० ५४ सू० ॥**

तात्पर्य यह है कि "इन्द्रियाणां स्वविषया संप्रयोगे" अर्थात् श्रोत्रत्वग् नेत्रादि इन्द्रियों को निज-निज शब्द स्पर्श, रूप रसादि विषय ग्रहण कार्य से निवृत्ति वा उपराम कृते, "चित्तस्य स्वरूपानुकार इव प्रत्याहारः" उच्यते, अर्थात् अंतःकरण वृत्ति का स्वरूपानुकरण जैसा करने को प्रत्याहार कहते हैं। (इन्द्रियाणामितिकर्मणिषष्ठी)।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इसका सुस्पष्ट भावार्थ यह है अंतःकरणविधृत विषयातिरिक्त अन्यान्य विषयों में धावमान श्रोत्रत्वग्नेत्रादि इन्द्रियों को, निज निज शब्द-स्पर्शरूप रस गन्ध इन पंचविध विषय ग्रहण कार्य से निवृत्त वा उपराम करके, अंतःकरण-वृत्ति अभिन्नवत् जिस वस्तु के स्वरूपाकार में परिणत हो रही है तद्वस्तु के स्वरूप में ही निवद्ध करने को प्रत्याहार कहते हैं।

अथ धारणा यथा :—

देशबन्धश्चित्तस्यधारणा ॥ वि० १ सूत्र ॥

अर्थात् हृदय पुंडरीकादि अभ्यंतरदेशस्थ अथवा वहिर्देशस्थ श्री श्री भगवान के ही चरण नखादि किसी अभीष्ट देश में, अंतःकरण वृत्ति के बन्धन को धारणा कहते हैं। तात्पर्य यह है कि, पूर्वोक्त प्रत्याहार अवलंवनतया अन्यान्य विषयों से अंतःकरणवृत्ति को हटाकर श्री श्री भगवान के ही चरण नखादि किसी अभीष्ट देश में अविचलित रूप से निबद्ध करने को, अर्थात् अविचलित रूप से श्री श्री भगवान के ही चरण नखादि किसी एक देशीय स्वरूप चिंतन करने को धारणा कहते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



## अथ ध्यान यथा :—

**तत्र प्रत्ययैकतानताध्यानम् ॥ वि० २ सू० ॥**

अर्थात् पूर्वोक्त धारणा अभ्यास की परिपक्व अवस्था में अंतःकरणवृत्ति अविच्छिन्नतया विधृत वा चिंतनीय वस्तु के स्वरूपाकार में परिणत होने पर, तद् वस्तु का जो प्रत्यय अर्थात् प्रतीति वा ज्ञान होता है, उस ज्ञान की एकतानता अर्थात् अविच्छिन्न प्रवाहता ही ध्यान नाम से अभिहिता होती है। तात्पर्य यह है कि पहिले पहिले धारणा अभ्यास काल में अभाव प्रत्ययावलंबना निद्रादि विजातीय वृत्ति द्वारा धारणावृत्ति विच्छिन्ना होने के कारण, इच्छा तथा प्रयत्न करते हुये भी श्री श्री भगवान का दर्शन नहीं होता है। परंतु धारणा अभ्यास की परिपक्व अवस्था में धारणावृत्ति क्रमशः अपेक्षाकृत अधिक काल पर्यंत तैलधारावत् अविच्छिन्नतया प्रवाहित होने पर श्री श्री भगवान का जो प्रत्यक्षवत् दर्शन होता है, उसे ही ध्यान कहते हैं।

## अथ समाधि यथा :—

**तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः ॥ वि० ३ सू० ॥**

भाषार्थ यथाः—"तदेव" अर्थात् वह ध्यान ही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



(अभ्यास प्रभाव वशतः यदा) "स्वरूप शून्यमिव" अर्थात् ध्यातृ ध्यानों का स्वरूप प्रतीति शून्यवत् होकर "अर्थमात्र-निर्भासं" अर्थात् एकमात्र ध्येय वस्तु ही भासमान होती है, (तदा) "समाधिः" (उच्यते) अर्थात् उस काल में समाधि नाम से अभिहित होता है। तात्पर्य यह है कि, ध्यान की अपक्व अवस्था में ध्येयाकाराकारिका अंतःकरण वृत्ति प्रवाह के सहित ध्यातृध्यानाकाराकारिका अंतःकरण वृत्ति प्रवाह भी विद्यमान रहता है। परंतु ध्यान की परिपक्व अवस्था में ध्यातृध्यानाकाराकारिका अंतःकरण वृत्ति प्रवाह निरुद्ध होने के कारण अथवा कहो ध्यान ध्यातृज्ञान विलुप्त होने के कारण, तैल धारावत् अविच्छिन्नतया एकमात्र ध्येय वस्तु का स्वरूपाकाराकारिका अंतःकरण वृत्ति प्रवाह उदय होने पर अथवा कहो कि अविच्छिन्नतया ध्येयज्ञान प्रवाह उदय होने पर उसे ही, समाधि कहते हैं।

सदा अपरोक्ष स्वरूप होने के कारण, ध्यातृ ज्ञान का स्वरूप शून्य होना असंभवहेतु, इव शब्द द्वारा यह भाव द्योतन किया है कि समाधि अवस्था में ध्येय के सहित ध्याता अभिन्न होकर अर्थात् ध्येयस्वरूप होकर विद्यमान रहता है।

यहाँ पर वक्तव्य यह है कि, एक ही विषय में अविच्छिन्न-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तया उपरोक्त धारणा ध्यान समाधि इन तीनों के एकत्र होने पर संयम कहते हैं।

एवं कार्यकारणात्मक प्राकृतिक वस्तुनिचय में यथाविधि उपरोक्त संयमाभ्यास द्वारा भुवनज्ञान, गरिमा, लघिमा प्राकाम्य, महिमा प्रभृति वहुत विचित्र विचित्र सिद्धिप्राप्ति की वात वर्णित हुई हैं। परंतु—

"तेसमाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः"
"तद्वैराग्यादपि दोष बीजक्षये कैवल्यम्"

इत्यादि सूत्रों से यह भी वर्णित हुआ है कि वे सिद्धियाँ, मुक्ति के हेतु भूत भक्तियोग तथा ज्ञान योग का प्रतिवन्ध वा विघ्नस्वरूप हैं। अतएव मुमुक्षु जनों का उससे वचना ही अति आवश्यक है।

## अथ श्रुति उक्त अष्टाङ्ग योग

अधुना श्रुति उक्त अष्टांगयोग वर्णन किया जाता है। तद् यथाः—

यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणाध्यान समाधयोऽष्टावंगानि ॥

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



धारणा, ध्यान, एवं समाधि, योग के इन अष्टविध अंगो को अष्टांग योग कहते हैं।

तत्राऽहिंसा सत्याऽस्तेय ब्रह्मचर्य दयाजपक्षमा धृति मिताहार शौचानिचेति यमा दश।

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य दया जप क्षमा, धृति, मिताहार, एवं शौच, इन दस प्रकार की क्रियायों के अनुष्ठान करने को प्रथम योगांग यम कहते हैं।

## अहिंसादि के अर्थ यथा :—

तत्राऽहिंसानाम मनो वाक्काय कर्मभिः सर्वभूतेषु सर्वदाक्लेशाऽजननम् ॥

तात्पर्य यह है कि किसी का मृत्युजनक व्यापार एवं मरणतुल्य दुःखोत्पादक व्यापार न करने को अहिंसा कहते हैं।

२—सत्यंनाम मनोवाक्कायकर्मभिर्भूत हित–यथार्थाभिभाषणम् ॥

तात्पर्य यह है कि, मन वाणी देह द्वारा सर्वभूतहितार्थ यथार्थाभिभाषण करने को, अर्थात् जैसा देखा, एवं जैसा सुना, अपिच जैसा समझा, सर्वभूत हितार्थ ठीक वैसा ही बोलने को सत्य कहते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



३—अस्तेयं नाम मनोवाक्काय कर्मभिः परद्रव्याऽग्रहणम् अथवा पर द्रव्येषु निः स्पृहा ॥

तात्पर्य यह है कि मन वाणी देह द्वारा, पर द्रव्य ग्रहण न करने को अस्तेय कहते हैं। अथवा पर द्रव्य में इच्छा वा स्पृहा राहित्य को अस्तेय कहते हैं।*

४—ब्रह्मचर्यंनाम सर्वावस्थासु मनोवाक्काय कर्मभिः सर्वत्र मैथुनत्यागः ॥

तात्पर्य यह है कि, सकल अवस्था में मन वाणी देह द्वारा सर्वत्र मैथुन परित्याग करने को ब्रह्मचर्य कहते हैं।

५—दयानाम सर्वभूतेषु सर्वत्रानुग्रहः।

तात्पर्य यह है कि, सर्वदा सकल भूतों में अनुग्रह करने को दया कहते हैं।

६—आर्जवं नाम मनोवाक्काय कर्मणां विहिताविहितेषु प्रवृत्तौ निवृत्तौवा एकरूपत्वम् ॥

---

*टि०—प्राचीन काल में निवृत्तिमार्गावलंबन कारी मुमुक्षु मानवगण, परद्रव्यग्रहण नहीं करते थे; वे जिस द्रव्य में किसी का भी अभिमान न हो, ऐसे परित्यक्त एवं यज्ञावशेष द्रव्य ही यथाविधि देह रक्षणार्थ ग्रहण करते थे। चाहे वे गृहस्थादि किसी भी आश्रमी क्यों न हो।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तात्पर्य यह है कि विहिताविहित प्रवृत्ति, निवृत्ति विषयक व्यवहारों में मनोवाक्काय कर्मों के एक रूपत्व को अर्थात् जैसा मन में है ठीक वैसा ही बोलने को, एवं जैसा बोले ठीक वैसा ही कार्य करने को आर्जव कहते हैं।

७—क्षमानाम प्रियाप्रियेषु सर्वेषु ताड़न पूजनेषु सहनम् ।

तात्पर्य यह है कि प्रिय अप्रिय ताड़न पूजनादि सकल विषयों में सहन करने को क्षमा कहते हैं।

८—धृतिर्नामार्थहानौ स्वेष्टबन्धुवियोगे तत्प्राप्तौ सर्वत्र चेतः स्थापनम् ।।

तात्पर्य यह है कि स्वजनवियोग तथा अतिशय माना-पमान अपिच अत्यधिक हानि लाभादियों में सर्वत्र धैर्य्य धारण पूर्वक, नित्य नैमित्तिक कर्त्तव्य कर्मों में चित्त स्थापन वा मन स्थिर करने को धृति कहते हैं।

९—मिताहारो नाम चतुर्थांशावशेषक सुस्निग्धमधुरा हारः ।।

क—शुद्धं हितकरं स्निग्धमुदरार्धं विवर्जितम् ।
भुज्यते सुरसंप्रीत्या मिताहारमिदं विदुः ।।

ख—न कार्या क्षुधितेनापि नापि विण्मूत्र वेगिना ।
हितं मितं च भोक्तव्यं स्तोकं स्तोकमनेकधा ।।

ग—हितं मितं सदा श्नीयात् ।।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



घ—अन्नेनपूरयेदर्धं तोयेन तु तृतीयकम् ।
उदरस्य तुरीयांशं संरक्षेद्वायुचारणे ॥

विभिन्न स्थानोद्धृत मिताहार संबंधी उपरोक्त वाक्य-समूह का तात्पर्य यह है कि, विशुद्ध एवं सुस्निग्ध, अपिच हितकारक अन्न, साधन भिन्नतादि विचारपूर्वक जितने वार जितना परिमाण आहार करने से भलीभांति परिपाक तथा उपासना के अनुकूल हो उतने वार उतना ही परिमित आहार करने को मिताहार कहते हैं।

१०—शौचं नाम द्विविधंवाह्यमाभ्यन्तरं चेति ॥

तात्पर्य यह है कि, जलमृत्तिकादि द्वारा स्थूल देह शुद्धि को वाह्यशौच कहते हैं। एवं यथाविधि निष्काम कर्मानुष्ठान द्वारा अंतःकरण शुद्धि को आभ्यन्तर शौच कहते हैं।

## नियम

अथ द्वितीय योगांग दशविध नियम यथा :—

तपः सन्तोषास्तिक्य दानेश्वरपूजन सिद्धांत श्रवण ह्री मतिजपव्रतानिदश नियमाः ॥

अर्थात् तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान ईश्वर पूजन,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सिद्धान्त श्रवण, ह्री, मति, जप एवं व्रत, इन दस प्रकार कर्मों का अनुष्ठान करने को द्वितीय योगांग नियम कहते हैं।

## तपादि के अर्थ यथा :—

**१—तपोनाम विध्युक्त कृच्छ्र चांद्रायणादिभिः शरीरशोषणम् ॥**

तात्पर्य यह है कि, यथाविधि कृच्छ्र चांद्रायणादि व्रतानुष्ठान द्वारा शरीर शोषण करने को तप कहते हैं।

इस उपनिषद में तपसाधनभूत चाद्रांयणादि व्रतों का स्वरूप वर्णन न करके, अति संक्षेपतः व्रत का नाम मात्र ही कथन किया है। अतएव यहाँ पर श्रुतिमूलक, धर्मशास्त्रोक्त प्राजापत्यादि व्रतों का स्वरूप वर्णन किया जाता है। यथाः—

**त्र्यहंप्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमदयाद्याचितम्। त्र्यहं परंच नाश्नीयात् प्राजापत्यं चरन्द्विजः ॥ इति मनु ॥**

तात्पर्य यह है कि प्राजापत्याचरणकारी द्विजगण यदि तीन दिन प्रातः संध्योपासना करने के पश्चात् एवं तीन दिन सायंसंध्योपासना करने के पश्चात् और तीन दिन अयाचित भिक्षाकाल में अर्थात् याचित भिक्षोक्त अपराह्णकाल के पहिले मध्याह्न संध्योपासना समापनानन्तर यथाविधि भोजन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



करके, एवं पीछे के तीन दिन भोजन न करके, बारह दिन यथोक्त नियम पालन करें तो उसे प्राजापत्यव्रत कहते हैं।

इति मनुस्मृति ॥

**एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च। उपवासेन चैवायंपादकृच्छ्र प्रकीर्त्तितः।**

**यथाकथंचित्त्रिगुणः प्राजापत्योऽयमुच्यते ॥ इति याज्ञवल्क्य ॥**

तात्पर्य यह है कि एक दिन प्रातः संध्योपासना समापनान्तर यथाविधि ग्रास ग्रहण पूर्वक, एवं एक दिन सायं संध्योपासनान्तर ग्रास ग्रहणपूर्वक और एक दिन मध्याह्न संध्योपासना समापनान्तर ग्रासग्रहण पूर्वक, एवं एक दिन उपवास पूर्वक चार दिवस यथोक्त रूप से नियम पालन करना ही पादकृच्छ्र नाम से अभिहित होता है। और यथाविधि पादकृच्छ्र का त्रिगुण अर्थात् बारह दिन यथोक्त रूप से नियम पालन ही प्राजापत्य नाम से अभिहित होता है।

इति याज्ञवल्क्य स्मृति।

## ग्रास संख्या तथा परिमाण वर्णन। यथाः—

**सायन्तु द्वादशग्रासाः प्रातः पंचदशस्मृताः। चतुर्विंशतिरायाच्याः परं निरशनं स्मृतम्। इति पाराशरः।**



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तात्पर्य यह है कि सायं संध्योपासना करने के पश्चात् बारह ग्रास, एवं प्रातः संध्योपासना करने के अनंतर पन्द्रह ग्रास, और मध्याह्न संध्योपासना करने के अनन्तर चौबीस ग्रास भोजन करे। एवं पीछे के तीन दिन निरशन अर्थात् उपवास करना ही शास्त्रविहित है।

इति पाराशर।

शक्त्यपेक्षया प्रकारान्तरमाह।

सायं द्वाविंशति ग्रासाः प्रातः षड्विंशति स्मृताः।
चतुर्विंशतिरायाच्याः परेनिरशनास्त्रयः॥
कुक्कुटांड प्रमाणं तु यथावास्ये विशेत् सुखम्॥

अर्थात् सायंकाल में द्वाविंशति, एवं प्रातःकाल में षड्विंशति और अयाचित काल में चतुर्विंशति ग्रास भोजन करे; एवं पीछे के तीन दिन उपवास करे।

ग्रास का परिमाण कुक्कुटांडवत्।

अथवा अनायासतया मुख में जितना प्रवेश करे॥ इति आपस्तंभ॥

अथ कृच्छ्र सान्तपन यथा :—

गोमूत्रं गोमयंक्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्र सान्तपनं स्मृतम्॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तात्पर्य यह है कि गोमूत्र, गोबर, (गोमूत्र और गोबर दोनों मिलाकर कपड़े से छान के रस लेना अच्छा है) एवं गौ का दुग्ध, दधि, घृत और कुशों का जल इन छे वस्तुओं को मिलाकर प्रथम दिन भक्षण करके, एवं दूसरे दिन उपवास करके दो दिवस काल यथोक्त नियम पालन करने को कृच्छ्र सान्तपन कहते हैं ॥ इति मनुः ॥

कुशोदकं च गोक्षीरं दधिमूत्रं शकृद्घृतम् ।
जग्ध्वापरेह्न्युपवसेत् कृच्छ्रसान्तपनं चरन् ॥
इति याज्ञवल्क्यः ॥

इसका अर्थ पूर्वोक्त मनु कथित कृच्छ्रसान्तपन वत् ॥
पृथक् सान्तपन द्रव्यैः षडहस्सोपवासिकः ।
सप्ताहेनतुकृच्छ्रोऽयं महासान्तपनं स्मृतम् ॥
इति याज्ञवल्क्यः ॥

तात्पर्य यह है कि प्रथम दिवस में कुशों का जल, द्वितीय दिवस में गौ दुग्ध, तृतीय दिवस में गौ का दही, चतुर्थ दिवस में गोमूत्र, पंचम दिवस में कपड़े से छाना हुआ गोबर का रस, षष्ठ दिवस में गौ का घृत, यथाविधि सेवन करके एवं सप्तम दिवस उपवासी होकर यथोक्त नियमों का पालन करने को महासान्तपन कहते हैं ॥ इति याज्ञवल्क्य ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अथ अतिकृच्छ्र । यथा :—

एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ।
त्र्यहं चोष्ण व सेदन्त्य मतिकृच्छ्रंचरन्द्विजः ॥ इति मनु ॥

तात्पर्य यह है कि अतिकृच्छ्राचरणकारी द्विजगण, प्रथम दिवस, प्रातः संध्योपासना समापनान्तर एक ग्रास, एवं द्वितीय दिवस सायं संध्योपसना समापनान्तर एक ग्रास, और तृतीय दिवस मध्याह्न संध्योपासना समापनान्तर एक ग्रास भोजन करके एवं त्रीणि पूर्ववत् अर्थात् पूर्वोक्त रूप से चतुर्थ दिवस प्रातः संध्योपासना समापनान्तर एक ग्रास, एवं पंचम दिवस में सायं संध्योपासना समापनान्तर एक ग्रास और षष्ठ दिवस मध्याह्न संध्योपासना समापनान्तर एक ग्रास भोजन करके, एवं पीछे के तीन दिन अर्थात् सप्तम, अष्टम तथा नवम दिवस में उपवास करके, नौ दिन तक यथोक्त रूप से नियमों का पालन करने पर उसे अति कृच्छ कहते हैं ॥ मनुः ॥

अथ तप्त कृच्छ्रः ।

तप्तक्षीरघृतांबुनामेकैकं प्रत्यहं पिबेत् ।
एकरात्रोपवासश्च तप्तकृच्छ्र उदाहृतः (इति याज्ञवल्क्यः ॥)

तात्पर्य यह है कि प्रत्येक दिन एक वार मात्र स्नानपूर्वक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्रथम दिवस में तप्त गोदुग्ध, एवं द्वितीय दिवस में गरम किया हुआ गौ का घृत और तृतीय दिवस में गरम जल पान करे; एवं चतुर्थ दिवस में उपवास करके, चार दिन तक यथोक्त रूप से नियमों का पालन करने को तप्तकृच्छ्र कहते हैं ।। इति याज्ञवल्क्यः ।।

तप्तकृच्छ्र चरन् विप्रोजल क्षीर घृतानिलान् ।
प्रतित्र्यहंपिवेदुष्णान् सकृत्स्नायी समाहितः ।।

इति मनुः ।

तात्पर्य यह है कि तप्तकृच्छ्राचरणकारी द्विजगण, प्रत्येक दिन एक वार मात्र स्नान करते हुए समाहित होकर प्रथम तीन दिवसों में गरम जल, एवं द्वितीय तीन दिवसों में गरम गोदुग्ध और तृतीय तीन दिवसों में गरम किया हुआ गौ का घृत पान करे, एवं चतुर्थ तीन दिवसों में प्राकृतिक वा स्वभाव सिद्ध श्वासग्रहणरूप वायु पान करके अर्थात् निर्जल उपवास करके वारह दिन तक यथोक्त रूप से जप ध्यानादि नियमों के पालन करने को तप्तकृच्छ्र कहते हैं ।।इति मनुः।।

जलादियों का परिमाण यथा :—

अपांपिवेत्तु त्रिपलं द्विपलन्तुपयः पिवेत् ।
पलमेकं पिवेत्सर्पिस्त्रिरात्रंचोष्णमारुतम् ।

इति पराशरः ।।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तात्पर्य यह है कि, तप्तकृच्छ्र में, जल तीन पल, दुग्ध दो पल, एवं घृत एक पल* परिमाण में पान करे और पीछे के तीन दिवसों में स्वाभाविक श्वास ग्रहण रूप उष्णमारुत पान करे, अर्थात् निर्जल उपवास करे ॥ इति पराशर ॥

अत्र वक्तव्य यह है कि

तप्तकृच्छ्र में देहोत्ताप संरक्षणार्थ, जैसे प्रत्येक दिन छे बार अवगाहन, स्नान तथा ठंडे जल दुग्धादियों का निषेध करके एक बार स्नान एवं गरम जल दुग्धादि पीने की विधि प्रदान की है। वैसे ही उष्ण मारुत मित्यत्र—उष्ण विशेषण द्वारा अस्वाभाविक रूप से, यत्किंचित् मुख विस्तारपूर्वक जिह्वाकृष्ट शीतल वायु पान करने का निषेध करके तप्त-कृच्छ्र व्रतानुष्ठान द्वारा परिवर्धित देहोत्ताप सम्मिलित उष्णमारुत पान करने की विधि अर्थात् निर्जल उपवास करने की विधि प्रदान की है।†

---

*टि०—अनेक प्रकार के पलमान प्रचलित हैं। परंतु यहाँ पर आयुर्वेद शास्त्रोक्त, आठ तोले का पलमान ग्रहण करना ही मेरे विचार से ठीक जचता है।

†टि० —किसी किसी की सम्मति ऐसी है कि, पीछे के तीन दिवसों में उष्णमारुत अर्थात् उष्णोदक क्वाथ अथवा कहो पादावशेष गरम जल पान करे; परंतु यह बात मेरे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विचार से ठीक नहीं जचती है। क्योंकि प्रथम तो उपयुक्त युक्ति वा शास्त्रीय प्रमाणाभाव निवन्धन उष्णामारुत का अर्थ उष्णोदक क्वाथ अथवा कहो पादावशेष गरम जल करना ही सर्वथा असंगत है। दूसरी बात यह है कि पीछे के तीन दिवसों में पादावशेष गरम जल पीने से, याज्ञवल्क्य, मनु तथा पराशर जी का उपदिष्ट वा अभिलक्षित निर्जल उपवास सिद्ध नहीं होता है॥

CC0. In Public Domain. Sri Śri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अथ पराक-कृच्छ्र :—

यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहम भोजनम् ।
पराकनाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः ।। (इतिमनुः ।)

तात्पर्य यह है कि—संयतेन्द्रिय तथा स्वस्थ चित्त मानव का, बारह दिन तक उपवासपूर्वक यथोक्त रूप से जप ध्यानादि नियमों का पालन करना ही, सर्वपापविनाशक पराक-कृच्छ्र नाम से अभिहित होता है ।। इति मनु ।।

अथ पिपीलिका मध्यमचान्द्रायणम् ।।

एकैकं ह्रासयेत् पिण्डं कृष्णे शुक्लेचवर्धयेत् ।
उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणंस्मृतम् ।। (मनुः) ।।

सान्वय भाषार्थ यथा :—"त्रिषवणमुपस्पृशन्" अर्थात् दोनों पक्षों का त्रिसंधि उपस्पर्श वा संस्पर्श करते हुए "कृष्णौ एकैकं पिण्डं ह्रासयेत" अर्थात् कृष्ण पक्ष में एक एक ग्रास करके घटावे "च" और "शुक्लेवर्धयेत" अर्थात् शुक्ल पक्ष में एक एक ग्रास करके बढ़ावे "एतच्चान्द्रायणं स्मृतम्" अर्थात् यह व्रत चान्द्रायण नाम से अभिहित हुआ है ।

तात्पर्य यह है कि—शुक्ल पक्ष की अंत्य पूर्णिमा, एवं कृष्ण पक्ष की आद्य प्रतिपदा इन दोनों पक्षों के संस्पर्श में

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्रथम संधि, तथा कृष्णपक्ष की अंत्य अमावस्या, एवं शुक्ल पक्ष की आद्य प्रतिपदा इन दोनों पक्षों के संस्पर्श में द्वितीय संधि और शुक्ल पक्ष की अंत्य पूर्णिमा एवं कृष्णपक्ष की आद्य प्रतिपदा, इन दोनों पक्षों के उपस्पर्श वा संस्पर्श में तृतीय संधि कही जाती है। त्रिषवण पदवाच्य उक्त संधित्रय को उपस्पर्श करते हुए, एक तीस दिन तक यथोक्त रूप से जप ध्यानादि नियमों का पालनपूर्वक प्रारंभ में पूर्णिमा के दिन मध्याह्न काल में पन्द्रह ग्रास भोजन करके, कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से प्रत्येक दिन एक एक ग्रास करके घटाकर चतुर्दशी के दिन एक ग्रास भोजन करे, एवं अमावस्या के दिन उपवास करके शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से प्रत्येक दिन एक एक ग्रास बढ़ाकर पूर्णिमा के दिन पन्द्रह ग्रास भोजन करे। यह व्रत पिपीलिका मध्य विशेषण विशिष्ट चान्द्रायण नाम से अभिहित हुआ है।*

---

*टि०—मनुस्मृति के भाष्यकार मेधातिथि जी ने त्रिषवण शब्द का अर्थ त्रिकाल एवं उपस्पृश शब्द का स्नानार्थ ग्रहण करके "उपस्पृशंस्त्रिषवणम्" इस वाक्य का अर्थ किया है, त्रिकाल स्नान करते हुए, एवं प्रसिद्ध टीकाकार कुल्लूक भट्ट जी आदि, वर्त्तमान काल के प्रचलित समस्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



टीकाकारों ने भाष्यकार मेधातिथि का ही अनुसरण किया है। परंतु भाष्यकार जी का किया हुआ अर्थ निर्दोष अथवा निर्विरोध न होने के कारण उनका अनुसरण न करके मैंने, "उपस्पृशंस्त्रिषवणम्" इस वाक्य का स्वतंत्र अर्थ किया है। भाष्यकार के अर्थ में मुझे जो कुछ दोष वा विरोध देखने में आया है सो नीचे प्रकट किया जाता है। यथाः—

१—कौन व्रत कितने दिन व्यापक है, इसका भी निर्धारित नियम रहना आवश्यक निवन्धन प्राजापत्यादि प्रत्येक व्रतविधि में ही कालनिरूपक वाक्य देखनेमें आता है। अतएव चान्द्रायण व्रत विधि में भी, काल निरूपक वाक्य रहना अति आवश्यक है। एवं मेरे विचार से तो "उपस्पृशंस्त्रिषवणम्" यह वाक्य ही काल निरूपक है। परंतु चान्द्रायण व्रतविधि में "उपस्पृशंस्त्रिषवणम्" इससे भिन्न अन्य कोई भी काल निरूपक वाक्य न होते हुए भी अपिच वक्ष्यमाण विधि में स्नाननिरूपक वाक्य विद्यमान रहते हुए भी भाष्यकार मेधातिथि जी ने "उपस्पृशंस्त्रिषवणम्" इस वाक्य का काल निरूपक अर्थ न करके, स्नान निरूपक अर्थ ही द्योतन किया है। यहाँ पर मेरा वक्तव्य यह है कि—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



"अर्थात् प्रकरणाल्लिगादौचित्याद्देशकालतः ।
शब्दार्थास्तु विभज्यन्ते न रूपादेव केवलम् ॥

इस विधि की उपेक्षा करके अथवा पूर्वा पर विचार न करके, दोष दुष्ट विरुद्धार्थ द्योतन करना मेरे विचार से तो दोष ही है। क्योंकि मैं गुरु परंपरा प्राप्त भ्रमात्मक वाक्य का अनुसरणकारी अन्धविश्वासी नहीं हूं।

२—कोई यदि ऐसी कल्पना करे कि कृष्णपक्ष में ग्रास घटाने की एवं शुक्ल पक्ष में ग्रास बढ़ाने की विधि वाक्य विद्यमान रहने के कारण यही समझ में आता है कि दो पक्ष कालव्यापक चान्द्रायणव्रत है, फिर पृथक रूप से कालनिरूपक वाक्य प्रयोग करने की आवश्यकता क्या है? तो इसके उत्तर में ऐसा कहा जा सकता है कि उपरोक्त प्रकार की कल्पना करना ठीक नहीं है। क्योंकि चान्द्रायणव्रत दो पक्ष काल व्यापक नहीं है। वह जो त्रिसंधि उपस्पर्शित काल व्यापक है, अर्थात् पूर्णिमा के दिन से प्रारंभ करके आगामी पूर्णिमा पर्यन्त एकतीस दिन व्यापक है सो तो किसी को अस्वीकार्य नहीं है। अपर दो पक्ष व्यापक कहने पर तो कृष्णपक्ष की प्रतिपदा के दिन से व्रतारंभ करके शुक्लपक्ष की पूर्णिमा पर्यन्त तीस दिन में ही व्रत समाप्त करना उचित

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



है। परंतु ऐसा तो कोई भी नहीं करता है। एवं ऐसा करने की विधि भी देखनें में नहीं आती है।

३—मनु जी ने तप्तकृच्छ्र में तो "सकृत्स्नायी" अर्थात् एक बार स्नान करते हुए ऐसी विधि प्रदान की है। किन्तु तप्तकृच्छ्रातिरिक्त अन्यान्य समस्तव्रतों में ही "त्रिरहस्त्रि निशायांच सवासा जलमाविशेत्" अर्थात् तीन बार दिन में एवं तीन बार ही रात में वस्त्र के सहित जल में प्रवेश करे अर्थात् अवगाहिन स्नान करे, अतएव मनु जी ने तो चान्द्रायणव्रत में भी दिवा रात्रि मिला कर, प्रत्येक दिन छे बार करके डुबकी लगाकर स्नान करने की विधि प्रदान की है। परंतु भाष्यकार जी पहिले चान्द्रायण व्रत में त्रिकाल स्नान बता चुके हैं। इसलिये स्वकीय वाक्य की स्वार्थकता सिद्धयर्थ, "त्रिरहस्त्रिनिशायांच सवासाजलमाविशेत्" इस विधिवाक्य की व्याख्या में ऐसा कथन किया है कि चान्द्रायणव्रत को छोड़कर प्राजापत्यादि व्रतों में प्रत्येक दिन छे बार करके स्नान करे। यहाँ पर मेरा जिज्ञास्य यह है कि प्राजापत्यादि व्रत समूह में यदि छे वार करके स्नान करने का नियम निर्धारित किया है, तो फिर चान्द्रायण व्रत में तीन बार स्नान करने का नियम क्यों निर्धारित किया है ?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तो इसका शास्त्रीय प्रमाण वा युक्ति युक्त उत्तर मिलना असंभव है। अपर निर्विरोध अर्थ करने का सहज उपाय विद्यमान रहते हुए भी खींचतान करके दोषदुष्ट विरुद्धार्थ द्योतन करना मेरे विचार से ठीक नहीं जचता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



## अथ यव मध्य चान्द्रायणम्

एतमेव विधिकृत्स्नमाचरेद्यव मध्यमे ।
शुक्लपक्षादि नियतश्चरंश्चान्द्रायणं व्रतम् ॥
(इति मनुः ॥)

तात्पर्य यह है कि, पूर्ववत् यथोक्त रूपसे नियमों का पालन करते हुए प्रारंभ में अमावस्या के दिन उपवास करके, शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के दिन एक ग्रास भोजन करे, एवं प्रत्येक दिन एक एक ग्रास बढ़ाकर, पूर्णिमा के दिन पन्द्रह ग्रास भोजन करे और कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से प्रत्येक दिन एक एक ग्रास घटाकर चतुर्दशी के दिन एक ग्रास भोजन करके अमावस्या के दिन उपवास करने को, यवमध्य चान्द्रायण कहते हैं ।

## अथ यति चान्द्रायणम्

अष्टावष्टौ समश्नीयात् पिण्डान्मध्यं दिने स्थिते ।
नियतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणंचरन् ॥

तात्पर्य यह है कि—यति चान्द्रायणकारी संयतचित्त मानव, यथोक्त रूप से जपध्यानादि नियमों का पालन पूर्वक पूर्णिमा के दिन से प्रारंभ करके आगामी पूर्णिमा पर्यन्त, अथवा अमावस्या के दिन से प्रारंभ करके आगामी अमावस्या

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पर्यन्त एकतीस दिन मध्याह्न काल में प्रत्येक दिन आठ आठ ग्रास करके हविष्यान्न भोजन करे।

## अथ शिशु चान्द्रायणम्

चतुरःप्रातरश्नीयात् पिण्डान् विप्रः समाहितः।
चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं स्मृतम्॥
(इति मनुः)

तात्पर्य यह है कि—समाहित चित्त द्विजगण, पूर्वोक्त यतिचान्द्रायणव्रत् जप ध्यानादि नियमों का पालनपूर्वक, प्रातः संध्योपासना समापनान्तर, चार ग्रास, एवं सायं संध्योपासना समापनान्तर चारु ग्रास भोजन करे इसे शिशु-चान्द्रायण कहते हैं॥ इति मनु॥

## व्रतों में पालन योग्य नियम

महाव्याहृतिभिर्होमः कर्त्तव्यः स्वयमन्वहम्।
अहिंसा सत्यमक्रोधमार्जवं च समाचरेत्॥

तात्पर्य यह है कि, "भूर्भुवः स्वः" इन महाव्याहृतियों से स्वयं ही नित्यप्रति हवन करे एवं अहिंसा, सत्य अक्रोध और आर्जवादियों का आचरण करे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



त्रिरहस्त्रि निशायां च सवासा जल माविशेत् ।
स्त्रीशूद्रपतितांश्चैव नाभिभाषेत कर्हिचित् ॥

अर्थात् तीन बार दिन में एवं रात में भी तीन बार जल में प्रवेश करे; तात्पर्य यह है कि दिन के पूर्वाह्न आठ बजे, और मध्याह्न बारह बजे तथा अपराह्न चार बजे, एवं रात्रि के भी पूर्व रात्रि आठ बजे, और मध्य रात्रि बारह बजे तथा शेष रात्रि चार बजे जल में प्रवेशपूर्वक डुबकी लगाकर स्नान करे। अपिच व्रत काल के बीच में कभी भी स्त्री एवं शूद्र तथा पतितादियों के सहित भाषण न करे।

स्थानासनाभ्यांविहरे—दशक्तोऽधः शयीतवा ।
ब्रह्मचारी व्रतीच स्याद्गुरुदेवद्विजार्चकः ॥

तात्पर्य यह है कि दिन में या रात में नींद आनेपर शयन न करके, तपस्या के आसन में ही, दंडायमानादि जिस-किसी प्रकार की स्थिति एवं शिरसासनादि जिस किसी प्रकार के आसन द्वारा कालयापन वा काल व्यतीत करे; और यदि अत्यंत अशक्त वा असमर्थ होवे तो तपस्याके आसन से नीचे भूमि पर शयन करे। अपिच ब्रह्मचारी तथा व्रती, गुरुदेव, देवता, एवं पूज्य द्विजों का पूजन करे।

सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः ।
सर्वेष्वेव व्रतेष्वेवं प्रायश्चित्तार्थ—मादृतः ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तात्पर्य यह है कि प्रत्येक दिन यथाशक्ति पापतापहारी श्री श्री भगवान का ध्यान, मोक्षशास्त्र का स्वाध्याय, एवं पवित्र सावित्री आदि मंत्रों का जप करे । प्रायश्चित्तार्थ एवं तपस्वियों का कायशोषणाद्यर्थ चान्द्रायण प्राजापत्यादि समस्त व्रतों में ही यह नियम आदरणीय है ।। इति मनु ।।

सर्वग्रास प्रमाणमास्याविकारेणचरुभैक्ष्य, शक्तुकणयावक पयोदधिघृत मूल फलोदकानि हवींष्युत्तरोत्तरं प्रशस्तानि ।।

पौर्णमास्यां पंचदशग्रासान्भुक्त्वैकापचयेनापर पक्षमश्नीयात्, अमावस्यायामुपोष्यैको पचयेन पूर्वपक्षं, विपरीति मेकेषाम्" इतिगौतम ।।

२–सन्तोषो नाम यदृच्छालाभ सन्तुष्टिः ।

तात्पर्य यह है कि, अनुकूल अथवा रुचिकर अन्न वस्त्रादियों की तृष्णा रहित होकर देहरक्षा के लिये भगवदिच्छा वा प्रारब्धवशतः जो कुछ मिल जाय उसी में ही सर्वदा प्रसन्न रहने को सन्तोष कहते हैं ।

३—आस्तिक्यं नाम वेदोक्त धर्माधर्मेषु विश्वासः ।।

तात्पर्य यह है कि —वेदवर्णित धर्माधर्म में विश्वास को ही आस्तिक्य कहते हैं ।



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



४—दानं नामन्यायार्जितस्य धनधान्यादेः श्रद्धयार्थिभ्यः प्रदानम् ॥

तात्पर्य यह है कि न्यायार्जित धनधान्यादियों का श्रद्धा के सहित योग्यपात्र को प्रदान करने को दान कहते हैं।

५—ईश्वर पूजनं नाम प्रसन्न स्वभावेन यथा शक्ति विष्णु रुद्रादि पूजनम्।

तात्पर्य यह है कि प्रसन्न चित्त से शास्त्रीय विधि अनुसार यथाशक्ति विष्णु रुद्रादियों का पूजन करने को ईश्वरपूजन कहते हैं।

६—सिद्धान्त श्रवणं नाम वेदान्तार्थ विचारः ॥

तात्पर्य यह है कि भलीभाँति वेदान्तार्थ विचार करने को सिद्धान्त श्रवण कहते हैं।

७—ह्रीर्नाम वेद लौकिक मार्गकुत्सितकर्मणि लज्जा ॥

तात्पर्य यह है कि वैदिक तथा लौकिक मार्गीय कुत्सित वा नीच कर्म में लज्जा ही ह्री नाम से अभिहित होती है।

८—मतिर्नाम वेद विहित कर्म मार्गेषु श्रद्धा ॥

तात्पर्य यह है कि वेदविहित कर्म मार्ग में श्रद्धा वा प्रवृत्ति ही मति नाम से अभिहित होती है।

९—जपो नाम विधिवद् गुरूपदिष्ट वेदाविरुद्ध मंत्राभ्यासः ॥

तद् द्विविधं वाचिकं मानसंचेति। मान संतु मनसा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ध्यान युक्तम्। वाचिकं द्विविधमुच्चैरूपांशुभेदेन। उच्चैरुच्चारणं यथोक्त फलम्। उपांशु सहस्रगुणम्। मानसं कोटि गुणम्।

तात्पर्य यह है कि—यथाविधि गुरूपदिष्ट वेदाविरुद्ध मंत्राभ्यास को जप कहते हैं। वह जप मानस और वाचिक भेद से द्विविध है। यथा—मंत्र प्रतिपाद्य देवता का स्वरूप चिंतनपूर्वक अथवा कहो ध्यानपूर्वक जप करने को मानस-जप कहते हैं। अपर वाचिक जप पुनः द्विविध है। यथा—एक तो उपांशु अर्थात् अति धीरे धीरे जिह्वा एवं ओष्ठ संचालनपूर्वक अव्यक्त रूप से पुनः पुनः मंत्रोच्चारण करने को उपांशु नामक वाचिक जप कहते हैं। अपर उच्च स्वर से मंत्रोच्चारण करने को कीर्तनाख्य वाचिक जप कहते हैं। कीर्तनाख्य जप का यथोक्त फल, तथा उपांशु का सहस्र गुण, अपिच मानस जप का कोटिगुण फल है।

१०—व्रत नाम वेदोक्त विधिनिषेधानुष्ठाननैयत्यम् ॥

तात्पर्य यह है कि वेदनिषिद्ध कर्म न करने में तथा वेदविहित कर्मों का अनुष्ठान वा आचरण में नियतत्त्व वा नियमबद्धता को व्रत कहते हैं।

॥ इति दशविध नियम समाप्त ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



३—अथ तृतीय योगांग आसन यथा :—

१—जानूर्वोरन्तरेसम्यक् कृत्वा पादतलेउभे ।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत् प्रचक्षते ॥

तात्पर्य यह है कि जानु एवं उरु के वीच में दोनों पादतलों को भलीभाँति संस्थापन करके अपिच दोनों हाथों को जानुद्वय के ऊपर संस्थापन करके, ऋजुकाय अर्थात् सीधा देह तथा समाहितचित्त होकर वैठने को स्वस्तिकासन कहते हैं ।

२—सव्ये दक्षिणगुल्फंतु पृष्ठ पार्श्वे नियोजयेत् ।
दक्षिणेऽपि तथा सव्यं गोमुखं गोमुखं यथा ॥

तात्पर्य यह है कि —वामदिशा के पृष्ठ पार्श्व में दक्षिण गुल्फ को, तथा दक्षिण दिशा के पृष्ठ पार्श्व में वाम गुल्फ को गोमुखवत् संस्थापन करके ऋजुकाय होकर वैठने को गोमुख आसन कहते हैं ।

३—योनिं वामेन संपीड्य मेढ्रादुपरि दक्षिणम् ।
भ्रूमध्ये च मनो लक्ष्यं सिद्धासनमिदंभवेत् ॥

तात्पर्य यह है कि वामपाद की एड़ी से योनि स्थान को भलीभाँति दवाकर, मेढ्र से ऊपर दक्षिण एड़ी को संस्थापन करके, अपिच दोनों हाथों को जानुद्वय के ऊपर संस्थापन करके, ऋजुकाय तथा एकाग्र चित्त होकर भ्रूमध्य में अथवा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कहो भ्रूदेशान्तर्गत आज्ञाचक्र में मनोलक्ष्य को अवलोकन करने को सिद्धासन कहते हैं। यह सिद्धासन शांडिल्योपनिषदुक्त है।

## त्रिशिखि ब्राह्मणोपनिषदुक्त प्रकारान्तर सिद्धासन यथा :—

**योनिं वामेन संपीड्य मेढ्रादुपरि दक्षिणम्।**
**ऋजुकायः समासीनः सिद्धासनमुदीरितम्।**

तात्पर्य यह है कि—वाम पाद की एड़ी से योनि स्थान को भलीभाँति दबाकर, मेढ्र से ऊपर दक्षिण एड़ी को संस्थापन करके अपिच दोनों हाथों को जानुद्वय के ऊपर संस्थापन करके ऋजुकाय तथा समाहित चित्त होकर बैठने को सिद्धासन कहते हैं।

इस सिद्धासन में भ्रूमध्य में मनोलक्ष्य अवलोकन करने की बात नहीं है इसलिये ही मैंने स्वकीय व्याख्या में समाहित शब्द का प्रयोग किया है। क्योंकि व्याधि विनाशक अति कष्टसाध्य मयूरासनादि भिन्न भजनोपयोगी समस्त आसनाभ्यास काल में ही, लक्ष्य वस्तु में मनोनिबद्ध करना अति आवश्यक है। कारण आसनसिद्धि अर्थात् देहस्थिर एवं मनःस्थिर परस्पर सहायक हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



४—ऊर्वोरुपरि वैधत्ते यदा पाद तले उभे।
पद्मासनं भवेदेतत् सर्वेषामपि पूजितम्।

तात्पर्य यह है कि दोनों उरू के ऊपर पादतलद्वय भली-भाँति धारणपूर्वक, तदुपरि एक करतल के ऊपर द्वितीय करतल को संस्थापन करके, ऋजुकाय तथा समाहित चित्त होकर बैठने को सर्वपूजित पद्मासन कहते हैं।

५—पद्मासनं सुसंस्थाप्य पादांगुष्ठ द्वयं पुनः।
व्युत्क्रमेणैव हस्ताभ्यां बद्ध पद्मासनं भवेत्॥

तात्पर्य यह है कि—पद्मासन संस्थापित करके विपरीत क्रम से उभय हस्तांगुलि द्वारा दोनों पादों के अंगुष्ठद्वय को भलीभाँति पकड़ के बैठने को बद्ध पद्मासन कहते हैं।

६—अवष्टभ्य धरां सम्यक् तलाभ्यांतु कर द्वयोः।
हस्तयोः कूर्परौचापि स्थापयेन्नाभि पार्श्वयोः।
समुन्नत शिरः पादो दंडवद् व्योम्नि संस्थितः।
मयूरासनमेतत्तु सर्व व्याधि विषापहम्॥[1]॥

तात्पर्य यह है कि—दोनों हस्ततलों द्वारा सम्यक् रूप

---

[1]टि०—सर्व पापप्रणाशनम्। शरीरांतर्गताः सर्वे रोगा विनश्यन्ते। विषाणि जीर्यन्ते

इतिपाठान्तरम्।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



से धरा को अवलंवन करके तथा कोहनीद्वय को नाभि के दोनों पार्श्वों में संस्थापन करके अपिच शिर एवं पादद्वय को भलीभाँति ऊँचा उठाकर, दंडवत् शून्य में, अवस्थित रहने को सर्वव्याधि तथा विषदोष विनाशक मयूरासन कहते हैं।

७—प्रसार्य भुवि पादौतु दोर्भ्यामंगुष्ठ मादरात्। जानूपरि ललाटंतु पश्चिमंतान मुच्यते॥

तात्पर्य यह है कि भूमि वा आसनोपरिपादद्वय को सीधा प्रसारित करके उभय हस्तांगुलि द्वारा दोनों पादांगुष्ठों को भलीभाँति पकड़ के शिर को झुकाकर जानुद्वय के ऊपर ललाट संस्थापन करके, अवस्थित रहने को पश्चिमतान आसन कहते हैं।

८—वस्त्र द्वारा इडुरी वा वीड़ा वनाकर, तदुपरि मस्तक संस्थापन करके यथाविधि अंगुलि निवद्ध उभय हस्ततल द्वारा शिर पृष्ठ भाग भलीभाँति पकड़ के पादद्वय को ऊर्ध्व दिशा में उत्तोलन करके सीधा रूप से ऊर्ध्वपाद, अधः शिर होकर अवस्थित रहनेको शिरसासन कहते हैं।

किसी किसी स्थल में यह शिरसासन ही विपरीत करणी नाम से अभिहित हुआ है तद् यथा :—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अधः शिरश्चोर्ध्वपादो विपरीतेनयास्थितिः ।
करणी विपरीताख्या सर्वव्याधि विनाशिनी ॥

तात्पर्य यह है कि—विपरीत क्रम से अधः शिर एवं ऊर्ध्वपाद होकर जो अवस्थित है उसे सर्वव्याधि विनाशिनी विपरीतकरणी कहते हैं ।

नित्यमभ्यास युक्तस्य जाठराग्नि विवर्धनी ।
आहारो बहुलस्तस्य संपाद्यः साधकस्यच ।
अल्पाहारो यदिभवेदग्निर्देहं हरेत् क्षणात् ॥

तात्पर्य यह है कि जठराग्नि विवर्धनी विपरीतकरणी, नित्यप्रति अभ्यासनिरत साधक का बहुभोजन पचाने की सामर्थ्य संपादन करके क्रमशः देह शोधन करती है । परंतु अभ्यास प्रभाव से जठराग्नि अत्यधिक प्रवर्धित होते हुए भी यदि अल्पाहार होवे तो वह प्रचंड अग्नि पचन योग्य द्रव्याभाव निवन्धन अल्पकाल के बीच में ही रस रक्तादियों को जलाकर देहक्षय करती है ।

अधः शिरश्चोर्ध्वं पादः क्षणं स्यात् प्रथमे दिने ।
क्षणाच्च किंचिदधिकमभ्यसेत्तु दिने दिने ॥

तात्पर्य यह कि—प्रथम दिन में क्षणमात्र अर्थात् अति अल्प काल मात्र अधःशिर एवं ऊर्ध्वपाद होकर अवस्थित रहे । तदन्तर स्वकीय शक्ति अनुसार प्रत्येक दिन गत

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



दिवस की अपेक्षा कुछ बढ़ाकर क्रम से विवर्धित अधिक काल पर्यन्त नित्यप्रति अभ्यास करे।

वली च फलितं चैव षण्मासो ध्वनिदृश्यते।
याम मात्रं तु यो नित्यमभ्यसेत् स तुकाल जित्॥
इति योगतत्त्वोपनिषत्॥

तात्पर्य यह है कि यथाविधि छे महीने अभ्यास करने के पश्चात् वलीपलित अर्थात् चर्म सिकुड़न तथा अकाल केशपक्वतादि देखने में नहीं आते हैं। एवं जो मानव विधिपूर्वक नित्यप्रति एक प्रहर काल अभ्यास करता है वह शीघ्र ही ज्ञान योगाभ्यास द्वारा जीवन्मुक्त होकर मृत्यु को अतिक्रम करता है अर्थात् प्रारब्ध भोगावसान काल में विदेहमुक्ति लाभ करता है। अथवा कहो सर्वोपाधि विनिर्मुक्त शुद्ध ब्रह्म में ही विलीन होता है।

यहाँ पर वक्तव्य यह है कि विविध ग्रंथों में और भी अनेक प्रकार के आसन वर्णित हुए हैं। परंतु मेरे विचार से, मुमुक्षुओं को भजन के लिये स्वस्तिकासन, सिद्धासन और पद्मासन ये तीन आसन ही श्रेयस्कर तथा पर्याप्त हैं। एवं व्याधि आदि निवृत्ति के लिये, पश्चिमतान आसन, मयूरासन, अपिच शिरसासन ये तीन आसन ही श्रेयस्कर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तथा पर्याप्त हैं। तथापि गोमुख आसन और वद्ध पद्मासन, वर्तमान काल में भी प्रचलित हैं। इस हेतु ही, मैंने इन दोनों आसनों का भी स्वरूप वर्णन किया है। अपर विशेष वक्तव्य यह है कि कोई यदि भजनोपयोगी पद्मासन, सिद्धासन, अथवा स्वस्तिकासन करने में भी असमर्थ होवे तो जिस किसी आसन में बैठने का अभ्यास हो, उसी आसन ही में ऋजुकाय होकर बैठ के श्री श्री भगवान में मनोनिवद्ध करने का प्रयत्न करे। अथवा कहो कि—यथाविधि जप, ध्यानादि अवलंवनतया क्रमशः समाहित वा समाधिस्थ होने का प्रयत्न करे।

इति आसन समाप्त

## चतुर्थ योगांग प्राणायाम।

प्राणायाम अभ्यासियों का प्राण संचरण मार्ग संवंधी प्रधान-प्रधान नाड़ियों का अपिच योगाभ्यास का उपयोगी मठादियों का साधारण ज्ञान रहना आवश्यक समझकर, यहाँ पर संक्षेपतः कुछ वर्णन किया जाता है। तद् यथा :—

देहमानं स्वांगुलिभिः षण्णवत्यं गुलायतम्।
प्राणः शरीरादधिको द्वादशांगुल मानतः॥

भाषार्थ—साधारणतया देह का परिमाण निज-निज

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अँगुलियों के माप से, छियानवे अंगुलि दीर्घ है'। एवं प्राण साधारणतया शरीर की अपेक्षा वारह अंगुलि अधिक परिमाण विस्तृत है।

कन्द स्थानं मनुष्याणां देह मध्यं नवांगुलम्।
************************
तस्योर्ध्वे कुंडली स्थानं नाभेस्तिर्यगधोर्ध्वतः ॥

भावार्थ—मनुष्यों का नवांगुलि विस्तृत देह मध्य को कन्द स्थान कहते हैं। एवं तदूर्ध्व में नाभिका इधर उधर ऊर्ध्व एवं अधोदेश में, सर्पवत् कुंडली भावापन्न कुंडलिनी शक्ति का वासस्थान है।

अपानाद्द्व्यंगुला दूर्ध्वमधोमेढ्रस्य तावता।
देहमध्यं मनुष्याणां००००००००० ॥

भावार्थ—गुदा से द्वि अंगुलि ऊर्ध्व एवं मेढ्र से द्वि अंगुलि अधःस्थान मनुष्यों का देह मध्य है।

इति त्रिशिखि ब्राह्मणोपनिषत्।

अथ नाड़ी वर्णन यथा :—

इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, सरस्वती, वारुणी, सौम्या, पूषा, हस्तिजिह्वा, यशस्विनी, कुहू, शंखिनी, पयस्विनी अलंबुसा, गान्धारी, शुभा, कौशिकी, ये सोलह प्रधान प्रधान नाड़ियाँ कन्दस्थानतः समुत्थिता वा समुत्पन्ना होकर अथवा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कहो कन्द से प्रारंभ करके ऊर्ध्वाधो दिशा में विस्तृत होकर देह के सोलह स्थान पर्यन्त अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र नेत्रद्वय, दोनों नासिकारन्ध्र, उभयकर्ण कुहर जिह्वा मुखद्वार नाभिरन्ध्र, मलमूत्र द्वार एवं उभय हस्तान्त भाग, अपिच दोनों पादान्त भाग पर्यन्त भली भाँति विस्तृत हुई हैं[1] और इन नाड़ियों से शाखा प्रशाखा रूप में, स्थूल सूक्ष्म असंख्य नाड़ियाँ निःसृत होकर, देह के सर्वत्र ही भलीभाँति विस्तृत हुई हैं, जैसा अश्वत्थादि पत्र, स्थूल सूक्ष्म शिरासमूह द्वारा व्याप्त है। तद्वत् शरीर भी स्थूल सूक्ष्म नाड़ीसमूह द्वारा व्याप्त व पूर्ण है। प्राणपंचक अर्थात् प्राण, अपान समान, उदान, व्यान। एवं उपप्राणपंचक अर्थात् नाग कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनंजय यह दशविध वायु उपरोक्त नाड़ीसमूह में विचरण करते हैं।[1]

---

[1] टि०—यहाँ पर वक्तव्य यह है कि—त्रिशिखि ब्राह्मणोपनिषद् में अति संक्षेपतः दस संख्यक प्रधान नाड़ियाँ वर्णित हुई हैं। एवं शांडिल्योपनिषद् में संक्षेपतः चतुर्दश प्रधान नाड़ियाँ वर्णित हुई हैं। परन्तु मैंने दोनों उपनिषद् वर्णित मुख्य नाड़ियों को भली भांति मिलाकर निर्विरोध रूप से सोलह नाड़ियों का प्रधानत्व वर्णन किया है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अधुना इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना इन तीन नाड़ियों के विषय में कुछ विशेष रूप से वर्णन किया जाता है। यथा:—

कन्दमध्योत्थितानाड़ी सुषुम्ना सुप्रतिष्ठिता।
पद्मसूत्रप्रतीकाशा ऋजुरूर्ध्वं प्रवर्तिनी॥

ब्रह्मणोविवरं यावद्विद्युदाभास नालकम्।
वैष्णवी ब्रह्म नाड़ी च निर्वाणप्राप्ति पद्धतिः॥

भाषार्थ—पद्मसूत्र के जैसा सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से प्रतीयमाना विद्युत् वा विजलीवत् उज्ज्वल नालात्मिका, मेरुदंड को अवलंबन पूर्वक ऋजुभाव से ऊर्ध्वप्रवर्तिनी वा ऊर्ध्वगा वैष्णवी (विष्णुना सृष्टा वैष्णवीतेन कीर्तिता) ब्रह्मनाड़ी, अपिच निर्वाणपद्धति अर्थात् मोक्षमार्ग इति नाम से भी अभिहिता सुषुम्ना नाड़ी, कन्दमध्य से समुत्थिता होकर अथवा कहो कन्दमध्य से प्रारंभ करके ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त सुप्रतिष्ठिता है। कैवल्य मोक्षाधिकार प्राप्त सगुण ब्रह्म सुषुम्ना नाड़ी में प्रविष्ट होकर उपाधि विनिर्मुक्त निर्गुण ब्रह्मत्व वा मोक्ष प्राप्त होता है। इस हेतु सुषुम्ना को ब्रह्मनाड़ी तथा मोक्षमार्ग कहते हैं।

इड़ा च पिंगला चैव तस्याः सव्येतरे स्थिते।
इड़ा समुत्थिता कन्दाद्वाम नासा पुटावधि॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पिंगला चोत्थिता तस्माद्दक्ष नासा पुटावधि ।
**********

भाषार्थ—पूर्वोक्त सुषुम्ना नाड़ी के वाम पार्श्व में इड़ा नाड़ी, एवं दक्षिण पार्श्व में पिंगला नाड़ी सुप्रतिष्ठित हैं। अपिच इड़ा नाड़ी कन्द से उत्थित होकर वाम नासारन्ध्र पर्यन्त भलीभाँति विस्तृत हैं। एवं पिंगला नाड़ी भी उस कन्द से समुत्थित होकर दक्षिण नासारन्ध्र पर्यन्त सुविस्तृत हैं। इति त्रिशिखि ब्राह्मणोपनिषत्।

"इड़ायां चन्द्रश्चरति। पिंगलायां रविः"।

अर्थात्—इड़ा नाड़ी में चन्द्रमा, एवं पिंगला में रवि विचरण करते हैं। "तावेव सर्वकालं धत्ते" अर्थात् इड़ा पिंगला ही सब के काल को वा मृत्यु को धारण वा पोषण करते हैं।

"सुषुम्ना काल भोक्त्री भवति"

अर्थात् सुषुम्ना नाड़ी कालभोक्त्री वा कालभक्षण-कारिणी है।

उपरोक्त दोनों श्रुति वाक्यों का तात्पर्य यह है कि इड़ा पिंगला में प्रविष्ट प्राणारूढ़ जीवात्मा की मृत्यु होती है। परन्तु मोक्षमार्गाख्य सुषुम्ना में प्रविष्ट जीवात्मा की मृत्यु न होकर कैवल्य मुक्तिलाभ होता है। इति शांडिल्योप-निषत्॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अधुना योगाभ्यास का उपयोगी मठादि के विषय में कुछ वर्णन किया जाता है। यथा :—

यम नियमयुतः पुरुषः सर्व संगविवर्जितः कृतविद्यः सत्य धर्मरतो जित क्रोधो गुरु शुश्रुषा निरतःपितृ मातृविधेय स्वाश्रमोक्त सदाचार विद्वच्छिक्षितः फलमूलोदकान्वितं तपोवनं प्राप्य, रम्य देशे ब्रह्मघोष समन्विते स्वधर्म निरत ब्रह्मवित्समावृते फल मूल पुष्प वारिभिः सुसंपूर्णे देवायतने नदीतीरे ग्रामे नगरे वापि सुशोभनमठं नात्युच्च नीचायत मल्पद्वारं गोमयादि लिप्तं सर्वरक्षा समन्वितं कृत्वा तत्र वेदान्त श्रवणं कुर्वन्योगं समारभेत्।

भाषार्थ—यम नियम संपन्न सर्वसंग विवर्जित वा परित्यक्त कृतविद्य वा शास्त्रज्ञ सत्यधर्म निरत, जित क्रोध पितृ मातृ आज्ञा पालनकारी, तथा गुरु सुश्रूषा परायण स्वकीय आश्रमोक्त सदाचार संपन्न अपिच योगविद् गुरुपदेश प्राप्त पुरुष फलमूलजलान्वित और वेदध्वनि समन्वित अपिच स्वधर्म निरत ब्रह्मज्ञ समावृत वा परिपूर्ण तपोवन प्राप्त होकर, तत्र वेदान्त श्रवण करते हुए यथाविधि योगाभ्यास प्रारंभ करे। एवं तपोवन का अभाव होने पर पूर्वोक्त साधन संपन्न मानव, फलमूल पुष्प जल द्वारा सुसंपूर्ण देवायतन में, अर्थात् ज्ञानसंचार अथवा ज्ञानलाभ संबंधी देवस्थानान्त-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



र्गत योगाभ्यास उपयोगी किसी तपोकुटीर में यथाविधि योगाभ्यास प्रारंभ करे । अथवा निर्जन तथा पवित्र और उपद्रव रहित नदी तट ग्राम किंवा नगर समीपस्थ किसी रमणीय स्थान में मंडप कूप वेदी वा चबूतरा प्रभृति समन्वित और फाटकान्वित प्राचीर संवेष्टित अपिच अधिक ऊँचा तथा अधिक लंबा चौड़ा न हो अर्थात् पंचहस्त परिमित तथा अल्प द्वार विशिष्ट और गोमयादि द्वारा प्रलिप्त अति सुन्दर तपोकुटीर निर्माण करके, पूर्वोक्त साधन संपन्न मानव, तत्र यथाविधि योगाभ्यास प्रारंभ करे । इति ।

शांडिल्योपनिषत् ॥

अन्यदपि

पवित्रे निर्जने देशे शर्करादि विवर्जिते ।
सुशोभनं मठंकुर्यात् सूक्ष्म द्वारं तु निर्व्रणम् ॥
सुष्ठुलिप्तं गोमयेन सुधया वा प्रयत्नतः ।
मत्कुणैर्मशकैर्लूतैर्वर्जितं च प्रयत्नतः ॥
दिने दिने च संमृष्टं संमार्जन्या विशेषतः ।
वासितं च सुगन्धेन धूपितं गुग्गुलादिभिः
॥ इति योग तत्वोपनिषत् ॥

**********

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भाषार्थ--धूलि वालू आदि विवर्जित निर्जन तथा पवित्र देश में ऊँचा नीचा तथा छिद्रादि रहित और सूक्ष्म द्वारान्वित अति सुन्दर तपोकुटीर निर्माण करे। एवं लेपन योग्य गोमय मृत्तिकादि द्वारा भलीभाँति लेपन तथा चिकनाई करके, तैलयुक्त पदार्थ द्वारा रंजित करे। और यथायोग्य प्रयत्नपूर्वक मकड़ी, खटमल, मक्खी, मच्छर, छिपकली प्रभृति समस्त प्राणी विवर्जित एवं प्रत्येक दिन विशेष रूप से अति उत्तम मार्जनी द्वारा कुटीर निर्मल अपिच सुगन्ध द्रव्य विशिष्ट गुग्गुलादि धूप द्वारा धूपित और सुगन्धित करे।.....॥

अथ प्रथम योगाभ्यास कालीन आहार विहार संबन्धी नियम यथा :—

योग विघ्नकराहारं वर्जयेद्योग वित्तमः।
लवणं सर्षपं चाम्लमुष्णं रूक्षं च तीक्ष्णकम्॥
शाकजातं रामठादि वह्निस्त्री पथ सेवनम्।
प्रेतिः स्नानोपवासादि कायक्लेशांश्चवर्जयेत्॥
अभ्यासकाले प्रथमं शस्तंक्षीराज्य भोजनम्।
गोधूम मुद्गशाल्यन्नं योग वृद्धि करंविदुः॥
इति योग तत्वोपनिषत्॥



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भाषार्थ—योगवित् श्रेष्ठ पुरुष, लवण, सर्षप, अम्ल, उष्ण, रूक्ष, एवं तीक्ष्ण पदार्थ, और शाकसमूह तथा हींग, इत्यादि योगविघ्नकारक आहार वर्जन करे। तथा अग्नि, स्त्री, पथसेवन, प्रातःस्नान, उपवास, एवं कायक्लेश प्रभृति वर्जन करे। तथाच प्रथमाभ्यास काल में, गौका दुग्ध घृत सेवन करना श्रेयस्कर है। गेहूँ, मूँग, शाल्यन्न अर्थात् वासमती आदि उत्तम चावल योगवृद्धिकारक हैं।

अथ प्राणायाम यथा :—

"प्राणश्च देहगोवायुरायामः कुभंकः स्मृतः"।

अर्थात् देहान्तर्गत वायु ही प्राणसंज्ञा से अभिहित हुआ है। एवं उसका आयाम ही अर्थात् उस प्राण का निरोध ही कुंभक नाम से अभिहित हुआ है। "स एव द्विविधः प्रोक्तः सहितः केवलस्तथा"।

भाषार्थ—पूर्वोक्त कुंभक ही सहितकुंभक और केवल-कुंभक ये द्विविध नाम से अभिहित हुआ है॥ "यावत्-केवल सिद्धिः स्यात्तावत् सहितमभ्यसेत्।"

भाषार्थ—जबतक सहितकुंभकाभ्यास प्रभाव से केवल-कुंभक सिद्धि हो, तावत् कालपर्यन्त सहितकुंभक का अभ्यास करे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सूर्योज्जायी शीतलीच भस्त्रीचैवचतुर्थिका भेदैरेव समं-कुंभोयः स्यात् सहितकुंभकः ॥

भाषार्थ—भेदविशिष्टरेचक पूरक सहित सूर्योभेद, उज्जायी, शीतली एवं भस्त्रिका प्रभृति नाम से प्रसिद्ध जो सकलकुंभक है, उसे सहितकुंभक कहते हैं।

इति योग कुंडल्युपनिषत् ॥

नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिन कुशोत्तरम्।
तत्रोपविश्य मेधावी पद्मासन समन्वितः ॥
ऋजुकायः प्रांजलिश्च प्रणमेदिष्ट देवताम् ॥

भाषार्थ—पूर्वोक्त साधन संपन्न मेधाविशिष्ट मानव काष्ठनिर्मित चौकी के ऊपर, अधिक ऊँचा न हो, और अधिक नीचा भी न हो, इस प्रकार से पहिले कुश एवं कुश के ऊपर मृगचर्म तथा मृगचर्म के ऊपर कोमल वस्त्र विछा-कर, तिस आसनोपरि पद्मासन में उपवेशन करके, ऋजुकाय तथा कृतांजलि होकर, योगविघ्न निवारणार्थ पहिले प्रार्थना पूर्वक ईष्ट देवता को सभक्ति प्रणाम करे।

ततो दक्षिण हस्तस्य अंगुष्ठेनैव पिंगलाम्।
निरुध्यपूरयेद्वायुमिड़यातु शनैः शनैः ॥

भाषार्थ—तदनन्तर दक्षिण हस्त के अंगुष्ठ द्वारा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पिंगला को निरोध करके, इड़ा नाड़ी द्वारा धीरे धीरे वायु पूरण करे।

यथा शक्त्यविरोधेन ततः कुर्याच्चकुंभकम्।
पुनस्त्यजेत् पिंगलया शनैरेव न वेगतः॥

भाषार्थ—पूरकानन्तर मात्रा नियम के अविरोध से यथाशक्ति कुंभक करे। एवं कुंभकान्तर वेग से वायु त्याग न करके विधिपूर्वक धीरे धीरे पिंगला द्वारा पुनः वायु को परित्याग करे। अर्थात् रेचक करे।

पुनः पिंगलयापूर्य पूरयेदुदरं शनैः।
धारयित्वा यथाशक्ति रेचयेदिड़या शनैः॥

भाषार्थ—फिर पिंगला द्वारा धीरे धीरे वायु आकर्षण करके उदर पूर्ण करे, एवं यथाशक्ति धारण करके अर्थात् कुंभक करके, इड़ा नाड़ी द्वारा धीरे धीरे रेचक करे।

ययात्यजेत्तयापूर्य धारयेदविरोधतः॥

भाषार्थ—जिस नाड़ी द्वारा वायु परित्याग किया है उससे ही पुनः धीरे धीरे वायु आपूरण करके, मात्रा नियमाविरुद्धतया वायु धारण वा कुंभक करे।

जानु प्रदक्षिणी कृत्य न द्रुतं न विलंबितम्।
अंगुलि स्फोटनं कुर्यात् सा मात्रा परिगीयते॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भाषार्थ—शीघ्र भी नहीं और विलंबित भी नहीं ऐसी मध्यम चाल से जानु प्रदक्षिण करके चुटकी बजाने में जितना समय लगता है उतने परिमित काल को मात्रा कहते हैं।

इड़यावायुमापूर्य शनैः षोड़श मात्रया।
कुंभयेत्पूरितं पश्चात् चतुः षष्ठ्या तु मात्रया॥
रेचयेत् पिंगला नाड्या द्वा त्रिंशन्मात्रया पुनः।
पुनः पिंगलया पूर्य पूर्ववत् सुसमाहितः॥

भाषार्थ—सोलह मात्रा से इड़ा नाड़ी द्वारा वायु को आपूरण करके, चौंसठ मात्रा से आपूरित वायु को निरोध करे, फिर बत्तीस मात्रा से पिंगला नाड़ी द्वारा धीरे धीरे रेचक करे। एवं (बीच में विश्राम न करके) रेचकानन्तर पुनः पिंगला नाड़ी द्वारा वायु आपूरण करके, भली भाँति समाहित होकर, पूर्ववत् यथाविधि कुंभक तथा रेचक करे।

प्रातर्मध्यं दिने सायमर्धरात्रे च कुंभकान्।
शनैरशीति पर्यन्तं चतुर्वारं समभ्यसेत्॥

भाषार्थ—प्रातःकाल में, मध्याह्नकाल में, सायंकाल में, तथा अर्धरात्रि में, धीरे धीरे बढ़ाकर अस्सी पर्यन्त कुंभक प्रत्येक दिन चार बार करके भली भाँति अभ्यास करे।

एवं मासत्रयाभ्यासान्नाड़ी शुद्धिस्ततो भवेत्॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भाषार्थ—इस प्रकार से तीन महीने तक प्राणायाम योगाभ्यास करने से नाड़ी शुद्धि होती है।

ततः परं यथेष्टं तु शक्तः स्याद्वायु धारणे।
यथेष्ट धारणाद्वायोः सिध्येत् केवलकुंभकः॥

भाषार्थ—नाड़ी शुद्धि के अनन्तर साधक यथेष्ट परिमाण वायु धारण करने में समर्थ होता है। एवं यथेष्ट परिमाण वायु धारण से केवल कुंभक सिद्ध होता है।

केवले कुंभके सिद्धे रेचपूर विवर्जिते।
न तस्य दुर्लभं किंचित् त्रिषु लोकेषु विद्यते॥

भाषार्थ—रेचक पूरक विवर्जित केवल कुंभक सिद्ध होने पर, तिसको तीनों लोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

## इति योगतत्त्वोपनिषत्

अधुना पूर्वोक्त कुंभक चतुष्टय का स्वरूपादि वर्णन किया जाता है। यथा :—

## अथ सूर्य भेद कुंभक :—

दक्ष नाड्या समापूर्य वहिष्कं पवनं शनैः।
यथेष्टं कुंभयेत् प्राणं रेचयेदड़या ततः॥
चतुष्कं वातदोषं तु कृमि दोषं निहन्ति च।
पुनः पुनरिदं कार्यं सूर्य भेद मुदाहृतम्॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भाषार्थ—पिंगला नाड़ी द्वारा वहिस्थ वायु को आपूरण करके स्वकीय शक्ति अनुसार यथेष्ट काल पर्यन्त आपूरित प्राण को निरोध करे, एवं कुंभकानन्तर इड़ा नाड़ी द्वारा धीरे धीरे रेचक करे। चतुर्विध वातरोग तथा कृमिरोग-विनाशक यह सूर्य भेदाख्य कुंभक यथाविधि पुनः पुनः अनुष्ठेय हैं।

## अथ उज्जायी कुंभक :—

मुखं संयम्य नाड़ीभ्यामाकृष्य पवनं शनैः।
यथा लगति कंठात्तु हृदयावधि सस्वनम्॥
पूर्ववत् कुंभयेत्प्राणं रेचयेदिड़या ततः।
शीर्षोदिता नल हरं गर्ल श्लेष्म हरं परम्॥
सर्वरोग हरं पुण्यं देहानल विवर्धनम्।
नाड़ी जलोदरं धातु गत दोष विनाशकम्॥
गच्छतस्तिष्ठतः कार्यमुज्जायाख्यं तु कुंभकम्॥

भाषार्थ—मुख द्वार निवद्ध करके, इड़ा पिंगला दोनों नाड़ी द्वारा, जिस प्रकार प्रयत्न से शब्द के सहित वायु, कंठ से हृदयावधि संलग्न होता है, तिस प्रकार प्रयत्न से वायु आकर्षण करके पूर्ववत् कुंभक करे एवं कुंभकानन्तर इड़ा नाड़ी द्वारा धीरे धीरे वायु को रेचन करे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



"परं पुण्यं" अर्थात् परम पुण्यस्वरूप, देहाग्नि विवर्धक, शिरोदित पित्तविकार तथा धातुगतदोष विनाशक, अपिच गलश्लेष्म, नाड़ी, जलोदर, इत्यादि बहुत रोगसंहारक, उज्जायीकुंभक जो केवल यथाविधि स्थित होके ही करणीय है ऐसा नहीं, यह तो तपोमंदिर संबंधी पुष्पवाटिका में धीरे धीरे गमन करते हुए भी करणीय है।

## अथ शीतली कुंभक :—

जिह्वया वायुमाकृष्य पूर्ववत् कुंभकादनु।
शनैस्तु घ्राणरन्ध्राभ्यांरेचयेदनिलं सुधीः॥
गुल्म प्लीहादिकान् दोषान् क्षयं पित्तं ज्वरं तृषाम्।
विषाणि शीतली नाम कुंभकोयं निहन्तिच॥

भाषार्थ—बुद्धिमान मानव जिह्वा द्वारा वायु आकर्षण करके, पूर्ववत् कुंभक करे। एवं कुंभकानन्तर दोनों नासारन्ध्र द्वारा धीरे धीरे वायु को रेचन करे। जब तक परिश्रान्त न हो तब तक यथाविधि पुनः पुनः पूरक कुंभक तथा रेचक करे। यह शीतलीकुंभक गुल्म, तिल्ली, क्षय, पित्तरोग, ज्वर, पिपासा एवं विषदोष विनाशक है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अथ भस्त्रिका कुंभक यथा :—

ततः पद्मासनं बद्ध्वा समग्रीवोदरः सुधीः ।
मुखं संयम्य यत्नेन प्राणं घ्राणेन रेचयेत् ॥
यथा लगति कंठात्तु कपाले सस्वनं ततः ।
वेगेन पूरयेत् किंचिद् हृत्पद्मावधिमारुतम् ॥
पुनर्विरेचयेत्तद्वत् पूरयेच्च पुनः पुनः ।
यथैव लोहकाराणां भस्त्रावेगेन चाल्यते ॥
तथैव स्वशरीरस्थं चालयेत् पवनं शनैः ।
यदाश्रमोभवेद्देहे तदा सूर्येन पूरयेत् ॥
धारयन्नासिका मध्यं तर्जनीभ्यां विनादृढ़म् ।
कुंभकं पूर्ववत् कृत्वा रेचयेदिड़यानिलम् ॥
यथोदरं भवेत् पूर्णं पवनेन तथा लघु ।
कंठोत्थितानल हरं शरीराग्नि विवर्धनम् ॥
कुंडली बोधकं पुण्यं पापघ्नं शुभदं सुखम् ।
ब्रह्मनाड़ी मुखान्तस्थ कफाद्यर्गल नाशनम् ॥
गुणत्रय समुद्भूत ग्रंथित्रय विभेदकम् ।
विशेषेणैव कर्तव्यं भस्त्राख्यं कुंभकंत्विदम् ॥

भाषार्थ—तदनन्तर बुद्धिमान व्यक्ति पद्मासन बाँध

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



के, समग्रीवोदर होकर, मुखद्वार निवद्ध करके, जिस प्रकार प्रयत्न द्वारा शब्द के सहित प्राणवायु कंठ से कपाल में संलग्न होता है, उस प्रकार प्रयत्नपूर्वक नासारन्ध्र से वायु को रेचन करे। तदनन्तर किंचित वेग के सहित हृत्पद्मावधि प्राणवायु को पूरण करे। एवं पूरणानन्तर यथाविधि रेचन करे। यथा लोहारों की भस्त्रा द्वारा वेग के सहित वायु संचालित होता है, तथा एव देहस्थ प्राण वायु को धीरे धीरे संचालन करे एवं पुनः पुनः रेचन पूरण करते करते यदा देह परिश्रान्त होवे, तदा सूर्य नाड़ी द्वारा वायु पूरण करे। एवं तर्जनी विना अंगुलि द्वारा नासिका मध्य भलीभाँति धारण करते हुए पूर्ववत् कुंभक करके, इड़ा नाड़ी द्वारा धीरे धीरे वायु को रेचन करे। क्रमशः अधिकतर वायु द्वारा जैसा जैसा उदर पूर्ण होगा, तैसा तैसा ही देह की लघुता सिद्धि होगी।

कंठोत्थित पित्तशमनकारक, देहाग्निविवर्धक, कुंडलिनी शक्तिवोधक, पापविनाशक, शुभदायक, पुण्य तथा सुखविवर्धक, ब्रह्मनाड़ी मुखान्तस्थ कफाद्यर्गल विनाशक अपिच गुणत्रय समुद्भूत ग्रंथि त्रयविभेदक, यह भस्त्राख्य कुंभक विशेष रूप से ही करणीय है।

चतुर्णामपिभेदानां कुंभके समुपस्थिते।
बन्धत्रय मिदं कार्यं योगिभिर्वीत कल्मषैः॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भाषार्थ—शुद्ध चेता प्राणायाम योगाभ्यासियों का, पूर्वोक्त चार प्रकार के भेद विशिष्ट कुंभक समुपस्थित होने पर, मूलवन्ध, जालन्धरवन्ध, उड्डियाणवन्ध, ये तीनों प्रकार के वन्ध अवश्य करणीय हैं।

"तेषां लक्षण मुच्यते"

भाषार्थ—तिस वन्धनत्रय का स्वरूप वर्णन किया जाता है। यथा :—

अधोगति मपानं वै ऊर्ध्वगं॰कुरुते वलात्।
आकुंचनेन तद्देशं मूलवन्धोऽयमुच्यते॥

भावार्थ—जहाँ अपान वायु का निवास है, तिस देश को भलीभाँति आकुंचनपूर्वक, अपिच मानसिक शक्ति से अधोगामी अपान वायु को ऊर्ध्वगामी करने को ही मूल-वन्ध कहते हैं।

अपाने चोर्ध्वगे याते संप्राप्ते वह्नि मंडले।
ततोऽनलशिखा दीर्घा वर्धते वायुनाहता॥

भावार्थ—मूलवन्धानुष्ठान द्वारा ऊर्ध्वगामी अपान वायु, वह्नि मंडल प्राप्त होने से देहस्थ अग्निशिखा दीर्घा होकर परिवर्धिता होती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ततो यातौ वह्न्यमानौ प्राणमुष्ण स्वरूपकम् ।
तेनात्यन्त प्रदीप्तेन देह गोज्वलनेन तु ॥

ततः कुंडलिनी सुप्ता संतप्ता संप्रबुध्यते ।
दंडाहत भुजंगीव निःश्वस्य ऋजुतां व्रजेत् ॥
यथा गते
विल प्रवेशतो विष्ट ब्रह्मनाड्यन्तरं मन्य ।
तस्मान्नित्यं मूल वन्धः कर्तव्योयोगिभिः सदा ॥
स्वा

भावार्थ—तथा च विवर्धित अग्निशिखा ऊर्ध्वोत्थिता होने के कारण, वह्निमान अपान तथा प्राणवायु उष्णता को प्राप्त होते हैं। अपिच अत्यन्त विवर्धित तिस देहाग्नि से, प्रसुप्ता कुंडलिनी शक्ति अति संतप्ता होकर प्रवोध प्राप्त वा जागरिता होती है। तदनन्तर जैसा विल के समीप विराजमाना कुंडली भावापन्न सर्पिणी, दंडाहत होकर निःश्वास ले के विल में प्रवेश करते हुए ऋजुता को प्राप्त होती है। तथा ही ब्रह्मनाड़ी के समीप में विराजमाना सर्पिणीवत् कुंडली भावापन्ना मोक्षमार्गनिवद्धकारिणी प्रसुप्ताकुंडलिनी शक्ति भी, यथाविधि प्राणायाम से विवर्धित देहाग्नि संताप से प्रबुद्धा वा जागरिता होकर, ब्रह्मनाड़ी के विल में प्रवेश करते हुए ऋजुता प्राप्त होने के कारण मोक्षमार्ग पूर्णरूप से ही खुल जाता है। अतएव प्राणायाम योगाभ्यासी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



योगियों को सदा ही प्राणायाम करने के समय पर, मूलवन्ध, तथा जालन्धरवन्ध, अपिच उड्डियाणवन्ध यथाविधि अवश्य करणीय है।

पूरकान्ते तु कर्तव्यो वन्धो जालन्धराभिधः।
कंठ संकोच रूपोऽसौ वायुमार्ग निरोधकः॥

भावार्थ—पूरक के अन्त में भलीभाँति कंठसंकोचनरूप जालन्धरवन्ध करने से वायु मार्ग निरोध होता है। अतएव वायुमार्ग निरोधक यह वन्ध अवश्य करणीय है।

कुंभकान्ते रेचकादौ कर्तव्यस्तूड्डियाणकः।

भाषार्थ—कुंभक के अन्त में एवं रेचक के आदि में यथाविधि उड्डियाणवन्ध करना उचित है।

"उदरे पश्चिमे ताने बन्धः स्यादुड्डियाणकः"

भावार्थ—मेरुदंड की ओर भलीभाँति उदर खींचने को उड्डियानवन्ध कहते हैं।

अधस्तात् कुंचनेनाशु कंठसंकोचने कृते।
अन्तेपश्चिमतानेनस्थात्प्राणोब्रह्मनाड़िगः॥

भावार्थ—प्राणायाम प्रारंभ काल में सर्वप्रथम श्वास परित्याग के सहित अपान स्थान आकुंचन रूप मूलवन्ध

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



द्वारा, नीचे से अपान वायु को ऊर्ध्व में उठाकर, यथाविधि पूरक करे। एवं पूरक के अन्त में कंठ संकोचन रूप जालन्धर-बन्ध करने के अनन्तर यथाविधि कुंभक करे। अपिच कुंभक के अन्त में उड्डियानबन्ध करके, तदनन्तर यथाविधि रेचक करे। ऐसा करने से प्राणवायु यथासंभव शीघ्र ही ब्रह्मनाड़ी में प्रवेश करता है।

इति योग कुंडल्युपनिषत् ॥

वक्त्रेण सीत्कार पूर्वकं वायुं ग्रहीत्वा यथा शक्ति कुंभयित्वा नासाभ्यां रेचयेत्। एतेन क्षुत्तृष्णालस्य निद्रा न जायते।

भाषार्थ—मुख से सीत्कारपूर्वक अर्थात् सीटी के जैसा सशब्द वायु ग्रहण करके, तथाच यथा शक्ति कुंभक करके, दोनों नासारन्ध्र द्वारा धीरे धीरे वायु को रेचन करे। इससे क्षुधा तृष्णा आलस्य एवं निद्रा अपसरण होते हैं।

इति शांडिल्योपनिषत् ॥

अधुना पूरक, कुंभक, तथा रेचक काल में सृष्टि स्थिति प्रलयकर्त्ता श्री श्री भगवान देवत्रय का अर्थात् ब्रह्मा विष्णु महेश्वर का ध्यान विधिवर्णन किया जाता है। यथा :—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पूरकेण विचिन्तयेन्नाभिस्थं कमलासनम् ।
ब्रह्माणं रक्त गौराभं स्रष्टारन्तु चतुर्भुजम् ॥[1]

भाषार्थ—नाभिचक्र स्थित लोहित शुक्ल मिश्रित उज्वल वर्ण विशिष्ट चतुर्भुज कमलासन सृष्टिकर्त्ता श्री श्री भगवान ब्रह्मा जी को पूरक प्राणायाम के सहित ध्यान अथवा चिंतन करे।

अतसी पुष्प संकाशं हृदि स्थाने प्रतिष्ठितम् ।
चतुर्भुजं महाविष्णुं कुंभकेन विचिन्तयेत् ॥

भाषार्थ—हृदय कमल में सुप्रतिष्ठित अतसी कुसुम तुल्य उज्जवल वर्ण विशिष्ठ चतुर्भुज पालनकर्त्ता श्री श्री भगवान विष्णु को कुंभक प्राणायाम के सहित ध्यान अथवा चिंतन करे।

रेचकेन तु विद्यात्मा ललाटस्थं त्रिलोचनम् ।
शुद्धस्फटिक संकाशं निष्कलं पाप नाशनम् ॥

भाषार्थ—ललाटस्थ द्विदल कमल में सुप्रतिष्ठित विशुद्ध स्फटिक तुल्य उज्वल वर्ण विशिष्ट निःशेष पाप

---

[1] स्रष्टारन्तु चतुर्भुजमित्यत्र चतुर्वक्त्रं पितामहमिति पाठान्तरं दृश्यते ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पुण्यादि कार्य के सहित अविद्या उपाधि विनाशक विद्यात्मा अर्थात् चिद्रूप अथवा ज्ञानस्वरूप त्रिलोचनाख्य प्रलयकर्त्ता श्री श्री भगवान महेश्वर को रेचक प्राणायाम के सहित ध्यान अथवा चिंतन करे।

इति ध्यानविन्दूपनिषत्।

प्रातर्मध्यन्दिने सायमर्धे रात्रेच कुंभकान्।
शनैरशीति पर्यन्तं चतुर्वारं समभ्यसेत्॥

भाषार्थ—प्रातःकाल में, मध्याह्नकाल में, सायंकाल में, तथा अर्धरात्रि में, धीरे धीरे बढ़ाकर अस्सी वार पर्यन्त कुंभक, पूर्वोक्त प्रकार से भलीभाँति अभ्यास करे।

जलेन श्रमजातेन गात्र मर्दन माचरेत्।

अर्थात् श्रमजात पसीना द्वारा देहमर्दन करे।

यथेष्ट धारणाद्वायोरनलस्य प्रदीपनम्।
नादाभिव्यक्तिरारोग्यं जायते नाड़ी शोधनात्॥

भाषार्थ—यथेष्ठ परिमाण वायुधारणवशतः नाड़ीशुद्धि होने से, अग्नि प्रदीपन और नादाभिव्यक्ति, तथा आरोग्यलाभ होता है।

विधिवत् प्राणसंयामैर्नाड़ी चक्र विशोधिते।
सुषुम्ना वदनं भित्त्वा सुखाद्विशति मारुतः॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भाषार्थ—विधिवत् प्राणायाम द्वारा नाड़ीचक्र विशुद्ध होने पर, प्राणवायु सुषुम्ना द्वारभेदन करके सुखपूर्वक भीतर में प्रवेश करता है।

"मारुते मध्यसंचारे मनः स्थैर्य प्रजायते"।

भाषार्थ—सुषुम्ना नाड़ी के भीतर में प्राणवायु प्रवेश करने से मनःस्थिर होता है।

इति शांडिल्योपनिषत्।

अधुना योग विघ्न वर्णन किया जाता है। यथा :—

दिवा सुप्तिर्निशायांतु जागरादति मैथुनात्।
बहुसंक्रमणं नित्यं रोधान्मूत्र पूरिषयोः॥
विषमाशन दोषाच्च प्रयास प्राण चिन्तनात्।
शीघ्र मुत्पद्यंते रोगः स्तंभयेद्यदि संयमी॥

भाषार्थ—प्राणायाम योगाभ्यासी व्यक्ति यदि शास्त्र-विधि उल्लघंनपूर्वक प्राणस्तंभन वा निरोध करे तो वक्ष्यमाण कारणों से, अर्थात् दिवा निद्रा से, तथा रात्रिजागरण से, अति मैथुन करने से, नित्यप्रति अतिरिक्त पथ पर्यटन तथा मलमूत्र के वेग धारण करने से, एवं योगविघ्नकारक द्रव्य भोजन करने से तथा योगविवर्धक वस्तु भी अपरिमित रूप से भोजन



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



करने से, अथवा कहो कि अति अल्प किंवा अधिक परिमाण में भोजन करने से अपिच अतिरिक्त शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम करने से शीघ्र ही नानाविध रोगोत्पत्ति होती है।

योगाभ्यासेन मेरोग उत्पन्न इति कथ्यते।
ततो ऽभ्यासं त्यजेदेवं प्रथमं विघ्न मुच्यते ॥
द्वितीयं संशयाख्यं च तृतीयं च प्रमत्तता।
आलस्याख्यं चतुर्थं च निद्रारूपंतु पंचमम् ॥
षष्ठंतु विरतिर्भ्रांतिः सप्तमं परिकीर्त्तितम्।
विषमं चाष्टमं चैव अनाख्यं नवमं स्मृतम् ॥
अलब्धियोंग तत्त्वस्य दशमं प्रोच्यतेबुधैः।
इत्येतद्विघ्नदशकं विचारेण त्यजेद्बुधः ॥

भाषार्थ—रोगोत्पत्ति के अनन्तर प्राणायाम योगाभ्यास को परित्याग करता है। एवं अविचारतः ऐसा कहता है कि, योगाभ्यास से मेरा रोगोत्पन्न हुआ है। इसे ही प्रथम विघ्न कहते हैं। एवं योगसिद्धि विषयक संशय को द्वितीय विघ्न, अपिच प्रमत्तता को अर्थात् मनोयोग राहित्य तथा उद्यम हीनता को तृतीय और आलस्य को चतुर्थ, अपिच अनियमित वा अपरिमित निद्रा को पंचम, तथा विरति को अर्थात् बीच

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



बीच में अथवा प्रत्येक रेचक के अन्त में श्वास लेकर विश्राम करने को षष्ठ, और भ्रांति को सप्तम विघ्न कहते हैं अपिच विषम को अर्थात् शास्त्रोक्त पूरक कुंभक तथा रेचक संबंधीय मात्रा की विषमता को अष्टम, तथा साधारणतया निर्द्दिष्ट काल के बीच में अभीष्ट योगतत्त्व का अनुभव न होने के कारण निराश हो के योगाभ्यास परित्याग करने को नवम विघ्न, अपिच यहाँ पर कहने में जो अवशेष रह गया है उसे बुधगण दशम विघ्न कहते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति भलीभाँति विचारपूर्वक इस दशविधविघ्न को परित्याग करे।

इति कृष्णयजुर्वेदीय योग कुंडल्युपनिषत्।

अपरंच

प्राणायामेन सिद्धेन सर्व व्याधि क्षयोभवेत्।
अयुक्ताभ्यास योगेन सर्वव्याधि समुद्भवः॥

भाषार्थ—प्राणायाम सिद्धि से सर्वविध व्याधि विनाश प्राप्त होती है। परन्तु अयुक्ताभ्यास योग से अर्थात् शास्त्रीय विधि उल्लंघनपूर्वक प्राणायाम योगाभ्यास से सर्वविध व्याधि समुत्पत्ति होती है। अतएव यहाँ पर विशेष वक्तव्य यह है कि प्राणायाम संबंधी उल्लिखित पूर्वापर संपूर्ण वाक्यों के

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ऊपर भलीभाँति विचारपूर्वक यथाविधि प्राणायाम योगाभ्यास करे।

अपर यहाँ पर यह भी ज्ञापन किया जाता है कि वर्तमान काल में श्रुतिमूलक पातंजलदर्शन अपेक्षाकृत अधिक प्रचारित होने के कारण तदुक्त अष्टांग योग वर्णित हुआ है। परंतु उपनिषदुक्त यम नियम आसन तथा प्राणायामों का श्रेष्ठतमत्व विज्ञात होकर यह भी वर्णन किया गया है। किंतु प्रत्याहार धारणा ध्यान तथा समाधियों का स्वरूप इसी परिच्छेद में पातंजलदर्शनोक्त योगांगवर्णन काल में उत्तम रूप से ही वर्णित हुआ है। इस कारण से श्रुतिवर्णित प्रत्याहारादि योगाङ्गों का वर्णन नहीं किया गया है।

इति भक्तियोग तथा नवम परिच्छेद समाप्त।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



# दशम परिच्छेद

## विषय ज्ञानयोग

जैसा सृष्टि स्थिति प्रलयकर्ता अपिच भोगापवर्गदाता मायोपाधि विशिष्ट प्रतिबिंब चैतन्यस्वरूप सगुणब्रह्म श्री श्री भगवान में ही मनोनिवद्ध करने को भक्तियोग कहते हैं। वैसा ही सर्वसंगविरहित बिंबचैतन्यस्वरूप निर्गुण ब्रह्म में ही मनोनिवद्ध करने को ज्ञानयोग कहते हैं।

तात्पर्य यह है कि—नाम रूपात्मक जगदाकाराकारिकान्तःकरणवृत्ति को निरोध करके, तैलधारावत् अविच्छिन्नतया ज्ञानात्मक ब्रह्माकाराकारिकान्तःकरण वृत्तिप्रवाह का उदय करने को ज्ञानयोग कहते हैं।

विश्वहितैषिणी श्रुति भगवती ने भी कहा है कि—

यत्तुचित्तस्य सततमर्थे श्रेयसि बन्धनम्।
ज्ञानयोगः स विज्ञेयः सर्वसिद्धिकरः शिवः॥

भाषार्थ—"श्रेयसि अर्थे" अर्थात् ज्ञानस्वरूप निर्गुण ब्रह्म में ही जो चित्त का निरंतर बन्धन है, वही ज्ञानयोग नाम से अभिहित होता है। इस ज्ञानयोग से सर्वसिद्धिकारक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अखंडाद्वितीय सच्चिदानन्दस्वरूप निर्गुणब्रह्म अप्रतिबद्धकर अपरोक्षतया विज्ञेय है।

तात्पर्य यह है कि—सर्वविध नाम रूपात्मक जगदाकाराकारिकान्तःकरण वृत्ति को निरोध करके, ज्ञानस्वरूप निर्गुणब्रह्म में ही निरंतर चित्त निबद्ध करने को अर्थात् तैलधारावत् अविच्छिन्नतया ब्रह्माकाराकारिकान्तःकरण वृत्ति प्रवाह का उदय करने को ज्ञानयोग कहते हैं। इस ज्ञानयोग से आवरण को हटाकर, सर्वसिद्धिकारक ब्रह्म अप्रतिबद्ध अपरोक्षतया विज्ञेय है।

इति त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषत् ॥

## अथ आत्म पूजन का षोड़श उपचार वर्णन यथाः—

( १ )

"तस्य निश्चिन्ताध्यानम्" अर्थात् ज्ञानयोगाभ्यासी अथवा कहो कि—पराभक्त वा आत्मपूजक का वैषयिक चिन्ता रहित ही ध्यान है।

( २ )

"सर्वकर्म निराकरणभावाहनम्" अर्थात् बन्धन के

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हेतुभूत सर्वकर्मों का निराकरण करना वा नहीं करना ही आवाहन है।

( ३ )

"निश्चयज्ञानमासनम्" अर्थात् मैं ही अखंडाद्वितीय सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म हूँ, इत्याकार निश्चयात्मक ज्ञान ही आसन है।

( ४ )

"उन्मनीभावः पाद्यम्" अर्थात् मिथ्याभूत नाम रूपादि समस्त विषयों में उदासीनता ही पाद्य है।

( ५ )

"अमनस्कमर्घ्यम्" अर्थात् मन का स्वरूप नाश ही अर्घ्य है, अथवा कहो कि—अन्तःकरण वृत्ति का (सबीज रूप से) ब्रह्म में विलीन होना ही अर्घ्य है।

( ६ )

"सदा दीप्तिः परामृतवृत्तिः स्नानम्" अर्थात् सदा प्रकाशस्वरूप ब्रह्माकारकारिकान्तःकरण वृत्ति ही स्नान है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



( ७ )

"सर्वत्रात्मभावनागन्धः" अर्थात् मिथ्याभूत नाम रूप को पृथक करके, सकल वस्तु में ब्रह्म भावना ही गन्ध है।

( ८ )

"दृकस्वरूपावस्थानमक्षताः" अर्थात् द्रष्टा स्वरूप में अवस्थान ही अक्षत है।

( ९ )

"चिदाप्तिः पुष्पम्" अर्थात् आत्मसाक्षात्कार ही पुष्प है।

( १० )

"चिदग्निस्वरूपं धूपः" अर्थात् चिदग्निस्वरूप प्रतिबिंब चैतन्य ही धूप है।

( ११ )

"चिदादित्यस्वरूपंदीपः" अर्थात् चिदादित्यस्वरूपबिंब-चैतन्यही दीपक है।

१२

"परिपूर्णचन्द्रामृतरसस्यैकीकरणं नैवेद्यम्" अर्थात् जीवात्मा परमात्मा का एकीकरण ही नैवेद्य है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



( १३ )

"निश्चलत्वं प्रदक्षिणम्" अर्थात् निश्चलत्व ही प्रदक्षिण है।

( १४ )

"सोहंभावो नमस्कारः" अर्थात् वह ब्रह्म मैं ही हूँ, इत्याकार भाव ही नमस्कार है।

( १५ )

"मौनं स्तुतिः" अर्थात् मौनता ही स्तुति है।

( १६ )

"सर्वसंतोषो विसर्ज्जनम्" अर्थात् निरावरण ब्रह्मानन्द का अनुभव ही विसर्ज्जन है।

इति शुक्लयजुर्वेदीयमंडल ब्राह्मणोपनिषत् ॥

अथ ज्ञानयोगसंबन्धी यमनियमादि अष्टांग का स्वरूप वर्णन यथा :—

देहेन्द्रियेषु वैराग्यंयमइत्युच्यते बुधैः।
अनुरक्तिः परे तत्वे सततं नियमः स्मृतः ॥
सर्ववस्तुन्युदासीनभावमात्मनमुत्तमम्।
जगत् सर्वमिदं मिथ्या प्रतीतिः प्राणसंयमः ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



चित्तस्यांतर्मुखी भावः प्रत्याहारस्तु सत्तम ।
चित्तस्य निश्चलीभावो धारणा धारणं विदुः ।
सोऽहं चिन्मात्र मेवेति चिन्तनं ध्यान मुच्यते ।
ध्यानस्य विस्मृतिः सम्यक् समाधिरभि धीयते ॥

भाषार्थ—हे शोभन ! ज्ञानीगण देहेन्द्रियों में वैराग्य को ज्ञानयोगांगभूत यम कहते हैं । तथा परतत्त्व में निरन्तर अनुरक्ति को नियम, और सर्ववस्तु में उदासीन भाव को आसन, अपिच कार्यकारणात्मक संपूर्ण जगत् मिथ्या है इस प्रकार की प्रतीति की प्राणायाम, एवं चित्त के अंतर्मुखी भाव को प्रत्याहार; और चित्त का निश्चली भाव को धारणा; तथा वह चिन्मात्र ब्रह्म मैं ही हूँ, इस प्रकार के चिंतन को ही ध्यान कहते हैं । अपिच ध्यान की परिपक्व अवस्था में ध्यातृ ध्यान विस्मरण ही समाधि नाम से अभिहित होता है ।

इति शुक्ल यजुर्वेदीय त्रिशिखि ब्राह्मणोपनिषत् ।

## अथ विश्व हितैषिणी श्रुतिभगवतीका उपदेश यथा :—

अस्तिभाति प्रियं रूपं नामचेत्यंश पंचकम् ।
आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भाषार्थ—विचार दृष्टि से देखने से कार्यकारणात्मक जागतिक प्रत्येक वस्तु में ही, अस्ति भाति प्रिय रूप और नाम ये पाँच प्रकार के पदार्थ देखने में आते हैं। इनके बीच में आद्यत्रय अर्थात्, अस्तिभाति प्रिय ये तीनों ब्रह्म का ही स्वरूप है। और तद्भिन्न रूप और नाम ये दोनों जगत् का ही स्वरूप है।

जैसे देहअस्ति, देहभाति, देहप्रिय, अर्थात् देह की विद्यमानता, प्रकाशता तथा प्रियता ये तीनों ब्रह्म का ही स्वरूप हैं। एवं देह का रूप, और देह ये दो अक्षर विशिष्ट नाम, ये दोनों जगत् का ही स्वरूप हैं।

दृष्टान्त—हे शोभन ! अग्नि दग्ध होकर देह यदि भस्मीभूत हो जाय तो रूपनामात्मक देह तो नहीं रहेगी। परन्तु मिथ्याभूत देह विध्वंस होने पर भी, सत्य स्वरूप, अस्तिभाति प्रियात्मक ब्रह्म जो व्यापक रूप से भस्म में विद्यमान रहता है। सो तो भस्मअस्ति, भस्मभाति, भस्मप्रिय इस वाक्य—अवलंवनपूर्वक विचार करने से, संशय शून्यतया, भलीभाँति समझ में आता है। अपिच भस्म यदि काल प्राप्त होकर मृत्तिका रूप में परिणत हो जाय, तो रूपनामात्मक भस्म तो नहीं रहेगा। किंतु भस्म न रहते हूए भी, अस्ति, भाति, प्रियात्मक ब्रह्म, जो तिस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मृत्तिका में व्यापक रूप से विद्यमान रहता है, वह भी तो मृत्तिकाअस्ति, मृत्तिकाभाति, मृत्तिकाप्रिय, इस वाक्य से प्रमाणित होता है। अपिच ऐसा विचार दृष्टि से, अवलोकन करने पर कंकड़ पत्थर वालुका प्रभृति, जागतिक सकल वस्तु में ही, अस्ति, भाति, प्रिय, वा सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म जो व्यापक रूप से विद्यमान है। सो तो संशय शून्यतया, उत्तम रूप से ही समझ में आता है।

अतएव हे सुधी ! तुम "उपेक्ष्यनामरूपे द्वे सच्चिदानन्द-तत्परः" अर्थात् इन्द्रिय ग्राह्य वस्तु का रूप रसादि ग्रहण काल में भी, उपेक्षा योग्य मिथ्याभूत नाम रूप दोनों को परित्याग अथवा पृथक करके, अस्तिभाति प्रिय वा सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म परायण होकर सदा सर्वत्र ही ब्रह्मदर्शन करो।

"समाधिं सर्वदा कुर्याद् हृदये वाथवाबहिः"

भाषार्थ—हृदय में अथवा बाहर में सर्वदा समाधि का अभ्यास करो।

"सविकल्पोनिर्विकल्पः समाधिर्द्विविधोहृदि"

भाषार्थ—हृत् समाधि—सविकल्प तथा निर्विकल्प के भेद से द्विविध है।

"दृश्यशब्दानु भेदेन सविकल्पः पुनर्द्विधा"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भाषार्थ—दृश्यानुविद्ध तथा शब्दानुविद्ध के भेद से सविकल्प समाधि पुनर्द्विविध है।

कामाद्याश्चित्तगादृश्यास्तत् साक्षित्वेन चेतनम्।
ध्यायेदृश्यानुविद्धोऽयं समाधिः सविकल्पकः ॥

भाषार्थ—चित्तगत वा अन्तःकरणस्थ काम क्रोध अहंता ममतादि, दृश्यसमूह के साक्षि चैतन्य को अभिन्न रूप से ध्यान करो। अर्थात् चित्तगत, दृश्य के दृष्टा वा विज्ञाता, अथवा कहो कि साक्षि चैतन्य स्वरूप ब्रह्म मैं हूँ, इस प्रकार से आत्मध्यान करो। यह आत्मचिन्तन अथवा कहो कि ब्रह्मध्यान ही, दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि नाम से अभिहित होता है।

असंगः सच्चिदानन्दः स्वप्रभोद्वैत वर्जितः।
अस्मीति शब्द विद्धोऽयं समाधिः सविकल्पकः ॥

भाषार्थ—स्वयं प्रकाशात्मक सर्वसंग विरहित अखंडाद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म मैं हूँ, इस प्रकार से निरन्तर आत्मचिन्तन ही शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि नाम से अभिहित होता है।

स्वानुभूतिरसावेशाद् दृश्य शब्दाद्युपेक्षितुः।
निर्विकल्पः समाधिः स्यान्निवात स्थित दीपवत् ॥

भाषार्थ—जैसा निवातस्थित प्रदीपशिखा कंपनरहित

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हो के स्थिरता को प्राप्त होती है। वैसा ही आत्मानुभूति रसावेशवशतः दृश्य शब्दादि उपेक्षा वा प्रलयकर्त्ता की निर्विकल्प समाधि सिद्ध होती है।

तात्पर्य यह है कि सविकल्प समाधि काल में, ब्रह्माकार आकारिकान्तःकरण वृत्ति प्रवाह के सहित, विकल्पित दृश्य शब्दादि, अर्थात् रूप नामात्मक जगदाकार आकारिकान्तः-करण वृत्ति प्रवाह का भी उदय होता रहता है। अतएव उस काल में आत्मज्ञान के सहित विकल्पित जगद्ज्ञान विद्य-मान रहने के कारण 'उसे सविकल्प समाधि कहते हैं। परन्तु जैसा उपयुक्त आवरणाच्छादित वायुवेगशून्य देश स्थित प्रदीपशिखा कंपनरहित हो के स्थिरता वा निश्चलता को प्राप्त होती है। वैसा ही अभ्यास की परिपक्व अवस्था में, आत्मानुभूति रसावेशवशतः विकल्पित दृश्यशब्दादि अर्थात् रूप नामात्मक जगदाकार आकारिकान्तःकरणवृत्ति प्रवाह निरुद्ध वा विलीन होने के कारण; केवल ब्रह्माकार आकारि-कान्तःकरण वृत्ति प्रवाह का स्थैर्य्य वा निश्चल रूप से अर्थात् तैल धारावत् अविच्छिन्न रूप से उदय होना ही निर्विकल्प समाधि नाम से अभिहित होता है।

हृदीव वाह्यदेशेऽपि यस्मिन् कस्मिंश्च वस्तुनि।
समाधिराद्य सन्मात्रान्नाम रूप प्रथक् कृतिः॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भाषार्थ—हृदयवत् वाहर में भी विचार दृष्टि द्वारा सर्वाधिष्ठान अस्ति, भाति, प्रियात्मक ब्रह्म से नाम रूप को पृथक करते हुए जिस किसी वस्तु में अर्थात् सदा सर्वत्र ही आत्मभावना वा ब्रह्मदर्शन रूप, शब्दानुविद्ध, तथा दृश्यानुविद्ध द्विविध सविकल्प समाधि अनुष्ठेय है।

"स्तब्धी भावो रसास्वादात्तृतीयः पूर्ववन्मतः"॥

भाषार्थ—सविकल्प समाधि अभ्यास की परिपक्व अवस्था में सर्वविध जगदाकार आकारिकान्तःकरणवृत्ति प्रवाह निरुद्ध होने पर अथवा कहो कि कार्यकारणात्मक जगद्ज्ञान विलुप्त होने पर, निरावरण ब्रह्मानन्द का अनुभव हेतु स्तब्धी भाव अर्थात् जड़वत् सर्वविध चेष्टारहित होना ही वाहर की निर्विकल्प समाधि है।

"एतैः समाधिभिः षडभिर्नयेत्कालं निरन्तरम्" अर्थात् इन छै प्रकार की समाधियों से निरन्तर काल यापन करो।

इति ऋग्वेदीय सरस्वती रहस्योपनिषत्।

अथ ज्ञानयोगानुष्ठान द्वारा सिद्ध होने पर, जो सकल अपूर्व फललाभ होता है, सो संक्षेपतः यहाँ पर वर्णन किया जाता है। यथा :—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



( १ )

यथाविधि ज्ञानयोगानुष्ठान द्वारा आवरण भंग होने से, अप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है।

( २ )

मिथ्याभूत देह के सहित सत्य स्वरूप जीवात्मा का आध्यासिक तादात्म्य संबंध रूप हृद्ग्रंथि का भेदन होता है।

( ३ )

परमात्मा के सहित जीवात्मा की एकतासिद्धि वा जीवन्मुक्ति अवस्था प्राप्ति होती है। अपिच कैवल्य मुक्ति संबंधी सर्वविध संशयों का भी छेदन होता है।

( ४ )

पुनः पुनः जन्म मरणादि जनित अपार दुःख के हेतुभूत संचित आगामी कर्मों का भी प्रक्षय होता है।

( ५ )

परम शांतिलाभ का, अथवा कहो कि कैवल्य मुक्तिलाभ का साधनभूत कर्तव्य कर्म समूह, निःशेष रूप से भलीभाँति संपादित होने के कारण विदेह मुमुक्षु मानव कृतकृत्य होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



( ६ )

निरतिशय सुख, अथवा कहो कि निरावरण ब्रह्मानन्द का अनुभव होता है।

( ७ )

प्रारब्ध भोगावसान काल में उपाधि का निर्बीज रूप से प्रलय होने पर, दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति तथा नित्य निरतिशय सुखसंप्राप्ति रूप कैवल्य मुक्ति वा विदेहमुक्ति-लाभ सिद्ध होता है।

इति ज्ञानयोग, तथा दशम परिच्छेद समाप्त ॥



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



# एकादश परिच्छेद

## विषय :

आधुनिक काल के गुरु परंपरा प्राप्त भ्रम-निवृत्ति के लिये कतिपय विषयों की अति संक्षिप्त

### समालोचना

**अथ चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास ।**

आधुनिक काल के पंचदशी आदि ग्रंथकारों ने—

**मायिकोऽयं चिदाभासः श्रुतेरनुभवादपि ।**
**इन्द्र जालं जगत् प्रोक्तं तदन्तः पात्ययं यतः ॥**

"इत्यादि वाक्य द्वारा चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास को मिथ्या कहकर वर्णन किया है ।

जैसे दृश्यमान जगत् मायाकार्य होने के कारण, इसे मायिक शब्द से कहा जाता है । वैसे ही पंचदशीकार ने "मायिकोऽयं चिदाभासः" इस श्रुति वाक्य का अर्थ इस प्रकार मान लिया है कि यह चिदाभास मायिक अर्थात् माया कार्य है । और माया जो मिथ्या है, सो तो वेदवाक्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



द्वारा प्रमाणित है। अतएव मिथ्याभूत माया कार्य होने के कारण, चिदाभास का मिथ्यापन ही प्रमाणित वा सिद्ध होता है। इस भाव से भावित होकर ही, पंचदशी-कारने चिदाभास को मिथ्या कहकर वर्णन किया है। इस विषय में मेरा कहना यह है कि विचारवान विद्याधुरीण अति सुनिपुण व्यक्ति को भी भ्रम होना असंभव नहीं है। अतएव वेद वेदांतादि शास्त्रविद्वरिष्ठ आचार्य देव ने भ्रम-वशतः ही अथवा कहो कि अन्यथा भाव से भावित होकर ही चिदाभास को मिथ्या कह कर वर्णन किया है। बात यह है कि—

भूमनिन्दा प्रशंसा सु नित्य योगेऽतिशायनें।
संसर्गेऽस्ति विवक्षायां भवन्ति मतुवादयः॥

इस सूत्र से कार्य कारण संसर्गार्थ में माया शब्द के उत्तर ठन् प्रत्यय निष्पन्न, मायिक शब्द का अर्थ तो मायाकार्य ही है। परंतु :—

"अर्थात् प्रकरणल्लिंगा दौचित्याद्देश कालतः।
शब्दार्थस्तु विभज्यन्ते न रूपादेव केवलम्॥"

इस विधिवाक्य के अनुसार, 'एकाधिक अर्थ द्योतक शब्द का अभिप्राय, प्रकरण, लिंग, देश, काल अपिच औचित्य वा उपयुक्तता विचारपूर्वक, विरुद्धार्थों से पृथक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



करके अविरुद्धार्थ ग्रहण करना ही उचित है। परंतु आचार्य देव ने "मायिकोऽयं चिदाभासः" यहाँ पर मायिक शब्द का विरुद्धार्थ ग्रहण करके सत्य स्वरूप चिदाभास को मिथ्या कहकर वर्णन किया है। अतएव आधुनिक काल के प्रचलित पंचदशी आदि ग्रंथों का अध्ययन अथवा अवलोकन करके जिन लोगों की ऐसी धारणा हुई है कि, चिदाभास मिथ्या है। उन जिज्ञासुओं की, भ्रम निवृत्ति के लिये, चिदाभास अथवा चित् प्रतिबिंब जो ध्रुव सत्य है; सो यहाँ पर श्रुति प्रमाणादि के सहित वर्णन किया जाता है। यथाः—

( १ )

प्रकाश स्वरूप चित् का माया उपाधि में भासमान अल्प प्रकाश को व्यवहारतः चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास कहते हैं।

"मायिकोऽयं चिदाभास :"

इस श्रुति वाक्य का निर्विरोध अर्थ यथाः—

सिद्धांत कौमुदी के पूर्वोक्त सूत्र से ही, तादात्म्य संसर्गार्थ में, माया शब्द के उत्तर ठन् प्रत्ययनिष्पन्न मायिक शब्द

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



का अर्थ हुआ, माया के सहित तादात्म्य संसर्गान्वित। अतएव "मायिकोऽयं चिदाभासः" इसका निर्विरोध अर्थ ऐसा है कि, माया के सहित चिदाभास का तादात्म्य संबन्ध होने के कारण, यह चिदाभास माया विशिष्ट है। तात्पर्य यह है कि चित् की अपेक्षा चिदाभास में प्रकाश की अल्पता हेतु, मिथ्याभूत माया के सहित सत्य स्वरूप चिदाभास का, आध्यासिक तादात्म्य संबन्ध होने के कारण, श्रुति भगवती ने चिदाभास को, मायिक अर्थात् मायाविशिष्ट कहा है। श्रुति भगवती ने चिदाभास को मायाकार्य नहीं कहा है।

एवं अपरोक्षानुभव से भी चिदाभास की सत्यता ही प्रमाणित वा सिद्ध होती है।

( २ )

चिदाभास को मिथ्या कहने से बहु स्थलों में श्रुति वाक्य के सहित विरोध होता है। तद् यथाः—

शुद्धमीश्वर चैतन्यं जीव चैतन्यमेवच।
प्रमाता च प्रमाणं च प्रमेयं च फलं तथा॥
इति सप्त विधं प्रोक्तं भिद्यते व्यवहारतः॥
इति कृष्ण यजुर्वेदीय कठरुद्रोपनिषत्।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भाषार्थः—चैतन्य वस्तुतः एक मात्र अखंडाद्वितीय होने पर भी व्यवहारतः अथवा कहो कि व्यवहार सिद्धि के लिये, श्रुति भगवती ने, उसे सात भाग में विभक्त करके वर्णन किया है। एक तो शुद्ध चैतन्य अर्थात् सर्वोपाधि विनिर्मुक्त चैतन्य। द्वितीय ईश्वर चैतन्य, अर्थात् माया में भासमान चिदाभास अथवा चित् प्रतिबिंब चैतन्य, अथवा कहो कि मायोपाधि विशिष्ट चैतन्य। तृतीय जीवचैतन्य अर्थात् अविद्या वा अंतःकरण उपाधि विशिष्ट चैतन्य। चतुर्थ प्रमाता चैतन्य अर्थात् माया तथा अविद्या वा अंतः-करण उपाधि उपहित बिंब चैतन्य, अथवा कहो कि उपाधि संग विरहित साक्षि चैतन्य।, पंचम प्रमाण चैतन्य अर्थात् अंतःकरण वृत्तिव्यापक चैतन्य। षष्ठ-प्रमेय अर्थात् चैतन्य अविज्ञात रूप रसादि विषय व्यापक चैतन्य। सप्तमफल चैतन्य–अर्थात् विज्ञात रूप रसादि विषय व्यापक चैतन्य।

यहाँ पर भी श्रुति भगवती ने अति सुस्पष्ट रूप से ही चिदाभास को चैतन्य नाम से अभिहित किया है। अतएव श्रुति उक्त चैतन्य स्वरूप चिदाभास को मायाकार्य तथा मिथ्या कहना श्रुति विरुद्ध हेतु अनु-चित है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



## पुनश्च

"जीवो ब्रह्मैव केवलम्" "सजीवः केवलः शिवः" इत्यादि वाक्यों द्वारा अपिच तत्त्वमसि आदि महा वाक्यों द्वारा श्रुति भगवती ने चिदाभास का ब्रह्म स्वरूपत्व ही अति सुस्पष्ट रूप से द्योतन किया है। अतएव ब्रह्म स्वरूप चिदाभास को, माया कार्य तथा मिथ्या कहना श्रुति विरुद्ध-हेतु-असंगत है।

( ३ )

साक्षीस्वरूप चित् जो त्रिकालाबाध्य तथा अभोक्ता है। एवं सुखदुःखों के भोक्ता वा अनुभव कर्त्ता चिदाभास अथवा चित् प्रतिबिंब जो भोक्ता रूप से त्रिकालाबाध्य है। सो भी तो श्रुति वाक्य द्वारा प्रमाणित, अपिच अपरोक्षतया, सबका ही अनुभूत है। अतएव

४—उपाधि में भासमान आभास अथवा प्रतिबिंब, बिंब से वस्तुतः अभिन्न है। अतएव चिदाभास अथवा चित प्रतिबिंब, सत्य स्वरूप चित् से वस्तुतः अभिन्न होने के कारण से भी, चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास को मिथ्या कहना उचित नहीं है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



## शंका

दर्पणादि उपाधियों में जो बिंब रूप मुखादिकों का आभास अथवा प्रतिबिंब भासमान होता है। वह तो प्रत्यक्षतया मुखादि बिंबों से भिन्न रूप में ही देखने में आता है। अथच यहाँ पर उक्त हुआ है कि, बिंब का आभास अथवा प्रतिबिंब बिंब से वस्तुतः अभिन्न है। ऐसा कहना तो प्रत्यक्ष प्रमाण विरुद्ध है।

## समाधान

तुम्हारा वर्णित दर्पणादि उपाधियों में, भासमान बिंबरूप मुखादिकों का प्रतिबिंब, अथवा आभास, भ्रमवशतः ही मुखादि बिंबों से भिन्न रूप में प्रतीति वा बोध होता है। परन्तु विचार दृष्टि से देखने पर संशय शून्य रूप से यही जानने में आता है कि दर्पण में भासमान आभास, अथवा प्रतिबिंब के रूप वर्णादि, गोलाकार किंवा चतुष्कोण तथा उज्वल वर्णादि धर्म अथवा लक्षण विशिष्ट, दर्पण के रूप वर्णादि के तुल्य नहीं है। आभास अथवा प्रतिबिंब का रूप वर्णादि, दर्पण सम्मुखस्थ बिंब के रूप वर्णादि के तुल्य होने के कारण, उसे बिंब का ही धर्म्म अथवा स्वरूप कहना उचित है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



बात यह है कि--दर्पणादि उपाधियों में बिंब का प्रकाश भासमान होने पर उसे ही तो प्रतिबिंब अथवा आभास कहते हैं।

अस्थि चर्म मांस रक्तादि विशिष्ट, आनन के आभास, अथवा प्रतिबिंब में, यंत्रादि सर्व विध साधन अवलंबन पूर्वक ढूंढ़ने से, यत् किंचिदपि अस्थि, चर्म, मांस, रक्तादि मिलेंगे क्या ? लेशमात्र भी नहीं। कितना ही क्यों न ढूँढ़ो, एक मात्र प्रकाश भिन्न अन्य कुछ भी नहीं मिलेगा। अतएव विचार जन्य अनुभव, तथा शास्त्रीय प्रमाणादि द्वारा, यही प्रमाणित वा सिद्ध होता है कि, दर्पणादि उपाधियों में, भासमान आभास अथवा प्रतिबिंब बिंब का प्रकाश भिन्न अन्य कुछ भी नहीं हैं।

सुतरां बिंबरूप मुखादिकों का प्रकाशत्व धर्म्म अथवा कहो कि प्रकाशपन मुखादिकों से भिन्न कैसे हो सकता है ? धर्म्मी से धर्म्म का भिन्न होना तो सर्वथा असंभव है। परंतु वस्तुतः अभिन्न होने पर भी, मुखादि बिंबों से उपाधि रूप दर्पण भिन्न होने के कारण, भ्रमवशतः ही दर्पण में भासमान प्रकाश अथवा प्रतिबिंब, बिंब से भिन्न रूप में प्रतीति वा बोध होता है। किंतु आनन का प्रकाश, वस्तुतः आनन से अभिन्न है। अतएव सद्रूप

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



चित् का प्रकाश भी चित् से वस्तुतः अभिन्न होने के कारण सत्यस्वरूप चिदाभास को मिथ्या कहना उचित नहीं है।

जैसा सूर्य का प्रकाश वा किरण, सूर्य से अभिन्न है। वैसा ही चित् का प्रकाश भी चित् से तत्त्वतः अभिन्न है। वस्तुतः प्रकाश स्वरूप चिदाभास अथवा चित् प्रतिबिंब तो प्रकाशात्मक चित् का ही स्वरूप है। सत्य वा मिथ्या जो कोई भी वस्तु ही क्यों न हो, अपने स्वरूप से भिन्न होना तो सर्वथा असंभव है। अतएव चित् से, वस्तुतः अभिन्न होने के कारण, तथा सुख दुःखों के भोक्तारूप से त्रिकालाबाध्यहेतु, चिदाभास अथवा चित् प्रतिबिंब जो ध्रुव सत्य है। यही वेद वाक्य अपिच विचार जन्य अनुभूति द्वारा निर्णीत सिद्धांत की बात है। प्रसंग समाप्ति काल में वक्तव्य यह है कि, गुरु परंपरा प्राप्त भ्रमवशतः, चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास को, माया कार्य मान के मिथ्या समझ कर, मोक्षसिद्धि न होने का दोषारोपण करके अर्थात् जिसका ज्ञान लाभ हुआ है, प्रारब्ध भोगावसान काल में, उपाधिनाश के सहित चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास का तो अवश्य ही विनाश होगा। फिर मुक्ति होगी किस की ? अतएव मोक्ष सिद्धि न होने के कारण, चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास को जीव कहना उचित नहीं है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इत्यादि प्रकार से, आधुनिक काल के प्रचलित सिद्धांत-लेश नामक ग्रंथ में जो दोषारोपण किया है। चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास की सत्यता प्रमाण से वह दोषारोपण भी निरस्त अथवा निवारित हुआ है।

इति चिदाभास की समालोचना समाप्त ।

## अथ अंतःकरण वृत्ति

आधुनिक काल के गुरु परंपरा प्राप्त भ्रमवशतः विद्वज्जनगण हृदय में भी अति प्रगाढ़ रूप से यह भाव अथवा संस्कार निबद्ध हुआ है कि, मनो बुद्धि, चित्त, अहंकार, इन वृत्ति चतुष्टय से अतिरिक्त अंतकरण वृत्ति नामक कोई वृत्ति विशेष नहीं है। अर्थात् अंतःकरण वृत्ति चार ही हैं, पाँच नहीं। परन्तु गुरु परंपरा प्राप्त विद्वन्मंडली हृदयगत यह संस्कार जो श्रुति और युक्ति अपिच अनुभव से विरुद्ध होने के कारण भ्रांतिमूलक है, सो यहाँ पर प्रमाण के सहित प्रकाशन पूर्वक, अति संक्षेपतः निर्विरोध अर्थ का वर्णन किया जाता है। यथाः—

( १ )

"सतेषां सत्त्व समष्टितः पंच क्रिया वृत्यात्मक मंतः करणमसृजत्"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भाषार्थ—शुद्ध सत्त्वगुण प्रधाना प्रकृति वा मायोपाधि विशिष्ट परमेश्वर ने, पंचभूतों का समष्टि सत्त्वगुणों से पंचक्रिया वृत्तिरूप, अंतःकरण का सृजन किया है।

"अंतःकरण मनोबुद्धि चित्ताहंकाराः पंच वृत्तयः"

भाषार्थ—अंतःकरण, मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार ये पाँच वृत्तियाँ हैं।

"संकल्प निश्चय स्मरणाभिमानानुसंधानास्तद्विषयाः।"

भाषार्थ—वस्तु के स्वरूपानुसंधान पूर्वक तदाकारता प्राप्त होना ही अंतःकरण वृत्ति का विषय अर्थात् व्यापार अथवा कार्य है ॥१॥

संकल्प विकल्प ही, अथवा कहो कि संशयात्मक मनन करना ही अर्थात् आगे जो देखने में आता है, वह घोड़ा है अथवा गधा है। इस प्रकार से दो कोटियों का ज्ञान ही मनोवृत्ति का व्यापार है ॥२॥

निःसंदेह तया निश्चय करना ही बुद्धिवृत्ति का व्यापार है ॥३॥

पूर्वानुभूत विषय का स्मरण करना ही चित्तवृत्ति का व्यापार है ॥४॥

स्वकीय देह में एवं देह संबन्धी पिता, माता, पुत्र, कन्या,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



धनादि वस्तु समूह में अहंता ममता रूप अभिमान करना ही अहंकार वृत्ति का व्यापार है ॥५॥

शुक्ल यजुर्वेदीय पैंगलोपनिषद में उपरोक्त प्रकार से प्रत्येक वृत्ति का पृथक् पृथक् कार्य के सहित अति सुस्पष्ट रूप से ही पंच संख्यक अंतःकरण वृत्तियाँ वर्णित हुई हैं। अतएव मनोबुद्धि चित्त और अहंकार इन वृत्ति चतुष्टय से अतिरिक्त अंतःकरण वृत्ति नामक कोई वृत्ति विशेष नहीं है। ऐसा कहना श्रुति विरुद्ध हेतु असंगत है।

( २ )

पंचभूतों के समष्टि रजोगुणों से प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान यह प्राण पंचक उत्पन्न हुए हैं। सुतरां पंच भूतों का समष्टि सत्त्वगुणों से अंतःकरण, मनो बुद्धि, चित्त और अहंकार यह अंतःकरण पंचक उत्पन्न न होकर, अंतःकरण चतुष्टय उत्पन्न होने का कुछ भी कारण नहीं है। वरंच विचारपूर्वक ऐसा कहा जा सकता है कि, पंच-भूतों का सम्मिलित पंच संख्यक सत्त्वगुणों से, चार वृत्तियों का उत्पन्न होना, अयुक्ति युक्त वा असंभव है। अतएव श्रुति और युक्ति तथा अनुमान प्रमाण से भी यही प्रमाणित वा सिद्ध होता है कि, प्राण पंचकवत् अंतःकरण वृत्ति भी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पंचक है। चतुष्टय नहीं। सुतरां यही कहना पड़ेगा कि विद्वन्मंडली हृदयगत अंतःकरण वृत्ति चतुष्टय के संस्कार भ्रांतिमूलक हैं।

( ३ )

सर्व व्यापक आत्मतत्त्व जो आवरण द्वारा आच्छादित है। एवं निरावरण आत्मतत्त्व ही जो वस्तु समूह का प्रकाशक है। सो तो विचारवान किसी का भी अस्वीकार्य नहीं है। क्योंकि आवृत आत्मा यदि वस्तु समूह का प्रकाशक होता; तब तो सर्व साधारण का ही युगपत् सकल वस्तु का साक्षात्कार होता; परंतु ऐसा नहीं होता है। बात यह है कि अंतःकरण वृत्ति, यदा जिस वस्तु के स्वरूपानुसंधान पूर्वक, तदाकारता प्राप्त होती है। तदा तिस वस्तु व्यापक चैतन्य के सहित, अंतःकरण वृत्ति व्यापक चैतन्य का अभिन्न भावापन्न होने के कारण, प्रकाशाधिक्य हेतु, आवरण भंग होने पर, निरावरणचैतन्य, तद् वस्तु को प्रकाशित करता है। अथवा कहो कि, तद् वस्तु का साक्षात्कार होता है। अंतःकरण वृत्ति के तदाकारता बिना आवरण भंग नहीं होता है। तथा आवरण भंग बिना किसी वस्तु का भी साक्षात्कार नहीं होता है। अथच

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सर्वदा ही जो किसी न किसी वस्तु का साक्षात्कार हो रहा है। सो भी तो प्रत्यक्षतया सब का ही अनुभूत है। अतएव मनो बुद्धि चित्त और अहंकार इस वृत्ति चतुष्टय से अतिरिक्त अंतःकरण वृत्ति नामक कोई वृत्ति विशेष नहीं है। यह वचन युक्ति, तथा प्रत्यक्ष अनुमान आगम सर्वविधि प्रमाण विरुद्ध है।

अधुना भिन्न भिन्न स्थलों का विभिन्न संख्योक्त अंतः-करण वृत्ति का निर्विरोध अर्थ वर्णन किया जाता है। यथाः—

पैंगलोपनिषद् के द्वितीय अध्याय में "सतेषां सत्त्व समष्टितः पंचक्रिया वृत्त्यात्मक मंतःकरणमसृजत्। अंतः-करण मनो बुद्धि चित्ताहंकारा—पंचवृत्तयः।..... इत्यादि प्रकार से पृथक् पृथक् कार्यादि के सहित, अंतः-करण वृत्ति पंचक वर्णन करने के अनन्तर, "अथ ज्ञानेन्द्रिय पंचकं, कर्मेन्द्रिय पंचकं, प्राणादिपंचकं, वियदादि पंचकमंतः-करण चतुष्टयं काम कर्म तमांस्यष्ट पुरम्।" इस प्रकार से पुर्यष्टक वर्णनकाल में, श्रुति भगवती ने अंतःकरण पंचक न कहके, चतुष्टय कहकर यह भाव द्योतन किया है कि, वस्तुतः अंतःकरण वृत्ति तो पाँच ही हैं। परंतु जहाँ अल्प संख्यक वृत्ति उक्त हुई हैं, तहाँ उक्त वृत्ति के सहित अनुक्त वृत्ति को मिलाकर पाँच वृत्तियाँ ही ग्राह्य हैं। अर्थात् जहाँ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



एक वृत्ति उक्त हुई है, तहाँ उसके सहित अनुक्त वृत्ति चतुष्टय को मिलाकर पाँचवृत्तियाँ ही ग्राह्य हैं। एवं जहाँ दो वृत्तियाँ उक्त हुई हैं, वहाँ उसके सहित अनुक्त तीन वृत्तियाँ मिलाकर पाँच वृत्तियाँ ही ग्राह्य हैं। और जहाँ तीन वृत्तियाँ उक्त हुई हैं, तहाँ उसके सहित अनुक्त दो वृत्तियाँ मिलाकर पाँच वृत्तियाँ ही ग्राह्य हैं। एवं जहाँ वृत्ति चतुष्टय उक्त हुई हैं वहाँ उसके सहित अनुक्त एक वृत्ति को मिलाकर, पाँच वृत्तियाँ ही ग्राह्य हैं। इस प्रकार से विभिन्न संख्योक्त श्रुति वाक्यों का निर्विरोध अर्थ सिद्ध होता है।

इति अंतःकरणवृत्ति की समालोचना समाप्त ॥

## अथ माया की समालोचना

परस्पर विरुद्ध भावापन्न, सत्य एवं मिथ्या तथा अनिर्वाच्यादि रूप से माया का स्वरूप वर्णन करने को देख सुनकर सत्य मिथ्या का निर्णय तथा निर्विरोध अर्थावधारण करने में असमर्थ, अपिच गुरु परंपरा प्राप्त अंध विश्वास विरहित धर्म जिज्ञासु मानवों की संशय निवृत्ति के लिये अविज्ञात विषय विज्ञापक तथा धर्माधर्म सत्य मिथ्यादि निर्णयकारक, ईश्वरोपदिष्ट अर्थवाद विरहित वेदवाक्य ही जो एक मात्र

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्रमाणभूत है। सो यहाँ पर संक्षेपतः वर्णन किया जाता है। यथाः—

**श्रुत्या यदुक्तं परमार्थ मेव तत्संशयोनात्रततः समस्तम्।**
**श्रुत्या विरोधे न भवेत्प्रमाणंभवेदनर्थायबिना प्रमाणम्॥**

## इति ब्रह्मविद्योपनिषत्

भाषार्थ—अर्थवाद विरहित वेद वाक्य ही जो अविज्ञात विषय विज्ञान के लिये, तथा धर्माधर्म सत्य मिथ्यादि निर्णय के लिये, एक मात्र प्रमाणभूत साधन है। इस विषय में किसी प्रकार का भी संदेह नहीं है। क्योंकि ईश्वरोपदिष्ट, वेद शास्त्र से ही अंग प्रत्यंगादि रूप में, अन्यान्य शास्त्र निचय प्रकाशित हुआ है। अर्थात् अन्यान्य सकल शास्त्र ही वेदमूलक हैं। अतएव प्रमाणभूत वेद वाक्य से विरुद्ध होने पर, स्मृति, पुराण, रामायण, इतिहास, अपिच सांख्य, पातंजल, न्याय, मीमांसा, प्रभृति जिस किसी ग्रन्थोक्त वाक्य ही क्यों न हो, वह प्रमाणभूत नहीं है। और प्रमाण विना अर्थ निरूपण, अनर्थ का कारण होता है। परंतु प्रमाणभूत वेदवाक्य से अविरुद्ध युक्ति युक्त वाक्य समूह, स्मृति पुराणादि जिस किसी ग्रंथोक्त ही क्यों न हो, उसका तो अवश्य ही प्रमाणत्व है।



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



और एक बात यह है कि, अनुवाद फल श्रुति स्तुति निन्दा प्रशंसादि रूप में वर्णित वाक्य निचय को अर्थवाद कहते हैं। श्रुति स्मृति पुराणादि जिस किसी ग्रन्थ का ही क्यों न हो, अर्थ वाद वाक्य का प्रमाणत्व नहीं है।

जैसा विज्ञजन मंडली, सर्वविध प्रमाणसिद्ध, एक मात्र ब्रह्म को ही सत्य कहते हैं, एवं कार्य कारणात्मक संपूर्ण जगत को ही, स्वप्न दृश्य वा मरुजल रज्जु सर्पादिवत् मिथ्या कहते हैं। परंतु सदसद् विवेक शून्य अज्ञजन मंडली, इसका ठीक विपरीत रूप से, इन्द्रिय ग्राह्य होने के कारण देहादि दृश्यमान जगत को सत्य कहते हैं, एवं इन्द्रियातीत होने के कारण, ब्रह्म को असद् वा मिथ्या कहते हैं। यह कोई नवीन बात नहीं है। क्योंकि उपनिषद में भी प्रमाणभूत "सदेव सौम्येदमग्रमासीत्" इस श्रुति वाक्य का ठीक विपरीत रूप से तैत्तिरीय-उपनिषद् में, अज्ञजनों के अनुवाद रूप में "असद्वाइदमग्र आसीत् ततो वै सद जायत।" इस प्रकार के वाक्य देखने में आते हैं। परंतु अनुवादात्मक श्रुति वाक्य का भी प्रमाणत्व नहीं है। क्योंकि यह वाक्य तो वस्तुतः सत्य मिथ्यादि विवेक शून्य अज्ञजनों का ही है, श्रुति भगवती का नहीं। एवं फल श्रुति, स्तुति, निन्दा, प्रशंसादि वाक्य समूह, यथार्थ रूप में वर्णन न करके फल और गुणादि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



को बहुत बढ़ा कर, मनोरंजक तथा त्याज्य विषयों से निवृत्ति और ग्राह्य विषयों में प्रवृत्ति जनक रूप में वर्णन करने का नियम है। अतएव वर्द्धित अंश कल्पित होने के कारण उसका प्रमाणत्व नहीं है।

श्रुति के जैसा मनुस्मृति में भी वर्णित हुआ है कि—
"धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः" इत्यादि।

भाषार्थ—धर्म जिज्ञासु मानवों का धर्म तथा सत्य मिथ्यादि निर्णय के लिये श्रुति वाक्य ही एक मात्र प्रमाणरूप है। श्रुति वाक्य के सहित विरुद्ध भावापन्न स्मृति पुराणादि शास्त्रीय वाक्यों का प्रमाणत्व नहीं है।

अपिच व्याकरण शास्त्र में भी उक्त हुआ है कि—

"अर्थात् प्रकरणाल्लिंगा दौचित्या द्देशकालतः
शब्दार्थास्तु विभज्यन्ते न रुपादेव केवलम्"

भाषार्थ—विविध अर्थ प्रकरण लिंग औचित्य तथा देशकालादि विचारपूर्वक, अनेकार्थ द्योतक शब्दसमूह का निर्विरोध अर्थ ही निरूपण करना उचित है। केवल रूपदर्शन से नहीं। सर्वसाधारण के समीप में निवेदन यह है कि अनेकार्थ द्योतक शब्दसमूह के, अर्थ निरूपण काल में, उपरोक्त नियमादि स्मरण तथा पालनपूर्वक सर्वत्र ही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



निर्विरोध अर्थनिरूपण करना उचित है। अन्यथा आपका किया हुआ अर्थ अनर्थ का कारण होना असंभव नहीं है।

अधुना श्रुति प्रमाणों से माया संबंधी परस्पर विरुद्धार्थ द्योतक वाक्यों का सत्य मिथ्यादि निर्णयपूर्वक, निर्विरोध अर्थ वर्णन किया जाता है। यथा :—

प्रथम :—

~~क्या माया नित्य सत्य है~~ ?

किसी ग्रंथ में देखकर, अथवा किसी के मुख से सुनकर, सदसद् विचार शून्य कतिपय शिक्षित जनसमाज भी, स्वप्न दृश्य वा मरुजल रज्जु सर्पादिवत् मिथ्याभूत माया को नित्य वा सत्य कहकर वर्णन करते हैं। परंतु शुक्ल यजुर्वेदीय पैंगलोपनिषदुक्त सृष्टि प्रकरण में वर्णित हुआ है कि—

"सदेव सौम्येदमग्र आसीत्"।

भाषार्थ— हे सौम्य ! रूप नामात्मक जगत् सृष्टि के पहिले एक मात्र सत्य ही विद्यमान था।

"तन्नित्य मुक्तमविक्रियं सत्य ज्ञानानन्दं परिपूर्णं सनातनमेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म"।

भाषार्थ—वह सदी मुक्त, अविक्रिय अर्थात् उत्पत्ति

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विनाशादि विकारशून्य, सनातन अर्थात् नित्य वा कालत्रयाबाधित अथवा कहो कि सदा अपरोक्ष स्वरूप, एकमेव परिपूर्ण वा अखंड, अद्वितीय अर्थात् सजातीय विजातीय स्वगत भेद विरहित, सत्य ज्ञानानन्द स्वरूप ब्रह्म है।

तात्पर्य यह है कि, अन्य व्यवच्छेदार्थ द्योतक एवं शब्दान्वित उपरोक्त श्रुति वाक्यों द्वारा यही प्रमाणित होता है कि, कालत्रयाबाधित अर्थात् सदा अपरोक्ष स्वरूप एकमात्रब्रह्म ही नित्य वा सत्य है। एवं तद् व्यतिरिक्त बाधयोग्य गुण साम्या मूला प्रकृति माया अविद्यादि कारण कार्यात्मक समस्त जगत् ही अनित्य वा मिथ्या है। अतएव चाहे जिस किसी भी ग्रंथ में माया की नित्यता निरूपण क्यों न करे, वेदविरुद्धहेतु उस वाक्य का प्रमाणत्व नहीं है। सुतरां नित्यत्व पक्ष में प्रमाणाभाव निवन्धन, तथा श्रुति प्रमाणों से मिथ्यात्व सिद्ध होने के कारण माया को नित्य वा सत्य कहना विचार संगत नहीं है।

(अपिच)

"तस्मिन्मरु शुक्ति-का-स्थानुस्फटिकादौजल रौप्य पुरुष रेखादि वल्लोहित शुक्ल कृष्ण गुणमयी गुण साम्यानिर्वाच्या मूलाप्रकृतिरासीत्"

भाषार्थ—उस ब्रह्म के प्रथम पाद में, प्रकाश की अप्रधा-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



नता वा अल्पता हेतु, ब्रह्म वा द्रष्टा समीप में, मरुजल रज्जु सर्पादिवत् लोहित शुक्ल कृष्ण गुणमयी गुणसाम्या अनिर्वाच्यामूला प्रकृति, ब्रह्म से अन्यथा रूप में अर्थात् अति अस्पष्ट दृश्य रूप में भासमाना हुई है। वेदान्तशास्त्र में वह अन्यथा प्रतीति वा दृश्य दर्शन ही सृष्टि नाम से अभिहित हुआ है। अतएव जगद्बीज स्वरूप गुणसाम्या मूला प्रकृति ही सृष्टि के आदि पदार्थ हैं।

"सापुनर्विकृतिं प्राप्य सत्त्वोद्रिक्ताव्यक्ताख्यावरण शक्तिरासीत्। तत्प्रतिबिंबितं यत्तदीश्वर चैतन्य मासीत्। स स्वाधीनमायः सर्वज्ञः सृष्टि स्थितिलया नामादिकर्ता जगदंकुररूपो भवति"।

भाषार्थ—वह गुणसाम्या मूला प्रकृति पुनः विकृति वा गुणविषमता प्राप्त होकर अर्थात् स्वभावतः ही यदा गुण साम्या प्रकृति का सत्त्वगुण ने रजस्तमो गुणद्वय को अभिभूत किया है, तदा गुणसाम्या मूला प्रकृति से आवरण तथा विक्षेप शक्ति समन्विता अव्यक्त रूप नामिका शुद्ध सत्त्व गुण प्रधाना प्रकृति वा माया की उत्पत्ति हुई है। एवं वह माया प्रतिबिंबित चैतन्य ही व्यवहारतः साकार तथा निराकार द्विविध ईश्वर नाम से अभिहित हुआ है। वह ईश्वर स्वाधीन माय (अर्थात् ईश्वर माया के अधीन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



नहीं है, माया ही ईश्वर के अधीन है, तथा सर्वज्ञ, अपिच सृष्टि स्थिति प्रलय के आदिकर्ता हैं। और ईश्वर की उपाधि माया जगदंकुर स्वरूप है।

यहाँ पर वक्तव्य यह है कि, उपरोक्त श्रुति वाक्यों से सुस्पष्टतया प्रमाणित होता है कि मरुजल रज्जु सर्पादिवत्, मिथ्याभूत गुण साम्या मूला प्रकृति से माया की उत्पत्ति हुई है। एवं ईश्वर की उपाधि होने के कारण, माया जो द्रष्टा स्वरूप ईश्वर के दृश्यात्मिका है, सो तो विचारवानों का अस्वीकार्य नहीं है। अपिच प्राकृतिक प्रलय काल में, अथवा कहो कि ईश्वर की तुरीय अवस्था में, अप्रतीति रूप में माया का जो बाध होता है, सो भी तो विचारवानों का अस्वीकार्य नहीं है। तथाच "विराड्ढिरण्य गर्भेश्वरा उपाधि विलयात् परमात्मनिलीयन्ते" इस श्रुति वाक्य से माया का विनाश प्रमाणित होता है। अतएव श्रुति प्रमाण सिद्ध विकारवती दृश्यात्मिका तथा बाधयोग्या मिथ्याभूत माया को, नित्य वा सत्य कहना विचार संगत नहीं है।

## द्वितीय :--

### माया अनादि सान्त है।

आधुनिक काल के उच्च शिक्षित वेदान्तीगण भी,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



गुरु परंपरा प्राप्त भ्रमवशतः, 'माया अनादि सान्त है" इस वाक्यान्तर्गत अनादि शब्द का अर्थ उत्पत्ति रहित मान के, माया को, अज, अन्तवती कह कर वर्णन करते हैं। परंतु जिसका जन्म नहीं हुआ, उसका अन्त वा विनाश होना तो सर्वथा असंभव है। अतएव यहाँ पर अनादि शब्द का अर्थ उत्पत्ति रहित कहना वस्तुतः अविचार मूलक है।

अपिच :—

उपरोक्त श्रुति वाक्य द्वारा, गुण साम्या मूला प्रकृति से, माया की उत्पत्ति अति सुस्पष्ट रूप से ही प्रमाणित हुई है। अतएव युक्ति अनुमान तथा श्रुति प्रमाण विरुद्ध हेतु माया को अज वा उत्पत्ति रहित कहना विचारसंगत नहीं है। परंतु आश्चर्य का विषय यह है कि आचार्यकृत व्याख्या यदि वेद विरुद्ध होवे तो उसका भी जो प्रमाणत्व नहीं है, तथा अनेकार्थ द्योतक शब्द का तात्पर्य औचित्य और प्रकरणादि विचार पूर्वक निर्विरोध अर्थ का निरूपण न करके, शब्द का रूप मात्र देखकर विरुद्धार्थ निरूपण करना जो अनर्थकारक है, अपिच कितना ही उच्च कोटि का आचार्य क्यों न हो, उनका भी जो कभी न कभी, किसी न किसी विषय का ध्यान न रहना, अथवा भूल होना, सर्वथा असंभव

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



नहीं है, सो भलीभाँति जानते हुए भी, माया के चक्कर में आकर, बड़े बड़े वेदान्तीगण भी, ऐसी कल्पना करते हैं कि वस्तुतः माया को उत्पत्ति रहित अन्तवती कहने में दोष तो अवश्य है। परंतु क्या करे, विद्या तो गुरु परंपरा प्राप्त है, अतएव चाहे जिस किसी प्रकार से क्यों न हो, विरुद्ध पक्ष को दबाकर, आचार्य देवकृत व्याख्या का मंडन करना ही परम कर्तव्य है।.....इत्यादि।

"माया अनादि सान्त है"

इस वाक्य का निर्विरोध अर्थ वर्णन यथा :—

उपरोक्त "तस्मिन्मरुजल शुक्तिकेत्यादि" श्रुति वाक्य द्वारा प्रमाणित हुआ है, कि उत्पन्न हुए पदार्थ के बीच में, गुणसाम्या मूला प्रकृति ही आदि पदार्थ है। माया आदि नहीं है। एवं जो आदि नहीं है, उसे अनादि कहना तो उचित ही है। तथा "विराड्ढरण्य गर्भेश्वरा उपाधि विलयात् परमात्मनि लीयन्ते" इस श्रुति वाक्यादि द्वारा माया का विनाश भी प्रमाणित हुआ है। अतएव माया को सान्त कहना भी उचित ही है। सुतरां श्रुति वाक्यानुसार माया को अनादि सान्त कहने में लेशमात्र भी विरोध नहीं होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तृतीय :—

**माया अनिर्वचनीया है।**

आधुनिक काल के वेदांतीगण माया को मिथ्या भी कहते हैं, और कभी कभी ऐसा भी कहते हैं कि, माया को मिथ्या भी नहीं कहा जा सकता है, एवं सत्य भी नहीं कहा जा सकता है और सदसत् उभयात्मिका भी नहीं कहा जा सकता है। अतएव माया अनिर्वचनीया है। यहाँ पर वक्तव्य यह है कि—आधुनिक काल के वेदान्तीगण माया को मिथ्या भी कहते हैं, और माया को मिथ्या भी नहीं कहा जा सकता है, ऐसा भी कहते हैं। परंतु एकाधिकरण में परस्पर विरुद्ध भावापन्न उभय वाक्यों का प्रयोग करना विचारसंगत नहीं।

दूसरी बात यह है कि—इस से पहिले श्रुति प्रमाणादि द्वारा, निःसन्देह रूप से माया का मिथ्यात्व प्रमाणित हुआ है। अतएव प्रमाणाभाव अथवा श्रुतिविरुद्ध हेतु माया को मिथ्या भी नहीं कहा जा सकता है, एवं सत्य भी नहीं कहा जा सकता है ऐसे अविचारमूलक वाक्य द्वारा माया का अनिर्वचनीयत्व सिद्ध नहीं हो सकता है।

अपर वे कभी कभी ऐसा भी कहते हैं कि—,माया को ब्रह्म से भिन्न भी नहीं कहा जा सकता है, एवं अभिन्न भी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



नहीं कहा जा सकता है। इस हेतु माया को अनिर्वचनीया कहते हैं। यहाँ पर वक्तव्य यह है कि श्रुति भगवती ने तो अधिष्ठानात्मक ब्रह्म को साक्षी अथवा द्रष्टा रूप से वर्णन किया है, और माया को दृश्य रूप से ही वर्णन किया है। एवं द्रष्टा जो दृश्य पदार्थ से भिन्न है, और सत्य स्वरूप आत्मतत्त्व से मिथ्याभूत अनात्म वस्तु जो भिन्न है; सो तो नव्य वेदांतियों को भी अस्वीकार्य नहीं है। अतएव "ब्रह्म से माया को भिन्न भी नहीं कहा जा सकता है, एवं अभिन्न भी नहीं कहा जा सकता है" यह वाक्य भी अविचार मूलक है। अतः श्रुति प्रमाण विरुद्ध, कपोल कल्पित इस वाक्य से भी माया का अनिर्वचनीयत्व सिद्ध नहीं हो सकता है।

अधुना अविरुद्धतया श्रुति प्रमाणों से माया का अनिर्वचनीयत्व सिद्ध किया जाता है। यथा :—

कितनी ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु ही क्यों न हो, सत्त्वरजस्तमोगुणमयी दृश्यात्मिका प्रत्येक वस्तु में ही कुछ न कुछ आकार अथवा रूप रंग, विद्यमान है। परंतु ईश्वर की उपाधि माया का आकार अथवा रूप रंग अति अस्पष्ट रूप से भासमान वा प्रकट होने के कारण, अथवा कहो कि, माया का रूप रंग वर्णन अथवा निर्वचन योग्य रूप से भासमान वा व्यक्त न होने के कारण, श्रुति भगवती ने माया को

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अव्यक्ता अपिच अनिर्वचनीया नाम से अभिहित किया है।

**विचार दृष्टि से अवलोकन कीजिये—**

मायोपाधि विशिष्ट ईश्वर, साकार होते हुए भी माया का आकार अव्यक्त होने के कारण, वेदशास्त्र में, ईश्वर के आकार, अथवा रूप रंग वर्णित नहीं हुआ है। परंतु अर्वाचीन ईश्वर अथवा अवतारगण, व्यक्तोपाधि वा व्यक्त देह होने के कारण, वेद शास्त्र में, ब्रह्मा विष्णु महेश्वर प्रभृति का आकार अथवा रूप रंग ध्यानमंत्र में वर्णित हुआ है। सुतरां माया का रूप रंग वर्णन अथवा निर्वचन योग्य रूप से भासमान वा व्यक्त न होने के कारण ही जो श्रुति भगवती ने माया को अव्यक्ता अपिच अनिर्वचनीया नाम से अभिहित किया है, यही श्रुति प्रमाणों से सुसमन्वित निर्विरोध सिद्धान्त की बात है।

इति माया की समालोचना समाप्त।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



## अथ आगामी कर्म की समालोचना :—

पूज्यपाद श्री श्री शंकराचार्यदेवकृत तत्त्वबोध नामक ग्रंथ में वर्णित हुआ है कि :—

"ज्ञानोत्पत्त्यनन्तरं ज्ञानिदेहकृतं पुण्य पाप रूपं कर्म यदस्ति तदागामीत्यभिधीयते।"

अर्थात् ज्ञानोत्पत्ति के अनन्तर ज्ञानी देह कृत पुण्य पाप रूप कर्मसमूह को आगामी कर्म कहते हैं। परंतु श्रुति भगवती ने कहा है कि—

"कर्मचा शुक्लकृष्णं ज्ञानिनां त्रिविध मितरेषाम्।"

अपिच

पातंजल योग दर्शन में भी वर्णित हुआ है कि—

"कर्माशुक्लकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्"।

कै० ७ सू०॥

उपरोक्त श्रुति एवं पातंजल योगदर्शन, वर्णित वाक्यद्वय के भावार्थ यह है कि, शुक्ल कर्म अर्थात् केवल पुण्य कर्म, तथा कृष्णकर्म अर्थात् केवल पापकर्म, एवं शुक्ल कृष्ण कर्म अर्थात् पुण्य पाप मिला हुआ कर्म, तथा अशुक्ल कृष्ण कर्म

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अर्थात् जो पुण्य कर्म भी नहीं है तथा पाप कर्म भी नहीं है एवं पुण्य पाप मिला हुआ कर्म भी नहीं है, अर्थात् जो शुक्लादि त्रिविध कर्म से विलक्षण है, उसे अशुक्ल कृष्ण कर्म कहते हैं। इन चतुर्विध कर्मों के बीच में, अशुक्ल कृष्ण कर्म ही ज्ञानियों का है। एवं शुक्ल और कृष्ण तथा शुक्ल कृष्ण उभय मिश्रित यह त्रिविध कर्म ज्ञानियों से भिन्न, इतरों का अर्थात् अज्ञजनों का है। यहाँ पर वक्तव्य यह है कि, श्रुति एवं श्रुतिमूलक शास्त्रीय प्रमाणों से प्रमाणित होता है कि, ज्ञानोत्पत्ति के अनन्तर ज्ञानी देह द्वारा, पुण्य पाप रूप कर्म निचय अनुष्ठित नहीं होते हैं। और पूज्यपाद आचार्यदेवकृत आगामी कर्म के लक्षण से प्रकाशित हुआ है कि, ज्ञानोत्पत्ति के अनन्तर ज्ञानी देह द्वारा पुण्य पाप रूप कर्म निचय अनुष्ठित होते हैं। अर्थात् वेद वाक्य से आचार्यदेव का वाक्य संपूर्ण ही विपरीत है। अतएव अगत्या यही कहना पड़ेगा कि, पूज्यपाद आचार्यदेवकृत, आगामी कर्म का लक्षण प्रमाणभूत ईश्वरोपदिष्ट वेद वाक्य से विरुद्ध होने के कारण माननीय नहीं है।

अपिच :—

पूज्यपाद आचार्यदेवकृत, आगामी कर्म के लक्षण में

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तो आगामी शब्द की संगति भी नहीं लगती है। क्योंकि "ज्ञानोत्पत्यनन्तरं ज्ञानिदेहकृतं पुण्यपापरूपं कर्म यदस्ति-तदागामित्यभिधीयते"। इस लक्षणोक्त अनन्तर शब्द तो यहाँ पर पश्चात् अर्थ द्योतक है, आगामी अर्थ द्योतक नहीं है। एवं ज्ञान और ज्ञानी देह, तथा ज्ञानीदेहकृत कर्म के सहित भी आगामी शब्द की संगति नहीं लगती है। और आगामी शब्द की संगति, बिना ज्ञानीदेहकृत पुण्य पाप रूप कर्म को, किस प्रकार से आगामी कर्म कहा जा सकता है? भूल में कहना तो और बात है। अतएव श्रुति भगवती ने, जो ज्ञानोत्पत्ति के अनन्तर ज्ञानीदेहकृत कर्मसमूह को अशुक्ल कृष्ण कर्म के नाम से अभिहित किया है, वही सर्वथा समीचीन है। ज्ञानियों के कर्म को, आगामी कर्म कहना उचित नहीं है।

तथाच :—

पूज्यपाद आचार्यदेवकृत, आगामी कर्म के लक्षण से तो यही विज्ञात होता है कि, आगामी कर्म तो ज्ञानियों का ही है। सुतरां जिसके ज्ञानोत्पत्ति नहीं हुई है, उन लोगों का किया हुआ कर्म को तो आगामी कर्म नहीं कहा जा सकता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



है। अतएव अज्ञजनों का किया हुआ कर्म तो प्रारब्ध और संचित इन दोनों भागों में ही विभक्त हो सकता है। परंतु ऐसा तो श्रुति, किंवा श्रुतिमूलक किसी भी शास्त्र में दृष्ट नहीं होता है। वेदशास्त्र में तो, अज्ञदेहकृत कर्म निचय ही प्रारब्ध और आगामी तथा संचित इन तीनों भागों में विभक्त करके वर्णन किया है।

अतएव एक मात्र प्रमाणभूत, ईश्वरोपदिष्ट वेद वाक्य उल्लंघन पूर्वक ज्ञानीदेहकृत कर्म को आगामी कर्म कहना उचित नहीं है। अलम् यहाँ पर ही आगामी कर्म की समालोचना समाप्त की जाती है।

अन्त में वक्तव्य यह है कि, आचार्यदेव का अनुकरण करके, अन्यान्य विद्वद्वृन्द ने भी निज निज विरचित ग्रंथों में ठीक आचार्यदेव के तुल्य ही आगामी कर्म का लक्षण वर्णन किया है। परंतु उपरोक्त दोषदर्शन निबंधन, मैंने पूज्यपाद आचार्यदेव का अनुसरण न करके, स्वतंत्र रूप में ही, प्रथम परिच्छेद में आगामी कर्म का अविरुद्धलक्षण वर्णन किया है।

इति आगामी कर्म की समालोचना समाप्त ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



## अथ अहिंसा समालोचना

जिस कार्य से किसी का प्राणवियोग होता है उसे हिंसा कहते हैं। वैध एवं अवैध भेद से हिंसा द्विविध है।

भोग तथा मोक्षदायक नित्य नैमित्तिक यज्ञादि कार्य संपादनार्थ ईश्वरोपदिष्ट वेदशास्त्र में जो सकल हिंसा करने की विधि वा आज्ञा प्रदान की है, उसे वैध हिंसा कहते हैं। और एतद्भिन्न वेद निषिद्ध सर्वविध हिंसा को ही अवैध हिंसा कहते हैं। एवं वस्तुतः अवैध हिंसा न करने को ही अहिंसा कहते हैं।

वेदशास्त्र में "माहिंस्यात् सर्वभूतानि" इत्यादि प्रकार से जहाँ जहाँ हिंसा करने का निषेध किया है, तहाँ तहाँ अवैध हिंसा न करना, ऐसा निर्विरोध अर्थ ही निरूपण करना उचित है। अन्यथा वेदशास्त्र में भोगापवर्ग प्रद नित्य नैमित्तिक यज्ञादि कार्य संपादनार्थ, जो सकल पशु आदि हिंसा करने की विधि प्रदान की है, तथा आततायी मानव को जो हिंसा करने की विधि प्रदान की है, वह सकल विधि वाक्यों के सहित विरोध होगा। और वेदोक्त दोनों विधि वाक्यों के बीच में, एक विधि वाक्य उल्लंघन करके, द्वितीय विधि वाक्य का विरुद्धार्थ निरूपण करना, अर्थात् ईश्वरोप-



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



दिष्ट वेद वाक्य उल्लंघन करके, किसी प्रकार की भी हिंसा करना उचित नहीं है", इत्याकार विरुद्धार्थ निरूपण करना अथवा प्रचार करना अति अनर्थकारक हेतु, विचारसंगत नहीं है।

दूसरी वाति यह है कि, ईश्वरोपदिष्ट वेद विहित, वैध हिंसा न करके, देह रक्षा होना भी सर्वथा असंभव है। क्योंकि केवल मांस भक्षण करने पर ही जो हिंसा होती है, ऐसा नहीं, फल मूल दधि दुग्ध तथा जलादि सकल वस्तु में ही अतिशय छोटे छोटे प्राणीवृन्द विराजमान हैं। यंत्र विना तो देखने में नहीं आते हैं, परंतु अणुवीक्षण यंत्र द्वारा अवलोकन करने से वे प्राणिवृन्द देखने में आते हैं। वस्त्र द्वारा भलीभाँति छान के एक ग्लास जल पीने पर भी अतिशय छोटे छोटे वहुत से जीवों का प्राण वियोग होता है। यदि खाना पीना पूर्णतया परिवर्जन किया जाय, तव तो स्वकीय प्राण ही वियोग होगा। एवं देह विध्वंस होने के साथ ही साथ, देह स्थित असंख्य जीवों का भी प्राण वियोग होगा। भलीभाँति विचारपूर्वक अवलोकन करने से, निःसन्देहतया यही जानने में आता है कि, वैध एवं अवैध सर्व विध हिंसा से वचने का कोई भी उपाय नहीं है। अतएव अवैध हिंसा न करना ही अहिंसा शब्द का प्रकृत अथवा निर्विरोध अर्थ है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी ने भोगापवर्गार्थ देवता मनुष्य तथा पशु आदि सृजन करके, नित्य नैमित्तिक देवयज्ञ तथा पितृयज्ञादि कार्य संपादनार्थ, जो सकल पशु आदि के हिंसा करने की विधि, वा आज्ञा प्रदान की है। तथा देह संरक्षणार्थ यज्ञशेष अन्न जलादि खाने पीने में जो सकल हिंसा होती है, अपिच आततायी को, जो हिंसा करने की विधि प्रदान की है, वह समस्त ही वैध हिंसा है। वेदोक्त वैध हिंसा हानिकारक नहीं है। वह तो भोगापवर्ग संपादक होने के कारण, तथा यज्ञनिहत, पशु आदि की भी ऊर्ध्वगेति प्राप्त होने के कारण, यज्ञकर्ता अपिच यज्ञनिहत पशु आदि सब को ही अति लाभ-दायक है। परंतु वेदनिषिद्ध अवैध हिंसा, इष्ट विनाशक हेतु हानिकारक तथा पापजनक हेतु दुःखदायक है। अतएव अवैध हिंसा ही सर्वथा वर्जनीय है।

मनुस्मृति के भी पंचम अध्याय में वर्णित हुआ है कि—

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा।
यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद् यज्ञेवधोऽबधः ॥३९॥

भावार्थ—सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी नें स्वयं ही यज्ञ संपादनार्थ पशु आदि सृजन किया है। वेदोक्त नित्य नैमित्तिक, यज्ञादि कार्यसमूह, यजमान तथा पशु आदि सब का ही भोगापवर्गार्थ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अनुष्ठित होता है, अतएव यज्ञ में जो पशु आदि वध होता है, वह अवैध ही है। अर्थात् यज्ञ में जो हिंसा की जाती है वह पापजनक नहीं है, पुण्यजनक है।

ओषध्यः पशवोवृक्षास्तिर्यंच पक्षिणस्तथा।
यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृतीः पुनः ॥४०॥

भाषार्थ—तिल, जव, धान प्रभृति ओषधियों, घोड़ा, गऊ, बकरा इत्यादि पशुओं, मछली, कछुआ इत्यादि तिर्यकों, अपिच अनेक प्रकार के वृक्ष तथा पक्षीसमूह यज्ञार्थ निधन अथवा मृत्यु प्राप्त होकर वे पुनः उत्कृष्ट भोगोपयोगी ऊँची जाति में उत्पन्न होते हैं।

मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवत कर्मणि।
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥४१॥

भाषार्थ—"समांसो मधुपर्कः" अर्थात् मांस के सहित मधुपर्क होता है, इस वचन से मधुपर्क निमित्त और यज्ञार्थ, एवं पितृकर्म तथा दैवकर्म, इन नियमबद्ध कर्मों में ही पशु आदि बध योग्य है, अन्यत्र नहीं, मनुजी ऐसा कहते हैं।

एष्वर्थेषु पशून् हिंसन् वेदतत्त्वार्थ विद्द्विजः।
आत्मानंच पशुंचैव गमयत्युत्तमांगतिम् ॥४२॥

भाषार्थ—"वेदतत्त्वार्थविद्द्विजः" अर्थात् वेद के वास्त-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विक अर्थविज्ञाता द्विज, उपरोक्त नित्य नैमित्तिक यज्ञ कार्य संपादनार्थ, पशुओं की हिंसा करता हुआ आपको, तथा पशु को भी उत्तम गति वा उन्नत अवस्था प्राप्त कराता है।

गृहे गुरावरण्ये वा निवसन्नात्मवान्द्विजः।
ना वेद विहितां हिंसामापद्यपि सन्नाचरेत् ॥४३॥

भाषार्थ—गृहस्थाश्रम में तथा ब्रह्मचर्याश्रम में अथवा वानप्रस्थाश्रम में निवास करता हुआ प्रशस्त वा प्रशंसनीय अंतःकरण विशिष्ट द्विज "अवेदविहितां हिंसां" अर्थात् वेदशास्त्र में जैसी हिंसा करने की विधि वा आज्ञा नहीं दी है, ऐसी हिंसा आपद्काल में भी न करे।

या वेद विहिता हिंसा नियताऽस्मिंश्चराचरे।
अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मोहि निर्बभौ ॥४४॥

भाषार्थ—वेदशास्त्र में ब्रह्मचर्यादि आश्रम रूप में तथा नित्य नैमित्तक यज्ञादि कार्य रूप में, और त्याज्य एवं ग्राह्यरूप में, अथवा कहो कि भक्ष्य और अभक्ष्यादि रूप में नियत वा नियम बद्ध करके, जो सकल हिंसा करने की विधि वा आज्ञा प्रदान की है, यह चराचर जगत में धर्म-जिज्ञासु मानव वेद विहित उस हिंसा को अहिंसा ही जाने। क्योंकि "वेदाद्धर्मोहि निर्बभौ" अर्थात् वेद से ही धर्म प्रकाशित हुआ है। इस वाक्य का तात्पर्य यह है कि, एक मात्र वेद

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ही वस्तुतः धर्माधर्म तथा सत्य मिथ्यादि प्रकाशक अथवा निरूपक है, अन्यान्य शास्त्रसमूह तो वेद से ही निकाला हुआ है, अतएव अन्यान्य शास्त्रोक्त वाक्य यदि वेद विरुद्ध होवे तो उसका प्रमाणत्व नहीं है।

अपिच

भगवद्गीता के भी तृतीय अध्याय में वर्णित हुआ है कि—

सह यज्ञाः प्रजा सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेषवोऽस्त्विष्ट कामधुक् ॥१०॥

भाषार्थ—प्राचीन काल में सृष्टि कर्त्ता ब्रह्माजी ने, प्रजा सृष्टि के अनन्तर साथ ही साथ नित्य नैमित्तक यज्ञ कर्म का उपदेश प्रदान पूर्वक कहा था कि, तुम लोग मदुपदिष्ट नित्य नैमित्तिक यज्ञ द्वारा उत्तरोत्तर वर्धित वा उन्नत होते रहो, यह यज्ञ तुम लोंगों का इष्ट कामधुक अर्थात् अभीष्ट फलप्रद हो।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तुवः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥११॥

भाषार्थ—मदुपदिष्ट यज्ञ द्वारा, तुम लोग इन्द्रादि देवताओं को संवर्धित वा परितुष्ट करो, एवं देवगण भी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तुम लोगों को संवर्धित वा परितुष्ट करें। इस प्रकार से परस्पर संवर्धन करते हुए क्रमशः परम श्रेयलाभ अथवा कहो कि कैवल्य मुक्तिलाभ कर सकोगे।

इष्टान् भोगान् हिवो देवा दास्यन्ते यज्ञ भाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्तेस्तेन एवसः ॥१२॥

भाषार्थ—यज्ञ द्वारा जो केवल स्वर्गादि पारलौकिक अथवा मोक्ष संवन्धी फल प्राप्त होता है ऐसा नहीं, यज्ञसे देवगण परितुष्ट होकर, तुम लोगों को इहलोक संवन्धी इष्टान् भोगान् अर्थात् अभिलषित स्त्री पुत्री पशु अन्न रजत कांचनादि भोग्य वस्तु समूह भी प्रदान करेंगे, अतएव देवगण प्रदत्त भोग्य पदार्थ यज्ञ द्वारा पुनः देवताओं को समर्पण न करके, जो व्यक्ति भोजन करता है वह तो देव द्रव्यापहारी चोर ही है।

यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्विषैः।
भुंजतेतेत्वघं पापाये पचन्त्यात्मकारणात् ॥१३॥

भाषार्थ—यज्ञावशेष भोजनकारी सज्जन वृन्द समस्त पाप से विमुक्त होते हैं। और जो पापाचारी मानवगण वेदोपदिष्ट यज्ञ के लिये अन्न व्यंजनादि नहीं पकाकर, केवल अपने लिये ही पकाते हैं वे तो पाप ही भोजन करते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तथाच:

महाभारत में भी, यज्ञादि कर्म में हिंसा करने की प्रथा देखने में आती है। बात यह है कि वेद एवं वेद मूलक सकल शास्त्र में ही, यज्ञादि कर्म संपादनार्थ वेद विहित हिंसा करने की विधि वा आज्ञा प्रदान की है। एवं वेद निषिद्ध अवैध हिंसा करने का निषेध किया है। क्योंकि वेद विहित हिंसा इष्ट साधक, तथा पुण्यजनक हेतु लाभदायक है; और वेद निषिद्ध अवैध हिंसा, इष्ट विनाशक हेतु हानि-कारक, तथा पापजनक हेतु दुःखदायक है। अपर वैध एवं अवैध द्विविध हिंसा से वचना जो सर्वथा असंभव है, सो भी तो युक्ति तथा प्रमाण के सहित भली भाँति वर्णन किया गया है। अतएव सनातन धर्मशास्त्र में जहाँ जहाँ हिंसा करने का निषेध किया है, तहाँ तहाँ ही अवैध हिंसा न करना इत्याकार अर्थ समझना जो उचित है, यही युक्ति तथा अनुभव, अपिच शास्त्रीय प्रमाणों से सुनिश्चित सिद्धांत की बात है।

प्रकरणोपसंहार में वक्तव्य यह है कि, आधुनिक काल के गुरु परंपरा प्राप्त भ्रमवशतः अनेक विद्वन्मंडली भी, "यतोऽभ्युदय निश्रेयस सिद्धिः सः परमोधर्मः" अर्थात् जिससे निश्रेयस सिद्धि अभ्युदय होता है, अथवा कहो कि जिससे दुःख की आत्यंतिक निवृत्ति तथा नित्य निरतिशय सुख

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



संप्राप्तिरूप कैवल्य मुक्तिलाभ सिद्ध होता है, उसे परमधर्म कहते हैं। श्रुति उक्त परम धर्म के इस लक्षण की उपेक्षा करके, अवैध हिंसा न करने की स्तुति रूप में वर्णित "अहिंसा परमोधर्मः" अर्थात् अवैध हिंसा न करना परम धर्म है, ऐसा निर्विरोध अर्थ अवधारण वा निर्णय करने में असमर्थ होने के कारण, नित्य नैमित्तिक यज्ञादि कर्म संपादनार्थ वेदविहित वैधहिंसा भी परित्याग करना परमधर्म है, इत्याकार विरुद्धार्थ निर्णय पूर्वक विभिन्न सांप्रदायिक नियमानुसार उपदेश प्रदान करते हैं।

आत्मधर्म परित्याग करके, अथवा कहो कि ईश्वरोपदिष्ट सनातन वैदिक धर्म परित्याग करके विभिन्न सांप्रदायिक आचार्यगण, वेद विरुद्ध उपदेश प्रदान करने के फल में नास्तिकता, यथेच्छाचार, तथा पारस्परिक राग द्वेष, आततायित्व, छीना झपटी और अवैध हिंसा प्रभृति, अत्यधिक वृद्धि होने के कारण जो महान दुख उपस्थित हुआ है, सो तो किसी को भी अविदित नहीं है। इस महान दुख निवृत्ति के लिये, भारतवर्षस्थ राजा प्रजा सब को ही सुयोग्य उपाय, अनुसन्धान करने का समय उपस्थित हुआ है? अथवा नहीं, सो तो भगवान ही जानते हैं।

इति अहिंसा समालोचना समाप्त।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



## अथ मंत्राधिकार समालोचना

किसी भी प्रकार की सभा समिति में न जाते हुए भी, यह बात मेरे से अविदित नहीं है कि, स्त्री तथा शूद्र का मंत्राधिकार संबन्ध में मतभेद होने के कारण बहुकाल से ही, उभय पक्ष के आचार्यवृन्द निज निज मतप्रचार कार्य में तत्पर हुए हैं। प्रथम पक्ष के विद्वानों का कहना यह है कि, किसी भी वैदिक मंत्र में स्त्री शूद्रों का अधिकार नहीं है। और द्वितीय पक्ष के विद्वानों का कहना यह है कि वैदिक मंत्र में स्त्री शूद्रों का भी अधिकार है। स्त्री शूद्रों का मंत्राधिकार संबंधी उभय पक्ष का सिद्धान्त पूर्णतया ही विपरीत है। कलियुग के प्रभाववशतः अथवा कहो कि आधुनिक काल के प्रचलित उपधर्म संस्कार संपन्न उभय पक्ष के आचार्यवृन्द की विद्या, अविद्या की आवरण शक्ति से आच्छादित होने के कारण विरोध निवृत्तिकारक प्रमाणभूत श्रुतिवाक्य, और तदीय प्रकृत अर्थ, उन लोगों के हृदय में पूर्णतया प्रकट अथवा कहो कि भासमान नहीं होता है। सुतरां विरोध भी नहीं मिटता है।

आधुनिक काल के प्रचलित बौद्ध, जैन इत्यादि उपधर्म संस्कार विरहित अपठित विद्वान शिवशिष्य वनवासी में निर्मलानन्द इतने दिन तक तो चुप ही था; परन्तु प्रारब्ध-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वशतः अथवा कहो कि भगवदिच्छावशतः, अधुना मुझे भी कुछ कहने की इच्छा हुई है। अतः मंत्राधिकार संबन्ध में मेरा कहना यह है कि—

जैसा ईश्वर सृष्ट जगत् में, उच्च शिक्षित नरनारियों के बीच में भी, सामान्य गुणशक्ति विशिष्ट, और विशेष अर्थात् असामान्य वा असाधारण गुणशक्ति विशिष्ट, द्विविध नरनारी दृष्ट होता है। ठीक वैसा ही ईश्वरोपदिष्ट वेद शास्त्र में, भोगापवर्गप्रद मंत्रसमूह के बीच में भी, सामान्य शक्ति विशिष्ट, और विशेष अर्थात् असामान्य वा असाधारण शक्ति विशिष्ट, द्विविध मंत्र भलीभाँति दृष्ट होता है।

अपिच-जैसा उच्च शिक्षित सामान्य नरनारियोंका जागतिक सामान्य कार्य में ही अधिकार है। ठीक वैसा ही सदाचार और साधन करनेकी शक्ति तथा रुचि संपन्न सामान्य नरनारियोंका, वेदशास्त्रोक्त सगुणब्रह्म ईश्वरोपासन संबन्धी सामान्य मंत्रमें ही अधिकार है। और जैसा एम. ए. एल-एल. बी. परीक्षामें उत्तीर्ण होते हुए भी, अयोग्यहेतु, सामान्य नरनारियोंका जागतिक विशेष कार्य में अर्थात् किसी विशिष्ट वस्तु का आविष्कार अपिच राष्ट्रपत्यादियों का कार्य में अधिकार नहीं है। ठीक वैसा ही वेदवेदान्त विद् होते हुए भी, साधन चतुष्टय

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विरहित सामान्य नरनारियोंका, वेद शास्त्रोक्त निर्गुण ब्रह्म का उपासनसंवन्धी चतुवर्ग फलप्रद विशेष मंत्र में अधिकार नहीं है।

अपिच-जैसा विशेष गुण शक्ति संपन्न असामान्य नरनारियोंका, जागतिक विशेष कार्य में भी, अर्थात् किसी विशिष्ट वस्तुके आविष्कार तथा राष्ट्रपत्यादियों का कार्य-में भी अधिकार है। ठीक वैसा ही वेदवेदांतविद् अपिच-साधन चतुष्टय संपन्न, असामान्य नरनारियोंका वेद शास्त्रोक्त निर्गुण ब्रह्म का उपासन संवन्धी चतुर्वर्ग फलप्रद विशेष मंत्र में भी अधिकार है।

अत्र विशेष वक्तव्य यह है कि उपरोक्त नरनारी शब्द से केवल सनातन धर्मान्तर्गत चातुर्वर्णिक नरनारियाँ ही ग्राह्य हैं, ऐसा नहीं? सवसे प्राचीन ईश्वरोपदिष्ट वैदिक धर्मत्यागी, बौद्ध, जैन, ईसाई मुसलमान इत्यादि-स्वदेशी विदेशी जो कोई भी क्यों न हो, पुनः ईश्वरोप-दिष्ट वैदिक धर्मावलंवनेच्छुक और साधन करनेकी शक्ति तथा रुचिसंपन्न विश्वके समस्त नरनारियां ही ग्राह्य हैं।

अधुना मेरे वाक्योंके समर्थक प्रमाणभूत श्रुति वाक्य समूह नीचे वर्णन किये जाते हैं। यथाः—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



( १ )

सामवेदीय महोपनिषद् में वर्णित हुआ है कि:—

आदौ शमदम प्रायैर्गुणैः शिष्यं विशोधयेत् ।
पश्चात् सर्वमिदं ब्रह्म शुद्धस्त्वमितिबोधयेत् ॥

इसका गूढ़ार्थ यह है कि:—

पहिले शमदमादि प्रायः समस्त गुणों से अर्थात् पहिले सगुणब्रह्म ईश्वरोपासन संबंधी कर्मयोग तथा भक्ति योगाभ्यास कराके, शिष्यको शुद्धान्तःकरण, तथा साधन चतुष्टय संपन्न करावे। और तदनन्तर नानाविध युक्ति तथा वेद शास्त्रोक्त प्रमाण वाक्य प्रदर्शन पूर्वक वस्तुतः यह सब ब्रह्म है, एवं तुम वस्तुतः उपाधि विनिर्मुक्त शुद्ध ब्रह्म हो, इस प्रकारसे शिष्य को सप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान प्राप्त करानेके अनन्तर आवरण भंगार्थ निर्गुण ब्रह्म का उपासन संबन्धी वेद शास्त्रोक्त विशेष मंत्रका उपदेश प्रदान करे।

अपिच

प्रबुद्ध बुद्धेः प्रक्षीण भोगेच्छस्य निराशिषः ।
नास्त्यविद्या मलमिति प्राज्ञस्तूपदिशेद्गुरुः ॥

भावार्थ—जिसकी बुद्धि प्रबोध प्राप्त हुई है, अर्थात् जिसको

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ है, एवं जो विरक्त है एवं जिसकी भोगेच्छा प्रक्षीण हुई है, और जिसकी अविद्या वा अंतःकरण में मल नहीं है, अपिच जो साधन चतुष्टय संपन्न है, एवंविध शिष्य को, ब्रह्मविद्गुरु, आवरणभंगार्थ निर्गुण ब्रह्म का उपासन संबन्धी विशेष मंत्र का उपदेश प्रदान करे।

अत्र वक्तव्य यह है कि—

उपरोक्त दोनों वेदवाक्य द्वारा यही प्रमाणित होता है कि—साधन चतुष्टय संपन्न असामान्य नरनारियों का ही वेदशास्त्रोक्त निर्गुण ब्रह्म का उपासन संबंधी विशेष मंत्र में अधिकार है। और साधन चतुष्टय विरहित सामान्य नरनारियों का, वेदशास्त्रोक्त सगुण ब्रह्म ईश्वरोपासन संबंधी सामान्य मंत्र में ही अधिकार है। परन्तु सामान्य नरनारियों का विशेष मंत्र में अधिकार नहीं है।

( २ )

शुक्ल यजुर्वेदीय वृहदारण्यक उपनिषद् में वर्णित हुआ है कि—याज्ञवल्क्य जी ने योग्य वा अधिकारी समझ कर स्वकीय प्रथम भार्या मैत्रेयी देवी को ब्रह्मविद्या का उपदेश प्रदान किया है। परन्तु अयोग्य वा अनधिकारी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



समझ के, द्वितीय भार्या कात्यायनी देवी को ब्रह्मविद्या का उपदेश प्रदान नहीं किया है। यद्यपि याज्ञवल्क्य जी की दोनों भार्या ही, अतिशिक्षिता, सुनिपुणा, धर्मज्ञा, धर्मानुरता और पतिव्रता थीं। तथापि दोनों के बीच में कुछ अन्तर अवश्य था। सो यह है कि—जन्मान्तरीय संस्कारवशतः मैत्रेयी देवी, केवल भोग तथा गृहकार्य में ही आसक्ता न हो के, कर्तव्यबुद्धि से सांसारिक कार्य करते हुए भी, फलाकांक्षा विवर्जिता होकर योगानुष्ठान के प्रभाव से साधन चतुष्टय संपन्ना हुई थी। इस हेतु ही याज्ञवल्क्य जी ने योग्य वा अधिकारी समझ कर, मैत्रेयी देवी को ब्रह्मविद्या का उपदेश प्रदान किया है। परन्तु याज्ञवल्क्य जी महाराज ने यदा श्रीमती मैत्रेयी देवी को ब्रह्मविद्या का उपदेश प्रदान किया है तदा श्रीमती कात्यायनी देवी साधन चतुष्टय संपन्ना नहीं हुई थी, इस हेतु ही याज्ञवल्क्य जी महाराज ने, श्रीमती कात्यायनी देवी को अयोग्य वा अनधिकारी समझ कर, उसे ब्रह्मविद्या का उपदेश प्रदान नहीं किया है।

अत्र वक्तव्य यह है कि:—

उपरोक्त वेदवाक्य द्वारा यही प्रमाणित होता है कि—साधन चतुष्टय संपन्न असामान्य नरनारियों का ही, ब्रह्मविद्या

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



के उपदेश ग्रहण में, अथवा कहो कि, वेदशास्त्रोक्त निर्गुण ब्रह्म का उपासन संबंधी विशेष मंत्र के उपदेश ग्रहण में अधिकार है।

( ३ )

कृष्ण यजुर्वेदीय ब्रह्म विद्योपनिषद में वर्णित हुआ है कि

नापुत्राय प्रदातव्यं ना शिष्याय कदाचन।
गुरुदेवाय भक्ताय नित्यंभक्ति परायच।
प्रदातव्यमिदं शास्त्रंनेतरेभ्यः प्रदापयेत्॥

इसका गूढ़ार्थ यह है कि—

कदापि अर्थ कामासक्त साधन चतुष्टय विरहित अतएव अयोग्य पुत्र को, तथा अयोग्य शिष्य को वेदशास्त्रोक्त निर्गुणब्रह्म बोधक हंस मंत्र का, अर्थात् 'सोऽहमस्मि" तद्ब्रह्माहमस्मि" "अहं ब्रह्मास्मि" प्रभृति मंत्रों का उपदेश प्रदान न करे, परन्तु जो गुरु और देवभक्त है अर्थात् जो गुरु और भगवद्भक्त है, एवं जो सर्वदा निर्गुण ब्रह्म भक्ति परायण तथा साधन चतुष्टय संपन्न है, ऐसे सुयोग्य पुत्र, और सुयोग्य शिष्य को ही कैवल्य मुक्ति का अन्तरंग साधनभूत हंस मंत्र

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



का उपदेश प्रदान करे। अन्य किसी को भी इंस हंस मंत्र का उपदेश प्रदान न करे।

( ४ )

प्रतिबिंबरूप, सगुण ब्रह्म बिंब रूप, निर्गुण ब्रह्म से वस्तुतः अभिन्न होने के कारण, सृष्टिकर्ता अपिच वेदोपदेष्टा श्री श्री भगवान ब्रह्मा जी ने, अथर्ववेदीय नृसिंहपूर्वतापिन्युपनिषद् में स्वर्ग मर्त्य पातालाख्य संपूर्ण जीव जगत् को नृसिंह भगवान का त्रिपाद स्वरूप से वर्णन करके, चतुर्थ पाद को असंग साक्षी स्वरूप से वर्णन करने के अनन्तर, साम के अंगादि वर्णनपूर्वक चतुर्वर्ग फल प्राप्त्यर्थ वक्ष्यमाण मंत्रों से अभिन्नतया निर्गुण ब्रह्म का उपासन करने की विधि वा आज्ञा प्रदान की है।

तन्मंत्रादि यथा

"सर्वे वेदाः प्रणवादिकास्तं प्रणवंतत्
साम्नोऽङ्गं वेदसत्रींल्लोकाञ्जयति"

श्रुति वाक्य का गूढ़ार्थ यह है कि—समस्त वेद ही प्रणवादिक है, अथवा कहो कि ओंकार मूलक हैं। अतएव समस्त वैदिक मंत्र में ही बीजभूत ओंकार मिलाकर जपादि



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कार्य संपादन करना उचित है। दूसरी बात यह है कि, साधन करने की शक्ति तथा रुचि संपन्न स्त्री वा पुरुष कोई भी क्यों न हो पहिले "तत्" शब्द वाच्य सामांगभूत सगुण ब्रह्म ईश्वरोपासनपूर्वक, अर्थात् वेदविहित कर्मयोग तथा भक्तियोगानुष्ठानपूर्वक, साधन चतुष्टय संपन्न होने के अनंतर, आवरण भंगार्थ प्रणव संज्ञक, निर्गुण ब्रह्म को यथाविधि ज्ञान योगानुष्ठान प्रभाव से, अथवा कहो कि निदिध्यासन प्रभाव से अप्रतिबद्ध अपरोक्षतया जो व्यक्ति जानता है। वह स्वर्ग मर्त्य पातालाख्य लोकत्रय को जीत लेता है अर्थात् मुक्त होता है।

× × ×

"साङ्गं सामजानीयाद्योजानीते सोऽमृतत्वंच गच्छति"

भाषार्थ—अंग के सहित सामाख्य निर्गुण ब्रह्म को जाने, जो अप्रतिबद्ध अपरोक्षतया निर्गुणब्रह्म को जानता है। वह उपाधि विनिर्मुक्त ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है।

"सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं—
स्त्रीशूद्राय नेच्छन्ति"

निर्विरोध भाषार्थ—निर्गुण ब्रह्म का उपासन संबंधी "सावित्रीं" अर्थात् "ओंघृणिः सूर्यआदित्यः" इस अष्टाक्षरी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सावित्री मंत्र को, तथाच "प्रणवं" अर्थात् निर्गुण ब्रह्म का उपासन संबंधी केवल प्रणव मंत्र को अपिच निर्गुण ब्रह्म का उपासन संबंधी "यजुर्लक्ष्मीं" अर्थात् "ओंभूर्लक्ष्मीर्भुवर्लक्ष्मीः स्वर्लक्ष्मीः कालकर्णी तन्नो महालक्ष्मीः प्रचोदयात्" यह चतुर्विंशत्यक्षरा महालक्ष्मीर्यजुर्गायत्री मंत्र को, साधन चतुष्टय विरहित सामान्य स्त्री शूद्र को, अपिच शूद्र शब्दोपलक्षित साधन चतुष्टय विरहित, सामान्य ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य को प्रदान करने की इच्छा न करे।

"द्वात्रिंशदक्षरं सामजानीयाद्यो—
जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति"

निर्विरोध भाषार्थ—"द्वात्रिंशदक्षरं" अर्थात् "ओं उग्रंवीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखं नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्" यह वत्तीस अक्षर विशिष्ट महामंत्र प्रतिपाद्य सगुण ब्रह्म नृसिंह भगवान जिसका अंग वा अंश स्वरूप है, अंग के सहित अभिन्न रूप से सामाख्य तिस निर्गुण ब्रह्म को जाने, साधन चतुष्टय संपन्न जो स्त्री वा पुरुष अभिन्न रूप से निर्गुण ब्रह्म को अप्रतिबद्ध अपरोक्षतया जानता है, वह ऐश्वर्य प्राप्ति के अनन्तर जीवन्मुक्त होकर, प्रारब्ध भोगावसान काल में, उपाधि विनिर्मुक्त ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



"सावित्रीं लक्ष्मीं यजुः प्रणवं यदि जानीयात् स्त्रीशूद्रः समृतोऽधोगच्छति । तस्मात्सर्वदा ना चष्टे यद्याचष्टे स आचार्यस्ते नैव मृतोऽधोगच्छति"

श्रुति वाक्य का गूढ़ार्थ यह है कि—साधन चतुष्टय विरहित स्त्रीशूद्र अपिच शूद्र शब्दोपलक्षित साधन चतुष्टय विरहित ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य, यदि चतुर्वर्ग फलप्रद निर्गुण ब्रह्म बोधक प्रणवादि विशेष मंत्र को, कोई मंत्रविशारद गुरुमुख से भलीभाँति जानकर, यथाविधि उस मंत्र के अनुष्ठान प्रभाव से ऐश्वर्य प्राप्त होने पर, अर्थ कामासक्त विमूढ़ मति सामान्य नर नारियाँ, धर्म तथा मोक्ष के साधनभूत नित्य नैमित्तिक कर्म को परित्याग करके, अधर्माचरण तथा केवल भोगपरायण होने के कारण, वे नर नारीगण, मरने के अनन्तर, अथवा कहो कि मृत्यु काल में अधोगति को प्राप्त होते हैं। इस हेतु ही वेदोपदेष्टा जगद्गुरु श्री श्री भगवान् ब्रह्मा जी महाराज ने, जिज्ञासु तथा आचार्य के प्रति कहा है कि, अर्थ कामासक्त विमूढ़मति सामान्य स्त्री शूद्रादि अथवा कहो कि साधन चतुष्टय विरहित सामान्य नर नारियाँ, यदि चतुर्वर्ग फलप्रद निर्गुण ब्रह्म बोधक प्रणवादि विशेष मंत्र को जाने, अर्थात् कोई मंत्र विशारद गुरुमुख से विदित होकर यथा विधि उस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मंत्र का अनुष्ठान करे, तो वह मर के अधोगति को प्राप्त होता है।

अतः मंत्रदाता गुरु सर्वदा ही जिज्ञासुओं को चतुर्वर्ग फलप्रद निर्गुण ब्रह्म बोधक विशेष मंत्र का उपदेश प्रदान न करे।

पहिले सगुण ब्रह्म ईश्वरोपासन संबंधी, सामान्य मंत्र का ही उपदेश प्रदान करे। एवं जिज्ञासु जब कर्मयोग तथा भक्तियोग के अनुष्ठान प्रभाव से साधन चतुष्टय संपन्न होवे, तब उसे चतुर्वर्ग फलप्रद निर्गुणब्रह्मबोधक प्रणवादि विशेष मंत्र का उपदेश प्रदान करे। यदि कोई आचार्य अर्थ कामासक्त अयोग्य शिष्य को, विशेष मंत्र का उपदेश प्रदान करे, तो शिष्य के अधोगति प्राप्ति का मूल कारण भूत, अयोग्य पात्र को, विशेष मंत्र का उपदेश प्रदानात्मक पाप कर्म से ही वह आचार्य मर के अधोगति को प्राप्त होता है।

"यदिदं किंचात्मनि ब्रह्मण्येवानुष्टु भंजानीया-
द्योजानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति स्त्री पुंसयोर्वा"।

निर्विरोध भाषार्थ—यह प्रत्यक्षभूत जो कुछ आनुष्टुभ संज्ञक कार्य कारणात्मक जगत् देखने में आता है, सो सकल अधिष्ठान स्वरूप आत्मा में ही अथवा कहो कि साक्षी वा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



द्रष्टास्वरूप निर्गुणब्रह्म में ही, मरुजल रज्जु सर्पादिवत् भासमान है। अतः चतुर्वर्ग फलप्रद प्रणवसावित्री आदि मंत्र प्रतिपाद्य द्रष्टा वा अधिष्ठानस्वरूप निर्गुणब्रह्म को, जाने। साधन चतुष्टय संपन्न स्त्री वा पुरुषों के बीच में जो व्यक्ति साक्षी वा द्रष्टास्वरूप निर्गुणब्रह्म को अप्रतिबद्ध अपरोक्षतया जानता है; वह ऐश्वर्य प्राप्ति के सहित जीवन्मुक्त होकर, प्रारब्ध भोगावसान काल में, उपाधि विनिर्मुक्त ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है।

अत्र विशेष ज्ञातव्य विषय यह है कि, श्रुति भगवती ने "सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्राय नेच्छन्ति" इत्यत्र स्त्री शब्द के सहित शूद्र शब्द का प्रयोग करने के अनन्तर, "योजानीते सोऽमृतत्वंच गच्छति स्त्रीपुंसयोर्वा" अत्र स्त्री शब्द के सहित शूद्र शब्द का प्रयोग न करके, सामान्यतः पुंस शब्द का प्रयोग करके, यह भाव द्योतन किया है कि स्वदेशी विदेशी जो कोई भी क्यों न हों वैदिक धर्मानुसार साधन करने की शक्ति तथा रुचि संपन्न सामान्य नर नारियों का वेद शास्त्रोक्त सामान्य मंत्र में ही अधिकार है। और साधन चतुष्टय संपन्न असामान्य नरनारियों का चतुर्वर्ग फलप्रद विशेष मंत्र में भी अधिकार है।

शेष वक्तव्य यह है कि, उपरोक्त महोपनिषत्, तथा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वृहदारण्यक उपनिषत्, अपिच ब्रह्मविद्या उपनिषत् तथा नृसिंह पूर्वतापिन्युपनिषदों में वर्णित मंत्राधिकार संबंधी लगभग एक ही अभिप्राय प्रकाशक, बहुसंख्यक प्रमाण वाक्यों से, पारस्परिक अविरुद्धतया भलीभाँति प्रमाणित हुआ है कि, स्वदेशी विदेशी जो कोई भी क्यों न हो, वैदिक धर्मानुसार साधन करने की शक्ति तथा रुचि संपन्न साधन चतुष्टय विरहित सामान्य नर नारियों का तो, वेदशास्त्रोक्त सगुण ब्रह्म ईश्वरोपासन संबंधी सामान्य मंत्र में ही अधिकार है। और साधन चतुष्टय संपन्न असामान्य नरनारियों का चतुर्वर्ग फलप्रद निर्गुण ब्रह्म का उपासन संबंधी विशेष मंत्र में भी अधिकार है। परंतु वैदिक मंत्र में स्त्रीशूद्र का अधिकार नहीं है, ऐसा वाक्य तो वेदशास्त्र में कहीं भी देखने में नहीं आता है। तथापि-गुरु परंपरा प्राप्त भ्रमवशतः अथवा जिस किसी कारण से ही क्यों न हो, आजकल भारतवर्ष के विकृत सनातनधर्म प्रचारक अति उच्च कोटि के आचार्यगण भी उपरोक्त "सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्राय नेच्छन्ति" इस वेदवाक्य का रहस्योद्घाटन करने में असमर्थ होकर, कपोल कल्पना करके, सावित्री शब्द से, उपनयन में विनियोग गायत्री महामंत्र का ग्रहण करते हैं। एवं प्रणव शब्द से, निर्गुण ब्रह्म बोधक केवल प्रणव, तथा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सगुण ब्रह्मबोधक केवल प्रणव, अपिच अन्यान्य मंत्र के सहित वीजभूत प्रणव, अर्थात् चाहे कैसा ही प्रणव क्यों न हो, सकल प्रणव का ही ग्रहण करते हैं। और यजुर्लक्ष्मी शब्द से क्या ग्रहण करना उचित है, उसका तो निश्चय ही नहीं होता है। अर्थात् कल्पना योग्य कोई मंत्र ही दृष्ट नहीं होता है। परंतु अंधाधुंध ऐसा कहते हैं कि "यजुर्लक्ष्मी" शब्द से यजुः और लक्ष्मी वीज (श्रीं) ग्रहण करना उचित है। केवल इतना ही नहीं ? कोई कोई आचार्यदेव तो भरपूर सभा के बीच में "सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्राय नेच्छन्ति" इस वेदवाक्य का प्रमाण देकर, ऐसा प्रवचन अथवा व्याख्यान करते हैं कि—किसी भी वैदिक मंत्र में स्त्री शूद्र का अधिकार नहीं है। श्रोताओं के बीच में, कोई जिज्ञासु यदि निर्विरोध अर्थ समझने के लिये, प्रवचनकर्ता से ऐसा प्रश्न करे कि भगवन् ! आप तो कहते हैं कि किसी भी वैदिक मंत्र में स्त्री शूद्रों का अधिकार नहीं है। परंतु मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि, "सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्राय नेच्छन्ति" इस वेदवाक्य द्वारा भी यही प्रमाणित होता है कि, सावित्री और प्रणवादि निषिद्ध मंत्रों को छोड़ के, अन्यान्य वैदिक मंत्र में स्त्री शूद्र का भी अधिकार है। अतः कृपया मेरी इस आशंका की

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



निवृत्ति कीजिये । तो प्रवचनकर्ता ऐसा उत्तर देता है कि भाष्य विना श्रुति वाक्य का रहस्य समझना बहुत ही कठिन है ।

अतएव स्मृति पुराणों के वाक्य द्वारा ही, श्रुति वाक्य का अर्थ समझना उचित है । मनुस्मृति में वर्णित हुआ है कि स्त्री शूद्रों का उपनयन संस्कार में अधिकार नहीं है । तथा स्त्रियों का जात कर्मादि कार्यसमूह देह संस्कार के लिये मंत्र विना ही संपादन करना उचित है । गायत्री मंत्र में अधिकार न होने के कारण, तथा उपनयन संस्कार न होने के कारण, स्त्री शूद्र का वेदाध्ययन में, अपिच किसी भी वैदिक मंत्र में अधिकार नहीं है । अतएव "सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्राय नेच्छन्ति" इस वेदवाक्य का गूढ़ार्थ यही समझना उचित है कि किसी भी वैदिक मंत्र में स्त्री शूद्र का अधिकार नहीं है । अलम् । यहाँ पर ही प्रवचन समाप्त हुआ ।

आचार्यदेव के अति अद्भुत प्रवचन को श्रवण करके विचार विहीन अन्ध विश्वासी नर नारीवृन्द जो, अत्यन्त प्रसन्न होते हैं; वह भी मेरा अविदित नहीं है । परंतु विकृत सनातनधर्म प्रचारक आचार्यदेव के कपोल कल्पित उस प्रवचन को श्रवण करके, आधुनिक काल के प्रचलित सांप्र-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



दायिक संस्कार विरहित, वैदिक धर्मानुरत, शिवशिष्य अपठित विद्वान वनवासी मैं निर्मलानन्द प्रसन्न नहीं हो सकता हूँ। क्योंकि सृष्टि-स्थिति प्रलयकर्ता अपिच भोगापवर्गदाता सगुण ब्रह्म श्री श्री भगवान देवत्रय की असीम कृपा से मैं भलीभाँति जानता हूँ कि, विकृत सनातनधर्म प्रचारक आचार्यदेव कृत व्याख्या अति अयुक्ति युक्त; तथा पूर्णतया ही वेदविरुद्ध, अपिच विश्वशांति का अत्यन्त बाधक है। और मेरा किया हुआ, पूर्वापर वेदवाक्य के सहित निर्विरोध भाषार्थ, अति युक्तियुक्त, तथा पूर्णतया ही वेदवाक्य के अनुरूप, अपिच विश्वशांति का अत्यन्त साधक है। और मुझे भलीभाँति यह भी विदित हुआ है कि नृसिंह पूर्वतापिनी आदि उपनिषदों का बँगला अनुवाद, और गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित हिंदी अनुवाद अबतक जो कुछ प्रकाशित हुआ है, उस अनुवाद का कोई कोई स्थल मूलविरुद्ध अपिच कपोल कल्पित है। अतएव भेड़ चालवत् परिणाम अथवा फलविचार न करके, दूसरे का अनुसरणकारी अन्धविश्वासी बुद्धिमान, बुद्धिमती नरनारियों के प्रति मेरा कहना यह है कि, केवल कपोल कल्पित अनुवाद के ऊपर ही निर्भर न करके, किंचित कष्ट करके नृसिंह पूर्वतापिन्युपनिषदान्तर्गत, प्रथम उपनिषदुक्त विधिनिषेध, और फलवर्णन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



के सहित, तथा चतुर्थ उपनिषद में वर्णित सावित्री आदि मंत्रों का स्वरूप वर्णन के सहित मेरा किया हुआ निर्विरोध भाषार्थ, ध्यानपूर्वक मिलाकर, निःसन्देहतया जो ठीक वा उचित समझ में आ जाय, तदनुसार ही स्वकीय कर्त्तव्य कार्यसंपादन करें तो अच्छा है।

अन्य वक्तव्य विषय यह है कि

यद्यपि वेदशास्त्रोक्त प्रमाण वाक्य द्वारा प्रमाणित विषय पर, पुनः वेदमूलक स्मृति पुराणादि शास्त्रोक्त प्रमाण वाक्य प्रदर्शन करना निष्प्रयोजन है। तथापि विकृत सनातन धर्म प्रचारक आचार्यवृन्द, जिस मनुस्मृति की दोहाई देकर ऐसा कहते हैं कि, स्त्रीशूद्रों का किसी भी वैदिक मंत्र में अधिकार नहीं है। उस मनुस्मृति वर्णित मंत्राधिकार संबंधी प्रधान-प्रधान वाक्यों का भी निर्विरोध अर्थ विचार करना आवश्यक है।

कलियुग के ईश्वरावतार श्री श्री भगवान बुद्धदेव ने जिस कारण से, परम कल्याणकारक वैदिकधर्म को दबाकर बौद्धधर्म का प्रचार किया था। अनुमान है कि, उसी कारण से, मनुस्मृति के वक्ता भृगु जी महाराज ने, ऐसा दाँवपेंच घुमाकर, मंत्राधिकार संबंधी अति रहस्यपूर्ण वाक्यों का प्रयोग किया है कि जिन वाक्यों का रहस्योद्घाटन करने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



में, मनुस्मृति के भाष्यकार मेधातिथिजी महाराज तथा प्रसिद्ध टीकाकार कुल्लूक भट्टजी महाराज प्रभृति आधुनिक काल के अति उच्चकोटि के आचार्यवृन्द भी असमर्थ हुए हैं, वह श्लोक निचय विचार के लिये यहाँ पर उद्धृत किया जाता है। यथा :—

उपनयन के पूर्व कृत्य केशान्त कर्म के अन्तिम काल के कथन करने के अनन्तर, मनुस्मृति में वर्णित हुआ है कि—

१० ९ ११ ५ ६ ३ ४
अमंत्रिका तु कार्य्येयंस्त्रीणामावृदशेषतः।
८ ७ २ १
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् ॥
मनु० द्वितीय अध्याय ६६ श्लोक ॥

भृगुजी महाराज के इस रहस्यपूर्ण वाक्य का सुस्पष्ट भाषार्थ यह है कि, वेद और वेदमूलक शास्त्र में संस्कार समूह का जैसा पूर्व पश्चादनुक्रम, अपिच समय निर्धारित हुआ है, तदनुक्रम से अशेषतः यह जात कर्मादि के शान्त पर्यन्त क्रिया, स्त्री पुरुषों के देह संस्कार के लिये, यथाविधि मंत्र के सहित भलीभाँति संपादन करना उचित है। और यदि अशिक्षित अथवा अविज्ञात होवे, अर्थात् यदि मंत्र नहीं जानता है तो मंत्र विना ही केशान्त पर्यन्त संस्कार कार्य लौकिक रीति से संपादन करना कर्तव्य है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अत्र विशेष वक्तव्य यह है कि

वेद और वेदाविरुद्ध स्मृति आदि शास्त्रोक्त अति रहस्यपूर्ण वाक्य निचय के अप्रकटित विषयों को भलीभाँति प्रकट करना ही, भाष्यकार तथा टीकाकारों का परम कतव्य है। अन्यथा अनर्थ वा हानि होती है। अतएव पूर्वोक्त वेदवाक्यों के सहित निर्विरोध अर्थ करने के लिये, अथवा कही कि भृगु जी महाराज के रहस्योद्घाटन करने के लिये, मैंने अत्र श्लोक स्थित स्त्री शब्दोपलक्षित पुरुष का भी ग्रहण किया है। अपिच मनुस्मृति के कहीं भी पृथक् रूप से पुरुषों का जात कर्मादि संस्कार वर्णित नहीं हुआ है एवं पुरुषों का भी जात कर्मादि संस्कार यथाविधि संपादन करना अभीष्ट है। अतः स्त्री शब्दोपलक्षित पुरुषों का ग्रहण न करने से भृगुजी महाराज का अभिप्राय भी प्रकट नहीं होता है।

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवागुरौवासो गृहार्थोऽग्नि परिक्रिया॥

मनु द्वितीय अध्याय ६७ श्लोक

भृगु जी महाराज के अत्यन्त रहस्यपूर्ण इन वाक्यों का सुस्पष्टी कृत अर्थ यह है कि, मंत्र न जानने के कारण, जो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सकल स्त्री पुरुषों का केशान्त पर्यन्त कर्म निचय मंत्र विना ही, संपादित हुआ है, उन लोगों का भी, विवाह संबंधी अर्थात् विवाह के पूर्व कृत्य उपनयन और समावर्तन संस्कार कार्य, एवं विवाह संस्कार कार्य वैदिक मंत्र से ही संपादन करना शास्त्रविहित है। परंतु जो सकल अधिक वयस्क स्त्री पुरुषों के उपनयन संस्कार के अनन्तर अति अल्प काल के बीच में ही समावर्तनान्तर विवाह होता है; उन लोगों के उपनयन के अनन्तर गुरु समीप में वासपूर्वक वेदाध्ययन करना असंभव हेतु, भृगु जी महाराज ने कहा है कि— गृहस्थाश्रमी के प्रयोजनीय संध्योपासन, तथा गृहपति अग्निदेव की सेवा पूजा, अपिच अग्निहोत्रादि नित्य नैमित्तिक कार्यसमूह यथाविधि संपादन करना ही, गुरु समीप में वास-पूर्वक वेदाध्ययन है।

अत्रापि विशेष वक्तव्य यह है कि "स्त्रीपुंसयोर्वा" इत्यादि वेदवाक्यों के सहित, निर्विरोध अर्थ करने के लिये और मनुस्मृति में, कहीं भी पृथक् रूप से पुरुषों का उपनयन संस्कार वर्णित नहीं हुआ है, इस हेतु, तथा भृगु जी महाराज के गुप्त अभिप्राय प्रकट करने के लिये, अपिच विवाह संस्कार कार्य, स्त्री पुरुषों का ही शास्त्रविहित होने के कारण, मैंने यहाँ पर भी स्त्री शब्दोपलक्षित पुरुष का भी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ग्रहण किया है। अतः मनुस्मृति उक्त उपरोद्धृत श्लोक द्वय के मत्कृत निर्विरोध व्याख्या द्वारा भी यही प्रमाणित होता है कि—पुरुष के जैसा स्त्रियों का भी उनपयन संस्कार में, तथा वैदिक मंत्र में अधिकार है।

विशेष

अत्र वक्तव्य यह है कि—

पूर्वोद्धृत "सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्राय नेच्छन्ति" अत्र "स्त्रीशूद्राय" शब्दों का प्रयोग करने के अनन्तर "योजानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति स्त्रीपुंसयोर्वा" अत्र "स्त्री" शब्द के सहित शूद्र शब्द का प्रयोग न करके, सामान्यतः पुंस शब्द का प्रयोग करके, श्रुति भगवती ने जैसे सार्ववर्णिक स्त्री पुरुषों का ही ग्रहण किया है।

तैसा भृगुजी महाराज ने भी, नवमअध्यायके प्रारंभ में "पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव धर्म्येवर्त्मनि तिष्ठतोः" इत्यत्र सामान्यतः स्त्री पुरुष दोनों शब्दों का प्रयोग करने के अनन्तर षष्ठ श्लोक स्थित

"इमंहि सर्ववर्णानां पश्यन्तोधर्ममुत्तमम्"

यहाँ पर "सर्ववर्णानां" शब्द का प्रयोग करके सार्ववर्णिक स्त्री पुरुषों का ही ग्रहण किया है। मनुस्मृति के नवम अध्याय में, कूटनीतिज्ञ भृगु जी महाराज ने, मिथ्या

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भाषण, व्यभिचार, काम क्रोध कुटिलता, रागद्वेष, द्रोहभाव, स्नेहराहित्य इत्यादि अशेष प्रकार के दोष कीर्तनपूर्वक, अधर्मानुरत अति मन्दमति स्त्री पुरुषों की निन्दा करते हुए कहा है कि—

नास्ति स्त्रीणां क्रिया मंत्रैरितिधर्मोव्यवस्थितः ।
निरिन्द्रियाह्यमंत्राश्चस्त्रियोऽनृतमितिस्थितिः ।

मनु० नवम अध्याय १८ श्लोक

निर्विरोध भाषार्थ—धर्मशास्त्र द्वारा व्यवस्थित नियम ऐसा है कि, पूर्वोक्त मिथ्या भाषण, व्यभिचार, कुटिलता, द्रोहभाव इत्यादि दोषदुष्ट जो सकल स्त्री पुरुष हैं, उन लोगों का वैदिक मंत्र के सहित हवनादि धार्मिक कार्य करने का अधिकार नहीं है। क्योंकि प्रतिदिन मिथ्या भाषण, तथा व्यभिचारादि अधर्माचरण में ही निरत रहने के कारण वे सर्वदा ही अशुचि वा अपवित्र भाव से अवस्थान करते हैं। अतः वे "अमंत्रा" अर्थात् मंत्ररहित हैं। तात्पर्य यह है कि, सदा ही अधर्म निरत अति मन्द मति स्त्री पुरुषों का निन्दापूर्वक, वैदिक मंत्र में अनधिकार कथन करते हुए, भृगु जी महाराज ने यह भाव द्योतन किया है कि, वे नरनारियाँ अधर्म से निवृत्त होके, शास्त्रीय विधि अनुसार प्राजापत्य चान्द्रायणादि व्रतानुष्ठान द्वारा पाप विनिर्मुक्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तथा मंत्राधिकारी होकर, वेदविहित परम कल्याणकारक नित्य कर्मांगभूत संध्योपासन, और यथाविधि पंचयज्ञादि नित्य नैमित्तिक धर्म कार्य में प्रवृत्त होवें। वेदनिषिद्ध अधर्माचरण से निवृत्त, अपिच प्रायश्चित्त द्वारा पवित्र कराके, वेदविहित धर्माचरण में प्रवृत्त कराना ही, धर्मशास्त्रोक्त निन्दा और मंत्ररहित करने का उद्देश्य का अभिप्राय है। अन्य कुछ भी अभिप्राय नहीं है।

## अत्रापि विशेष वक्तव्य यह है कि--

वेद वाक्यों के सहित तिर्विरोध अर्थ करने के लिये, अथवा कहो कि, भृगु जी महाराज का अभिप्राय द्योतन करने के लिये, मैंने यहाँ पर भी स्त्री शब्दोपलक्षित, पुरुष का भी ग्रहण किया है। क्योंकि स्त्री के जैसा पुरुष भी जो पूर्वोक्त मिथ्या भाषणादि निन्दनीय कार्य निचय संपादन करता है। सो तो प्रत्यक्ष प्रमाण से भी सुसिद्ध है। अपिच व्यभिचार कार्य भी तो स्त्री पुरुषों का ही संभव है। कोई भी पुरुष यदि व्यभिचारी नहीं होवे तब तो कोई स्त्री भी व्यभिचारिणी नहीं हो सकती है॥



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



न शूद्रेपातकं किंचिन्नच संस्कार मर्हति ।
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात् प्रतिषेधनम् ॥
मनु० दशम अध्याय १२६ श्लोक

निर्विरोध भाषार्थ :—शास्त्र निषिद्ध पाप कार्य करने पर भी, अति अशिक्षित, तथा कर्तव्याकर्तव्य ज्ञान-विरहित अत्यन्त अबोध शूद्रादियों को पाप नहीं लगता है; अर्थात् अल्प पाप लगता है । एवं वे पाप निवृत्ति कारक, अथवा चित्त संशोधक चान्द्रायण प्राजापत्यादि तपश्चरण करने के भी योग्य नहीं है । अपिच उन लोगों का यज्ञादि धर्म कार्य में भी अधिकार नहीं है । परंतु वे यदि सज्जनों की निष्काम सेवा, तथा सत्संग के प्रभाव से, यथोचित शिक्षित और धर्म ज्ञान संपन्न होकर वेद शास्त्रोक्त विधि अनुसार नित्य कर्मांगभूत संध्योपासन तथा पंचयज्ञादि धर्माचरण करने के लिये प्रवृत्त होवे तो प्रतिषेध वा निषेध भी नहीं है । तात्पर्य यह है कि वेद शास्त्रोक्त विधि अनुसार धर्माचरण करने की शक्ति तथा रुचि संपन्न, स्त्री शूद्रादि जो कोई भी क्यों न हो "न धर्मात् प्रतिषेधनम्" अर्थात् ईश्वरोपदिष्ट वैदिक धर्म से किसी का भी प्रतिषेध अथवा कहो कि रोक टोक नहीं है ।

अत्रापि विशेष वक्तव्य यह है कि श्रुति वाक्यों के सहित

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



निर्विरोध अर्थ करने के लिये, अथवा कहो कि भृगु जी महाराज का अभिप्राय द्योतन करने के लिये, मैंने यहाँ पर शूद्र शब्दोपलक्षित शूद्रवत् अशिक्षित और कर्तव्याकर्तव्य ज्ञान विरहित अबोध ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा स्त्री का भी ग्रहण किया है। क्योंकि स्त्री तथा ब्राह्मण आदि में भी, शूद्रवत् अशिक्षित, और कर्तव्याकर्तव्य ज्ञानविरहित अबोध जनसमूह दृष्ट होता है।

अति अशिक्षित और कर्तव्याकर्तव्य ज्ञान परिशून्य स्त्री शूद्रादियों का वैदिक धर्माचरण में अनधिकारत्व द्योतन, अपिच सज्जनवृन्द की निश्काम सेवा और सत्संग के प्रभाव से, यथोचित शिक्षित और कर्तव्याकर्तव्य ज्ञानसंपन्न स्त्री-शूद्रादियों का वैदिक धर्माचरण में अधिकारत्व द्योतन करने के अनन्तर, त्रिकालदर्शी भृगु जी महाराज ने आत्मधर्मत्यागी, बौद्ध, जैन, ईसाई, मुसलमान प्रभृति उपधर्मियों के परम कल्याणार्थ ऐसा उपदेश प्रदान किया है कि—

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतांवृत्तमनुष्ठिताः।
मंत्रवर्ज्यंन दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च॥
मनु० दशम अध्याय १२७ श्लोक

निर्विरोध भाषार्थ—विश्वहितैषी त्रिकालदर्शी भृगु जी महाराज का उपदेश यह है कि कलियुग के प्रभाववशतः

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ईश्वरोपदिष्ट वैदिक धर्म को परित्याग करके, बौद्ध, जैन, ईसाई, मुसलमान प्रभृति उपधर्म ग्रहण करने के कारण जो सकल नरनारियाँ, गायत्री आदि मंत्र विवर्जित हुए हैं। उन लोगों के बीच में जो सकल सदाचारी आस्तिक नरनारियाँ वेदान्त शास्त्रावलोकन, तथा साधुसंग के प्रभाव से, धर्म ज्ञान सुसंपन्न, अपिच वेदोक्त धर्माचरण करने की इच्छा समन्वित होकर, दुख की आत्यन्तिक निवृत्ति, तथा नित्य निरतिशय सुख संप्राप्तिरूप, कैवल्य मुक्तिलाभार्थ, पुनः स्वकीय वैदिक धर्म का ही अवलंबनपूर्वक सज्जनवृन्द से आचरित गायत्री आदि मंत्रों से धर्मकार्यानुष्ठित हो के, अर्थात् यथाविधि वेदोक्त धर्म कार्य का अनुष्ठान करके, प्रशंसा को ही प्राप्त होते हैं। वे नरनारियाँ निन्दा योग्य वा दोषभाक् नहीं हैं। क्योंकि यद्यपि वे स्वकीय धर्म को परित्याग करने के कारण वैदिक मंत्र विवर्जित हुए थे। तथापि अब तो वे वैदिक धर्म का ही अवलंबन करके सांप्रदायिक रागद्वेष विवर्जित होकर, विश्वशान्ति वा आत्मकल्याणार्थ निष्काम कर्म और उपासना आदि धर्माचरण में ही प्रवृत्त हुए हैं।

अत्र वक्तव्य यह है कि मनुस्मृति वर्णित उपरोद्धृत श्लोक निचय के, मत्कृत रहस्योद्घाटनकारक व्याख्या से

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भी यही प्रमाणित होता है कि स्वदेशी विदेशी जो कोई भी क्यों न हो, वेदशास्त्रोक्त विधि अनुसार विश्वशान्ति वा आत्मकल्याणार्थ संध्योपासन और पंचयज्ञादि निष्काम कर्मादियों का अनुष्ठान करने की शक्ति तथा रुचि संपन्न समस्त नरनारियों का ही निज निज शक्ति-अनुसार सामान्य विशेष वैदिक मंत्रों में अधिकार है। अर्थात् उपरोक्त गुण संपन्न साधनचतुष्टयविरहित सामान्य नरनारियों का तो वेदशास्त्रोक्त सगुणब्रह्म ईश्वरोपासन संबंधी सामान्य मंत्र में ही अधिकार है और साधन चतुष्टय संपन्न असामान्य नरनारियों का वेदशास्त्रोक्त निर्गुणब्रह्म के उपासन संबंधी विशेष मंत्र में भी अधिकार है।

अब श्रुति मूलक गृह्य सूत्रादियों के प्रमाण वाक्य भी अति संक्षेपतः यहाँ पर वर्णन किये जाते हैं। यथा :—

( १ )

"प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीं अभ्युदानयन जपेत्
सोमोऽददद्गन्धर्वायेति"
गोभिल गृह्यसूत्र ॥२-१-१९॥

भावार्थ—उत्तरीय वस्त्र समावृता, कुंकुम आदि रंजिता यज्ञोपवीत धारिणी कन्या को समीप में आनयन करके,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सोमोऽददद्गन्धर्वायेति.....मंत्र जप करे।

( २ )

"द्विविधाहि स्त्रियः ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्चेति। तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनं अग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहेतु भैक्षचर्येति। सद्योवधूनां उपनयनंकृत्वा विवाहकार्यश्चेति। हारीत॥

भाषार्थः—ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू ये दो प्रकार की स्त्रियाँ हैं। तत्र ब्रह्मवादिनियों का, उपनयन, समिदाहुति, वेदाध्ययन, तथा स्वगृह में भिक्षाचरण करना शास्त्रविहित है। और सद्योवधुओं का उपनयन करके विवाह करना उचित है॥

इति हारीत संहिता॥

( ३ )

पुराकल्पेकुमारीनां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्ययनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा॥
पिता पितृव्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत् परः।
स्वगृहे चैव कन्याया भैक्ष्यचर्याविधीयते॥
वर्जयेत् अजिनंचीरं जटाधारण मेव च॥

इति यमस्मृति॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भाषार्थः—यमस्मृति में वर्णित हुआ है कि, पुराकल्प में अर्थात् शिक्षादि वेदांगान्तर्गत यागक्रियोपदेशक प्राचीन कल्प सूत्र में, अथवा कहो कि पुराकल्पाख्य ग्रंथ में वर्णित हुआ है कि कुमारियों का उपनयन, सन्ध्योपासन, वेदाध्ययन, तथा हवनादि कार्य इष्ट है, अर्थात् शास्त्रविहित है। परंतु पिता पितृव्य अथवा भ्राता प्रभृति स्वजनवृन्द ही कुमारियों को पढ़ावे अन्य पुरुष नहीं पढ़ावे और कन्या की भैक्षचर्या स्वगृह में ही शास्त्रविहित है, अपिचकन्या, मृगचर्म, वल्कल वस्त्र तथा जटा धारण वर्जन करे।

अत्र वक्तव्य यह है कि श्रुति तथा श्रुतिमूलक मनुस्मृति हारीतसंहिता, गृह्यसूत्र, अपिच यमस्मृति उद्धृत शिक्षादि वेदांगान्तर्गत यागक्रियोपदेशक पुराकल्प प्रभृति सकल शास्त्रोक्त प्रमाण वाक्यों से यही प्रमाणित होता है कि स्वदेशी विदेशी जो कोई भी क्यों न हो, भोगापवर्गप्रद ईश्वरोपदिष्ट वेदशास्त्रोक्त विधि अनुसार, विश्वशांति वा आत्मकल्याणार्थ नित्यकर्मांगभूत संध्योपासन, और पंचयज्ञादि निष्काम कर्मादियों का, अनुष्ठान करने की शक्ति तथा रुचि संपन्न स्त्रीशूद्रादि, विश्व के समस्त नरनारियों का ही निज निज शक्ति अनुसार सामान्य विशेष वैदिक मंत्र में अधिकार है। परंतु विकृत सनातनधर्म प्रचारक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अति उच्च कोटि के आचार्यवृन्द भी जो, ऐसा कहते हैं कि स्त्रीशूद्रों का वैदिक मंत्र में अधिकार नहीं है। इसका कारण यह है कि मनुस्मृति के भाष्यकार, मेधातिथि जी महाराज ने, कलियुग के प्रभाववशतः मनुस्मृति वर्णित निम्नोद्धृत श्लोक स्थित वाक्यनिचय के, रहस्योद्घाटन करने में असमर्थ होकर, कपोल कल्पना करके अति अयुक्तियुक्त, मूलवहिर्भूत श्रुतिस्मृति आदि शास्त्र विरुद्ध भाष्य किया है। एवं कलियुग के प्रभाववशतः ही, मनुस्मृति के प्रसिद्ध टीकाकार कुल्लूक भट्ट जी महाराज ने भी, भेड़चालवत् विना विचार से, मेधातिथि कृत कपोल कल्पित भाष्य का ही अनुसरण किया है। अपिच कलियुग के प्रभाववशतः ही, विकृत सनातन धर्मप्रचारक अति उच्चकोटि के आचार्यवृन्द ने भी, भेड़ चालवत् बिना विचार से, श्रुतिस्मृति आदि शास्त्रविरुद्ध, मूलवहिर्भूत, कपोल कल्पित भाष्य और टीका के ऊपर ही निर्भर करके, ऐसा कहते हैं कि स्त्रीशूद्रों का वैदिक मंत्र में अधिकार नहीं है। सुतरां विश्वशान्ति का अत्यन्त बाधक धर्म का हानिकारक, अधर्म विवर्द्धक यह भाष्य ही, वैदिक मंत्र में स्त्री शूद्रों का अनधिकार वर्णन करने का मुख्य वा प्रधान कारण है। अतएव सर्वसाधारण के विदितार्थ, मनुस्मृति वर्णित मंत्राधिकार संबंधी श्लोक निचय के सहित,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मेधातिथि कृत भाष्यानुसरणकारी कुल्लूक भट्ट कृत टीका, एवं बंबई नगरस्थ "श्रीवेंकटेश्वर" मुद्रण यंत्रालय से प्रकाशित केशव द्विवेदीकृत भाषा टीका, नीचे उद्धृत किया जाता है। यथा :—

अमंत्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथा क्रमम् ॥६६॥
द्वितीय अध्याय ॥

कुल्लूक भट्टकृत टीका—

अमंत्रिकेति। इयमावृदयंजात कर्मादि क्रिया कलापः समग्र उक्तकाल क्रमेण शरीर संस्कारार्थं स्त्रीणाममंत्रकः कार्यः ॥

केशवद्विवेदीकृत भाषा टीका—

यह सब स्त्रियों का जात कर्मादि क्रियाकलाप कहे हुए काल के क्रम से शरीर संस्कार के लिये बिना मंत्रों के करना चाहिये ॥६६॥अ० २॥

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौवासो गृहार्थोऽग्नि परिक्रिया ॥६७॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कुल्लूक भट्टकृत टीका—

वैवाहिक इति। विवाह विधिरेवस्त्रीणां वैदिकः संस्कार उपनयनाख्यो मन्वादिभिः स्मृतः। पतिसेवैव गुरुकुले वासो वेदाध्ययन रूपः। गृहकृत्यमेव सायं प्रातः समिद्धोमरूपोऽग्निपरिचर्या। तस्माद्विवाहादेरूपनयनस्थाने विधानादुपनयनादेर्निवृत्तिरिति ॥६७॥ अ० २॥

केशव द्विवेदीकृत भाषा टीका—

इससे स्त्रियों का भी उपनयन प्राप्त होने पर विशेष कहते हैं। विवाह की विधि ही मनु आदि ने स्त्रियों का वैदिक संस्कार अर्थात् उपनयन कहा है, और पति की सेवा ही गुरुकुल में वास और वेद का पढ़ना कहा है, और घर का काम ही संध्या सवेरे समिधों का होम, और लेप अग्नि की सेवा कही है, तिससे विवाह आदिकों को ही यज्ञोपवीत आदि के स्थान में जानना चाहिये ॥६७॥

नास्ति स्त्रीणां क्रियामंत्रैरिति धर्मो व्यवस्थितः।
निरिन्द्रियाह्यमंत्राश्चस्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः ॥
मनु० नवम अध्याय १८ श्लोक ॥

कुल्लूक भट्टकृत टीका—

नास्तीति। जातकर्मादि क्रिया स्त्रीणां मंत्रैर्नास्ती-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



त्येषा शास्त्रमर्यादा व्यवस्थिता। ततश्चमंत्रवत् संस्कार-गणाभावान्न निष्पापान्तः करणाः। इन्द्रियं प्रमाणं, धर्म-प्रमाण श्रुति स्मृति रहितत्वान्न धर्मज्ञाः। अमंत्राः पापाप-नोदन मंत्रजप रहितत्वाज्जातेऽपि पापे तन्निर्णेजनाक्षमाः। अनृतवद शुभाः स्त्रियः इति शास्त्र मर्यादा तस्माद् यत्नतो रक्षणीया इत्यत्र तात्पर्यम् ॥१८॥ अ० नवम् ॥

केशव द्विवेदीकृत भाषा टीका—

स्त्रियों की जाति कर्मादि क्रिया मंत्र से नहीं होती हैं, यह शास्त्र की मर्यादा है, तिससे मंत्र सहित संस्कार न होने के कारण इनके अन्तःकरण पाप रहित नहीं होते हैं, इन्द्रिय प्रमाण हैं और धर्म में प्रमाण ऐसी श्रुतिस्मृति रहित होने से धर्मज्ञ नहीं होती हैं, और अमंत्र कहिये पाप के दूर करने वाले मंत्रोकरि रहित होने के कारण पाप होने पर भी उसके दूर करने को नहीं समर्थ होती हैं, झूंठ के समान स्त्रियाँ अशुभ हैं, यह शास्त्र की मर्यादा है। तिससे यत्न से रक्षा करने योग्य हैं यह तात्पर्य है ॥ नवम अध्याय १८ श्लोक ॥

न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति।
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् ॥
मनु० अध्याय दशम १२६ श्लोक ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कुल्लूक भट्टकृत टीका—

न शूद्रइति। लशूनादि भक्षणेन शूद्रे न किंचित्पातकं भवति। न तु ब्रह्मवधादपि। "अहिंसासत्यम्" इत्यादेश्चातुर्वर्ण्य साधारणत्वेन विहितत्वात्। न चाप्युपनयनादि संस्कारमर्हति, नास्याग्नि होत्रादि धर्मेऽधिकारोऽस्ति, अविहितत्वात्। न च शूद्रविहितत्वात्पाक यज्ञादिधर्मादस्य निषेधः। एवं चास्य सिद्धार्थत्वादयं श्लोक उत्तरार्थोऽनुवादः ॥१२६॥

केशव द्विवेदीकृत भाषा टीका

लहशुन आदि के खाने में शूद्र को कुछ पातक नहीं लगता है तो ब्रह्मवध आदि में तो होता ही है क्योंकि "अहिंसा-सत्यमस्तेयं" अर्थात् हिंसा न करना सत्य बोलना चोरी न करना यह चारों वर्णों को साधारणता से कहा है और यज्ञोपवीत आदि संस्कारों के योग्य नहीं है, और इसका अग्निहोत्र आदि कर्मों में अधिकार नहीं है क्योंकि विहित नहीं है और शूद्र को कहे हुए पाक यज्ञ आदि धर्म से इसका निषेध नहीं है अर्थात् पाक यज्ञ आदि करें ॥१२६॥

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतांवृत्तमनुष्ठिताः।
मंत्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ॥
मनु० दशम अध्याय १२७ श्लोक ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



## कुल्लूक भट्टकृत टीका—

धर्मेप्सव इति । ये पुनः शूद्राः स्वधर्म वेदिनो धर्म प्राप्तिकामास्त्रैवर्णिकानामाचारमनिषिद्धमाश्रितास्ते "नमस्कारेण मंत्रेण मंत्रान्तर रहितं पंचयज्ञान्नं हापयेत्" इतियाज्ञवल्क्य ववनान्नमस्कार मंत्रेण मंत्रान्तररहितं पंच यज्ञादि धर्मान् कुर्वाण न प्रत्यवयन्ति ख्यातिं च लोके लभन्ते॥१२७॥

## केशव द्विवेदीकृत भाषा टीका :—

अपने धर्म के जाननेवाले जो शूद्र धर्म प्राप्ति की कामना से जो निषिद्ध नहीं ऐसे तीनों वर्णों के आचार का आश्रय लेते हैं वे नमस्कार मंत्र से पंचयज्ञों को करे और दूसरे मंत्र के विना नमस्कार मंत्र से पंचयज्ञ आदि धर्म को करते हुये शूद्र दोषयुक्त नहीं होते हैं और लोक में ख्याति को प्राप्त होते हैं।

॥ अ० दशम १२७ श्लोक ॥

अथ मनुस्मृति वर्णित उपरोद्धृत श्लोक निचय के भाष्यकार तथा टीकाकारकृत व्याख्या की अति संक्षिप्त समालोचना की जाती है। यथा :—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



( १ )

मनुस्मृति आदि सकल शास्त्रों में ही उपनयन संस्कार को विवाह संस्कार से पृथक् रूप में ही वर्णन किया है। अपिच उपनयन शब्द विवाह का पर्यायवाचक भी नहीं है। अतएव भाष्यकार तथा टीकाकार कृत व्याख्या में, स्त्रियों के विवाह संस्कार को ही उपनयन संस्कार कहना, अति अयुक्तियुक्त, वा असंगत है।

( २ )

मनुस्मृति में तथा अन्यत्र भी संस्कार समूह का पूर्व पश्चादनुक्रम से, अशेषतः अर्थात् कोई भी संस्कार अवशेष न रह जाय इस प्रकार से, जात कर्मादि समस्त कार्य निचय संपादन करने की विधि वा आज्ञा प्रदान की है। अतएव भाष्यकार तथा टीकाकार कृत व्याख्या में, पूर्वकृत्य उपनयन और समावर्तन संस्कार न करके, विवाह करने की व्यवस्था प्रदान करना अति अयुक्तियुक्त, वा असंगत है।

( ३ )

भाष्यकार तथा टीकाकार कृत उपरोक्त व्याख्या जो, मूलवहिर्भूत कपोल कल्पित है, सो भी तो श्रुतिस्मृति

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



आदि शास्त्रों के ही अनुरूप, मेरा किया हुआ रहस्योद्घाटन कारक भाषार्थ के सहित मिलाके, अवलोकन करने पर, पक्षपात रहित बुद्धिमान बुद्धिमती नरनारियों के समझने में विलंब नहीं लगेगा।

( ४ )

भाष्यकार तथा टीकाकार कृत पूर्वोक्त व्याख्या जो, श्रुति स्मृति आदि समस्त शास्त्र विरुद्ध है, सो भी तो पूर्वोद्धृत अनेक प्रकार के श्रुतिस्मृति आदि शास्त्रीय प्रमाण वाक्यों से, भलीभाँति प्रमाणित हुआ है।

( ५ )

भाष्यकार तथा टीकाकार कृत उपरोक्त व्याख्या, वैदिक मंत्र में तथा वेदोक्त धर्मकार्य में, स्त्रीशूद्रों का अनधिकार द्योतक हेतु, रागद्वेषमूलक, विश्वशान्ति वा आत्मकल्याण का अत्यन्त बाधक और धर्म की हानिकारक, अपिच अधर्म विवर्द्धक है।

( ६ )

कर्मफलदाता परमेश्वर ने, भोगापवर्गार्थ मानववृन्द का सृजन किया है। एवं स्त्रीशूद्र भी पशु नहीं हैं, मानव

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



है। सुतरां ईश्वरकृत नियमानुसार उन लोगों को भी भोगापवर्ग अपेक्षित है। अतएव भोगापवर्ग प्रापक वैदिक मंत्र में, तथा वेदशास्त्रोक्त धर्माचरण में अनधिकार वर्णन करके, वेदोक्त विधि अनुसार, साधन करने की शक्ति तथा रुचि संपन्न स्त्री शूद्रादियों को, यथासंभव श्रेयस्कर भोग तथा मोक्ष प्राप्ति से वंचित करना अविचारमूलक तथा पापजनक है।

( ७ )

उपरोक्त दोष निचय से दूषित होते हुएभी यदि कोई पक्षपाती हठधर्मी ऐसा कहे कि, भाष्यकार तथा टीकाकार-कृत व्याख्या ही ठीक है तो उसको समझाने का प्रयत्न करना व्यर्थ चेष्टा वा निरर्थक हेतु, मुझे यही कहना पड़ेगा कि श्रुति विरुद्ध स्मृति आदि शास्त्रीय वाक्यों का प्रमाणत्व नहीं है। क्योंकि मनुस्मृति के भी द्वितीय अध्याय में यह बात वर्णित हुई है कि "धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुति" तात्पर्य यह है कि धर्मजिज्ञासुओं का श्रुति वाक्य ही परम अथवा कहो कि एक मात्र प्रमाण स्वरूप है। अर्थात् श्रुतिविरुद्ध स्मृति पुराणादि शास्त्रीय वाक्यों का प्रमाणत्व नहीं है। अलम्। यहाँ पर ही भाष्यकार

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तथा टीकाकारकृत व्याख्या की समालोचना समाप्त की जाती है।

अथ विनीत निवेदन यथा :—

( १ )

उपरोद्धृत बहुसंख्यक श्रुति वाक्यों से, तथा श्रुति मूलक मनुस्मृति, यमस्मृति, गृह्यसूत्र, हारित संहिता, पुराकल्प प्रभृति शास्त्रीय प्रमाणवाक्यों से, अपिच स्वकीय अनुभव से, भली भाँति प्रमाणित हुआ है कि सार्वदेशिक तथा सार्वजनिक ईश्वरोपदिष्ट वैदिक धर्मानुसार, विश्व-शांति वा आत्म कल्याणार्थ, साधन करने की शक्ति तथा रुचि संपन्न स्त्री शूद्रादि स्वदेशी विदेशी जो कोई भी क्यों न हो, विश्व के समस्त नर नारियों का ही निज निज शक्ति अनुसार, सामान्य तथा विशेष वैदिक मंत्र में, अपिच वेद-शास्त्रोक्त संध्योपासन और पंचयज्ञादि नित्य नैमित्तिक धर्मकार्य में अधिकार है। अतः विकृत सनातन धर्म प्रचारक आचार्य वृन्द से, विनीत निवेदन यह है कि कलियुग के प्रभावसमन्वित भाष्यकार तथा टीकाकारकृत, श्रुतिस्मृति आदि शास्त्र विरुद्ध व्याख्या के ऊपर ही, सदा निर्भर शील होकर, सांप्रदायिक रागद्वेष मूलक, तथा विश्व शांति वा



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



आत्मकल्याण के अत्यन्त बाधक, अपिच धर्म की हानिकारक, विकृत सनातन धर्म का प्रचार न करके, यदि प्रकृत सनातन धर्म का अर्थात् सार्वदेशिक तथा सार्वजनिक ईश्वरोपदिष्ट वैदिक धर्म का प्रचार करें तो धर्म की उन्नति हो सकती है। क्योंकि इंरेजी उन्नीस सौ चालीस एकतालीस सन् की लोकगणना के अनुसार चालीस कोटि भारतवासियों के बीच में दशकोटि मुसलमान एवं दशकोटि पतित शूद्र और बौद्ध जैन तथा सांप्रदायिक वैष्णव अपिच आर्यसमाजी प्रभृति जो सकल मानवगण, पूर्णतया वैदिक धर्म को नहीं मानते हैं, उन लोगों का भी संख्या अनुमान कुछ न्यूनाधिक दशकोटि रख लीजिये, और दशकोटि हिन्दू के बीच में पाँच कोटि स्त्री, एवं अनुमान दो कोटि शूद्र हैं। अतएव आप लोगों के विचार से, चालीसकोटि भारतवासियों के बीच में मात्र तीन कोटि भारतवासी वैदिक मंत्रों के तथा वेद शास्त्रोक्त धर्म कार्यों के अधिकारी हैं और इन तीन कोटि के बीच में, कितने संख्यक मानवगण, यथाविधि नित्यकर्मांगभूत संध्योपासन तथा पंचयज्ञादि नित्य नैमित्तिक धर्मकार्य संपादन करते हैं, सो आप लोग ही निश्चय कीजिये। मेरा तो अनुमान ऐसा है कि यथाविधि नित्य नैमित्तिक धर्म कार्य संपादन कारक जनवृन्द की संख्या

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अति अल्प ही है। एवं "संसर्गजा दोष गुणा भवन्ति" इस नियम के अनुसार, सदा ही अत्यधिक संख्यक अधर्मियों के साथ में रह कर, अति अल्प संख्यक धर्मात्माओं का यथा-विधि धर्म का संरक्षण करना भी अतिशय दुःसाध्य वा असंभव है। अतएव वैदिक धर्मानुसार साधन करने की शक्ति तथा रुचि संपन्न स्त्री शूद्रादियों को भी, आप लोग यदि सार्वदेशिक तथा सार्वजनिक ईश्वरोपदिष्ट वैदिक मंत्र में, तथा वेद शास्त्रोक्त नित्य कर्मांगभूत संध्योपासन और पंचयज्ञादि नित्यनैमित्तिक धर्म कार्यों में अधिकार प्रदान पूर्वक प्रकृत सनातन धर्म का अथवा कहिये कि ईश्वरोप-दिष्ट वैदिक धर्म का भली भाँति प्रचार करें तो धर्म की उन्नति वा धर्म संरक्षण होना संभव है।

( २ )

भारतवर्षीय राजा प्रजा जो कोई भी क्यों न हो, सकल सांप्रदायिक जनवृन्द से, विनम्र निवेदन यह है कि, आप लोग यदि नाम जात्यादि अन्य कुछ भी परिवर्तन अथवा परित्याग न करके, केवल वेद विरुद्ध आचरण तथा पारस्परिक राग-द्वेष मूलक सांप्रदायिक भाव निचय को परित्याग करके, सब से प्राचीन सार्वदेशिक तथा सार्वजनिक ईश्वरो-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पदिष्ट वैदिक धर्मानुसार विश्वशांति वा आत्मकल्याणार्थ निज-निज शक्ति अनुसार निष्काम कर्म और उपासना, अपिच ज्ञान-योगानुष्ठान प्रभाव से, दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति तथा नित्य निरतिशय सुख संप्राप्तिरूप कैवल्य मुक्तिलाभार्थ यथासंभव प्रयत्न करें तो अच्छा है। क्योंकि मुक्ति का साधनभूत (एक मात्र ईश्वरोपदिष्ट) वैदिक धर्मावलंबन बिना अशांति वा दुःख भोगने का हेतुभूत मिथ्या भाषण, व्यभिचार छींनाझपटी, रागद्वेष, विश्वास-घातकता, चोरी, डकैती प्रभृति अधर्माचरण से निवृत्त होना असंभव है।

( ३ )

संन्यासी आचार्य वृन्द से विनीत निवेदन यह है कि—

आदौ शमदम प्रायैर्गुणैः शिष्यं विशोधयेत्।
पश्चात् सर्वमिदं ब्रह्म शुद्धस्त्वमितिबोधयेत् ॥
प्रबुद्ध बुद्धेः प्रक्षीण भोगेच्छस्य निराशिषः।
नास्त्य विद्या मलमितिप्राज्ञस्तूपदिशेद्गुरुः ॥

श्रुत्या यदुक्तं परमार्थ मेव तत्संशयोनात्रततः समस्तम्।
श्रुत्या विरोधे न भवेत्प्रमाणं भवेदनर्थाय बिना प्रमाणम् ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उच्छास्त्रं शास्तितंचेति पौरुषं द्विविधंमतम् ।
तत्रोच्छात्रं मनर्थाय परमार्थाय शास्त्रितम् ॥
"पुंसः प्रव्रजनं प्रोक्तं नेतराय कदाचन"

इत्यादि श्रुतिवाक्य निचय को उलंघन करके, संन्यासाश्रम के अनधिकारी जनवृन्द को संन्यास दीक्षा प्रदान पूर्वक महावाक्यादि विशेष मंत्रों का उपदेश प्रदान नहीं करे तो अच्छा है ।

इति मंत्राधिकार समालोचना समाप्त ॥

## अथ गायत्री समालोचना—

उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम तथा मध्यभारतीय पंडित वृन्द के सहित बातचीत होने के कारण मैं भली भाँति जानता हूँ कि, आधुनिक काल के गुरु परंपरा प्राप्त भ्रमवशतः, आजकल भारतवर्ष के सकल आचार्यवृन्द ही, उपनयन संस्कार काल में "ॐ भूर्भुवः स्वः—तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात्" । ऐसा प्रणवरहित अव्यवस्थित गायत्री महामंत्र का उपदेश प्रदान करते हैं ।

यद्यपि अथर्ववेदीय सूर्योपनिषदुक्त "ॐभूर्भुवः सुवः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचो-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



दयात्"। इस मंत्र के सहित आलोचनीय गायत्री महामंत्र का सादृश्य है, तथापि यह मंत्र उपनयन में विनियोग गायत्री महामंत्र नहीं है। क्योंकि इस मंत्र के आदि में ". ॐभूर्भुवः सुवः" यह प्रणवादि व्याहृति त्रयात्मक मंत्र सन्निबद्ध हुआ है। परंतु उपनयन में विनियोगा गायत्री महामंत्र के अन्त में ". भूर्भुवः सुवरोम्"–इत्याकार प्रणवान्त महाव्याहृति मंत्र सन्निबद्ध हुआ है। अपिच सूर्योपनिषदुक्त मंत्र का विनियोग तथा ऋष्यादि, आलोचनीय गायत्री महामंत्र का विनियोग तथा ऋष्यादि से भिन्न है। अतएव सूर्योपनिषदुक्त मंत्रको उपनयन में विनियोग गायत्री महामंत्र रूप में कल्पना करना विचार संगत नहीं है।

अपिच योगी याज्ञवल्क्य कृत गायत्री तंत्र को, तथा पूज्यपाद शंकराचार्यकृत गायत्री महामंत्र के भाष्य को देख सुन के अति अल्प संख्यक मानवगण ". ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयादोम् इस प्रकार से गायत्री महामंत्र का जप करते हैं परंतु यह भी श्रुति प्रमाण विरुद्ध है।

नारायणोपनिषद में अतिसुस्पष्ट रूप से ही वर्णित हुआ है कि . ॐ भूः ॐ भुवः . ॐ सुवः . ॐ महः . ॐ जनः ॐ तपः . ॐ सत्यम्। . ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात् । ओमापो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म । भूर्भुवः सुवरोम् ।

अर्थात् उपनयन संस्कार काल में ".ॐ भूः, ॐ भुवः .ॐ सुवः, .ॐ महः, .ॐ जनः, .ॐ तपः, .ॐ सत्यम्"। यह सप्रणव सप्त व्याहृति मंत्र तथा "ओमापो ज्योतीरसो ऽमृतं ब्रह्म" यह प्रणवादि शिरोमंत्र, एवं सर्वान्त में "भूर्भुवः सुवरोम्" यह प्रणवान्ता महाव्याहृतिमंत्रता सप्रणव चतुर्विंशत्यक्षरा त्रिपदाषट् कुक्षिर्गायत्री महामंत्र का उपदेश प्रदान करना उचित है। परन्तु—

"स व्याहृतिं स प्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ।
त्रिः पठेदायतः प्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥"

इत्यादि वेदोक्त प्रमाण वाक्यतः उपरोक्त मंत्र चतुष्टय से प्राणायाम करने का नियम है। एवं इससे स प्रणव सप्त व्याहृति मंत्र को, और प्रणवादि शिरोमंत्र को अलग कर के, अवशिष्ट

"ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात् । भूर्भुवः सुवरोम् ।"

यह प्रणवान्त महाव्याहृति मंत्रान्त सप्रणव गायत्री महामंत्र सन्ध्योपासनादि काल में जप करने का नियम है।

उपनयन में विनियोग गायत्री महामंत्र संबंधी यह सकल

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वेद वाक्य देखते हुए भी, आधुनिक काल के विद्या धुरीण आचार्यगण, युक्ति तथा वेदोक्त प्रमाण वाक्य उल्लंघन अथवा उपेक्षा करके, अयुक्ति युक्त तथा प्रमाणत्व शून्य, वर्तमान काल के प्रचलित, भ्रांतिमूलक अशुद्ध पद्धति वाक्यानुसार, बीजभूत प्रणव रहित अव्यवस्थित गायत्री महामंत्र का उपदेश तथा जप करने की विधि वा सम्मति प्रदान करते हैं। अलम्, यहाँ पर ही उपोद्घात अथवा कहो कि भूमिका समाप्त करके, अधुना जिज्ञासु और पंडित वृन्द तथा स्वामी निर्मलानन्द का कथनोपकथन रूप में, गायत्री महामंत्र का अतिसंक्षिप्त समालोचना कार्य प्रारंभ किया जाता है। यथा:—

जिज्ञासु—सुनने में आता है कि गायत्री मंत्र में चतुर्विंशति अक्षर हैं, परंतु गिनती करने से तो त्रयोविंशति अक्षर होते हैं। इसका कारण क्या है ?

स्वामी जी—गायत्री मंत्र का स्वरूप क्या है ? सो बोलो।

जि०—तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्।

स्वा०—तत्पदके आदि में ॐकार मिला लो, तो चतुर्विंशति अक्षर पूर्ण होवेंगे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पंडितजी—तत्पद के आदि में ॐकार मिलाकर चतुर्विंशति अक्षर संख्या पूरी नहीं की जाती है। पिंगल सूत्रोक्त विधि अनुसार "वरेण्यं"पद के यंकार को विश्लेष अथवा पृथक् करते हुए, यंकार के आदि में ईकारागम करके, वरेणीयं इत्याकार पद बनाकर चतुर्विंशति अक्षर संख्या पूरी की जाती है।

स्वा०—मैंने पहिले भी यह बात अन्यान्य पंडितों के मुख से श्रवण किया है। परंतु इस प्रकार से "वरेण्यं" पद को विकृत वा रूपान्तरित करके, वरेणीयं पद बनाकर, चतुर्विंशति अक्षर संख्या पूरी करने में मुझे अनेक प्रकार के दोष देखने में आते हैं। यथा:—

( १ )

यद्यपि "वसवो गायत्री" इस प्रकार से साधरणतया अष्टाक्षर का गायत्री छन्द वर्णित हुआ है। तथापि सर्वत्र ही यह नियम लागू नहीं है। क्योंकि स्थल विशेष में न्यूनाधिक अक्षरों के छन्द भी देखने में आते हैं। जैसे—

"त्र्यंबकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिं वर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्॥"

वेदोक्त इस मंत्र के छन्द भी आठ अक्षर के हैं। परंतु

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इसके प्रथम पाद में सप्ताक्षर, एवं तृतीय पाद में नवाक्षर होते हुए भी छन्द भंग नहीं हुआ है। वैसे ही गायत्री महामंत्र के प्रथम पाद में, सप्ताक्षर होते हुए भी, छन्द भंग नहीं हुआ है। क्योंकि साधारणतः संवद्ध वर्णसमूह के अष्टाक्षर उच्चारण करने में जितना मधुरत्व वा आनन्द बोध होता है, विभिन्न वर्णोच्चारण के नियम तथा स्थान भेद निवन्धन किसी किसी स्थल संवद्धवर्ण समूह के सप्ताक्षर अथवा नवाक्षर उच्चारण करने में, उतना ही मधुरत्व वा आनन्द बोध होता है।

( २ )

छन्द संरक्षण तथा चतुर्विंशति अक्षर संख्या पूर्ण करने के लिए, अल्पज्ञ मानवरचित छन्द ग्रंथोक्त विधि अवलंवन करके, सर्वज्ञ सर्व नियंता ईश्वरोपदिष्ट वेद मंत्र के "वरेण्यं" पद को वरेणीयं बनाकर गायत्री महामंत्र को विकृतांग करना विचार संगत नहीं है, क्योंकि छन्द भी तो वेद का ही अंग है एवं पिंगल सूत्रकार के अपेक्षा वेदोपदेष्टा परमेश्वर का जो छन्द ज्ञान भी अधिक है, सो भी तो सनातनधर्मियों को अस्वीकार्य नहीं है। अपिच, विकृतांग मंत्र का जप करना तथा विपर्य्यस्वर से मंत्र का जप करना जो निष्फल किंवा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi.

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विपरीत फलदायक, अथवा हानिकारक है, सो भी तो सनातनधर्मी विचारवानों को अस्वीकार्य नहीं है।

( ३ )

आधुनिक काल के गुरु परंपरा प्राप्त भ्रमवशतः प्रमाण-भूत शास्त्रीय विधि उल्लंघन करके, श्रुतिउक्त सप्रणव गायत्री महामंत्र से, वीजभूत प्रणव को निकाल देने पर, गायत्री महामंत्र तो वीजरहित तथा अंगहीन होगा। एवं वीजरहित अंगहीन मंत्र का जप करने से जो केवल शास्त्रोक्त फल प्राप्ति नहीं होती है ऐसा नहीं किसी किसी स्थल में विपरीत फल-प्राप्ति वा हानि भी देखने में आती है।

( ४ )

सप्रणव गायत्री महामंत्र से, प्रणव को निकाल देने पर, श्रुति उक्त षटकुक्षि भी सिद्ध नहीं होती है।

प०—षटकुक्षि सिद्ध होने में क्या प्रतिवन्ध पड़ा है ?

स्वा०—षटकुक्षि क्या है ? सो वताओ।

पू०—प्रथमकुक्षि—"तत्सवितुर" द्वितीय कुक्षि "वरेण्यं" तृतीयकुक्षि "भर्गो देवस्य" चतुर्थकुक्षि "धीमहि" पंचमकुक्षि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



"धियोयोनः" षष्ठकुक्षि "प्रचोदयात्" अर्थात् त्रिपदा गायत्री महामंत्र के प्रत्येक पाद को दो दो भाग करते हुए छ भागों में विभक्त करके उच्चारण किया जाता है, इस हेतु ही गायत्री को षट्कुक्षि कहते हैं।

स्वा०—तुमने जैसा षट्कुक्षि का स्वरूप वर्णन किया है। मैंने पहिले भी किसी किसी विद्वान के मुख से ठीक वैसा ही सुना है। परंतु मंत्र के प्रत्येक पाद को दो-दो भाग में विभक्त करके, प्रत्येक भाग को कुक्षि कहते हैं। ऐसा तो किसी भी शास्त्र में, अथवा किसी भी शब्दकोष में देखने में नहीं आता है। अतएव प्रमाण विना किसी के कपोल-कल्पित वाक्य द्वारा श्रुति उक्त षट्कुक्षि सिद्ध नहीं हो सकती है।

प०—मैंने षट्कुक्षि के संबंध में जो कुछ कहा है, उस वाक्य का भी प्रमाणत्व है। क्योंकि यह वाक्य मेरा नहीं है। विद्या तो गुरुपरंपरा प्राप्त है। एवं गुरुवाक्य तथा वृद्धवचन का भी प्रमाणत्व है।

स्वा०—श्रुति विरुद्ध गुरुवाक्य तथा वृद्धवचनों का प्रमाणत्व नहीं है। अतएव तुम्हारा कथित, गुरु किंवा वृद्ध के कपोल कल्पित अप्रामाणिक वाक्य द्वारा, श्रुति उक्त षट्कुक्षि सिद्ध होना असंभव है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जि०—षट्कुक्षि का वास्तव अर्थ क्या है ?

स्वा०—शब्दकोष में कुक्षि शब्द का पर्यायवाचक शब्द कोक, पेट, संतति, गर्भ तथा गुहा प्रभृति देखने में आते हैं। गायत्री मंत्रोक्त कुक्षि शब्द द्वारा गर्भ ही अभिहित हुआ है। अब कुक्षि शब्द का पर्यायवाची गर्भ शब्द का अर्थ क्या है, सो प्रमाण सहित श्रवण करो। जैसा वेदमूर्त्तक भगवद्गीता के चतुर्दश अध्याय के तृतीय श्लोकस्थ "तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्" यहाँ पर गर्भ शब्द से चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास वर्णित हुआ है। ऐसा गायत्री मंत्रोक्त कुक्षि शब्द का पर्यायवाची गर्भ शब्द का अर्थ भी चित् प्रतिबिंब वा चिदाभास है। उपरोक्त प्रमाण वाक्य द्वारा यही प्रमाणित हुआ है कि, गायत्री मंत्रोक्त कुक्षि शब्द का अर्थ चित्प्रतिबिंब वा चिदाभास है। अब षट्कुक्षि का अर्थ सुनो। सप्रणव गायत्री महामंत्र में, छै बार चित् प्रतिबिंब रूप चिदाभास के उल्लेख होने के कारण, श्रुति भगवती ने गायत्री को षट्कुक्षि वा षड्गर्भा नाम से अभिहित किया है।

जि०—श्रुति भगवती ने गायत्री महामंत्र के कौन कौन शब्द द्वारा छै बार चिदाभास का उल्लेख किया है ?

स्वा०—प्रथम "भर्गः" शब्द द्वारा माया अभिमानी संहारकर्ता महेश्वराख्य चिदाभास का उल्लेख किया है,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



द्वितीय "नः" शब्द द्वारा बुद्ध्यादि देहाभिमानी जीवरूप चिदाभास का वर्णन किया है, तृतीय "सवितुः" शब्द द्वारा महत्तत्त्व-अभिमानी सृष्टिकर्ता पिता महाख्य चिदाभास का कथन किया है, चतुर्थ "देवस्य" शब्द द्वारा अहंकार-अभिमानी पालनकर्ता श्री श्री भगवान विष्णु देवाख्य चिदाभास का कथन किया है, पंचम ॐ शब्द द्वारा माया-अभिमानी अविद्या संहारक महेश्वराख्य चिदाभास का वर्णन किया है, एवं षष्ठ धीमहि क्रिया का कर्ता "वयं वा अहं" शब्द द्वारा देहाभिमानी जीवरूप चिदाभास का कथन किया है। यहाँ पर वक्तव्य यह है कि, श्रुति भगवती ने "ओं" शब्द द्वारा पंचमकुक्षि का वर्णन किया है। इस हेतु ही मैंने पहिले कहा था कि, सप्रणव गायत्री महामंत्र से प्रणव को निकाल देने पर, श्रुति उक्त षट्कुक्षि भी सिद्ध नहीं होती है। अर्थात् प्रणव को निकाल देने से पंचकुक्षि होती है।

प०—मेरी कही हुई षट्कुक्षि यदि प्रमाण विरहित तथा भ्रमात्मिका हो, तो उसे जाने दीजिये, परंतु आपके ही वर्णित नियमानुसार प्रणव को निकाल देने पर भी "तत्" शब्द द्वारा प्रणव प्रतिपाद्य महेश्वराख्य पंचमकुक्षि सिद्ध होने के कारण श्रुति उक्त षट्कुक्षि सिद्ध हो सकती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



स्वा०—गायत्री मंत्रोक्त "यः" शब्द "भर्गः" शब्द का विशेषण है, एवं सवितुर्देवस्य च वरेण्यं तदोंकारवाच्यं महेश्वरं वयं धीमहि, इत्याकार अन्वयार्थ से प्रतिमन्न होता है कि, "तत्" शब्द यहाँ पर ॐ शब्द का विशेषण है। अतएव विशेषणवाची सर्वनाम शब्द द्वारा श्रुति उक्त षट्कुक्षि सिद्ध नहीं हो सकती है। अपिच प्रणव को निकाल देने पर जो, चतुर्विंशति अक्षर संख्या पूर्ण नहीं होती है, तथा श्रुति वाक्य उल्लंघन करके, आधुनिक काल के प्रचलित भ्रांतिमूलक पद्धति वाक्यानुसार, बीजरहित अंगहीन मंत्र का जप करना जो निष्फल अथवा अनर्थकारक है, सो तो पहिले ही वर्णन किया गया है। अतएव गायत्री महामंत्र से प्रणव को निकाल देना विचारसंगत नहीं है।

प०—मैंने बहुशत वर्षों की भी पुरानी पद्धति देखी, उसमें भी गायत्री मंत्र प्रणव रहित ही देखने में आया है, आप क्या अति प्राचीन काल के गायत्री पुरश्चरण पद्धति ग्रंथ को भी नहीं मानेंगे?

स्वा०—बौद्धधर्म के प्रभाववशतः जब सनातनधर्म विलुप्त प्राय हो गया था, उससे परवर्ती काल के प्रचलित गायत्री पद्धति को मैं आधुनिक तथा भ्रांतिमूलक मानता हूँ और कितने ही काल की पुरानी पद्धति क्यों न हो,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उस पद्धति उक्त कोई वाक्य यदि श्रुति विरुद्ध होवे तो वह वाक्य मानने के योग्य नहीं है। अपिच मेरे विचार से तो वह भ्रांतिमूलक वाक्य संशोधन करके, श्रुति अनुरूप कर लेना ही, बड़े बड़े विद्वान पुरुषों का परम कर्तव्य है।

प०—गायत्री पुरश्चरण पद्धतियों की बात आप नहीं मानते हैं, तो उसे जाने दीजिये। परंतु किसी वेद में भी तो गायत्री मंत्र में प्रणव देखने में नहीं आता है। अतएव वेदविहित प्रणव रहित गायत्री मंत्र ही जप करना उचित है।

स्वा०—वेद का ज्ञानकांड—उपनिषद् वेद नहीं है क्या?

प०—उपनिषद् भी वेद है। परंतु कर्मकांड के मंत्र-भाग में वर्णित गायत्री मंत्र में प्रणव नहीं है।

स्वा०—कर्मकांड के मंत्रभाग में तो किसी भी मंत्र में प्रणव नहीं है। फिर व्याहृति, महाव्याहृति इत्यादि मंत्रों में प्रणव क्यों मिलाते हो? बात यह है कि, कर्मकांड के मंत्रसमूह पाठ करने के समय में प्रणव मिलाने की आवश्यकता नहीं है। इस हेतु कर्मकांड के मंत्रसमूह में, सर्व बीजभूत प्रणव संबद्ध नहीं किया है। परंतु ज्ञानकांड में जपध्यानादि की विधि वर्णित होने के कारण वहाँ पर मंत्र निचय के सहित

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्रणव संबद्ध किया है। उपनिषद् में जैसा व्याहृति, महाव्याहृति इत्यादि मंत्रों के सहित प्रणव संबद्ध किया है, वैसा ही गायत्री मंत्र के सहित प्रणव संबद्ध किया है। फिर गायत्री मंत्र में प्रणव को क्यों नहीं मिलाते हो? वेद वाक्य उल्लंघन करके, आधुनिक काल के भ्रांतिमूलक पद्धति वाक्यानुसार, प्रणवरहित गायत्री महामंत्र का जप करना निष्फल अथवा अनर्थकारक हेतु विचार संगत नहीं है।

प०—पूज्यपाद श्री श्री शंकराचार्यदेव ने ईशाद्यष्टोत्तर शत उपनिषदों के बीच में, मात्र प्रथमोक्त दश उपनिषदों का ही भाष्य किया है। अतएव दशोपनिषद् भिन्न अन्यान्य उपनिषदों का वाक्य प्रमाण रूप से स्वीकार्य नहीं है। सुतरां नारायणोपनिषदुक्त सप्रणव गायत्री महामंत्र का प्रमाणत्व नहीं है।

स्वा०—पूज्यपाद श्री श्री शंकराचार्यदेव ने भाष्य नहीं किया है, इस हेतु ईश्वरोपदिष्ट वेदवाक्य प्रमाणरूप से स्वीकार्य नहीं है, तुम्हारा मुखविनिर्गत यह वाक्य तो नास्तिकता तथा अत्यन्त ही अविचार मूलक है। अर्थात् झूठ मूठ पूज्यपाद आचार्यदेव की दोहाई देकर, धर्मजिज्ञासुओं का एक मात्र प्रमाणभूत ईश्वरोपदिष्ट वेदवाक्य न मानना



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ही नास्तिकता है। और जिन्होंने स्वकृत भाष्य में दशोपनिषद् भिन्न अन्यान्य अनेक उपनिषदों का वाक्य प्रमाण रूप से उद्धृत किया है, अपिच जिन्होंने नारायण-उपनिषदुक्त उपनयन में विनियोग गायत्री महामंत्र का भी भाष्य किया है, उनकी ही दोहाई देकर अर्थात् आचार्यदेव ने भाष्य नहीं किया है। इस हेतु नारायण-उपनिषदुक्त सप्रणव गायत्री महामंत्र प्रमाण रूप से स्वीकार्य नहीं है, ऐसा कहना तो विचार शून्यता की पराकाष्ठा वा चरमसीमा है।

प०—आचार्यदेव ने जो गायत्री महामंत्र का भाष्य किया है, सो तो ठीक है। परंतु उन्होंने जो नारायण-उपनिषदुक्त गायत्री महामंत्र का ही भाष्य किया है सो आपने किस प्रकार से निश्चय किया है ?

स्वा०—पूज्यपाद श्री श्री शंकराचार्यदेव ने स्वकृत गायत्री महामंत्र के भाष्य में, सप्रणव सप्त व्याहृति मंत्र, तथा सप्रणव शिरोमंत्र, एवं प्रणवान्त महाव्याहृति मंत्र के सहित सप्रणव गायत्री महामंत्र का स्वरूप वर्णन किया है। परंतु इस प्रकार मंत्र चतुष्टय संबद्ध गायत्री महामंत्र का स्वरूप, नारायण-उपनिषद् भिन्न अन्य किसी भी उपनिषद् में वर्णित नहीं हुआ है। इस हेतु ही मैंने ऐसा निश्चय किया है कि, आचार्यदेव ने जिस गायत्री महामंत्र का भाष्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



किया है, सो नारायण-उपनिषदुक्त उपनयन में विनियोग गायत्री महामंत्र है। एवं संध्यापद्धति आदि जिस किसी ग्रंथ में ही उस मंत्र का स्वरूप वर्णन क्यों न हो, सकल ही तो उपनिषद् मूलक है।

प०—गायत्री मंत्र के सहित प्रणव सम्मिलित करने पर भी, चतुर्विंशति अक्षर संख्यापूर्ण नहीं होती है। क्योंकि महाव्याहृति मंत्र भिन्न होने के कारण, गायत्री मंत्र के सहित महाव्याहृति मंत्र सम्मिलित करने पर भी, जैसा गायत्री मंत्र की अक्षर संख्या परिवर्द्धित नहीं होती है। वैसा ही प्रणव मंत्र भिन्न होने के कारण, गायत्री मंत्र के सहित प्रणव सम्मिलित करने पर भी, चतुर्विंशति अक्षर संख्यापूर्ण नहीं हो सकती है।

स्वा०—यहाँ पर प्रणव अभिन्न है। अतएव प्रणव के सहित चतुर्विंशति अक्षर संख्यापूर्ण होती है।

प०—गायत्री भिन्न अन्य किसी मंत्र की अक्षरसंख्या, प्रणव के सहित गणना की गयी है; ऐसा कहीं देखने में आता है क्या ?

स्वा०—श्रुति तथा श्रुतिमूलक शास्त्र में जहाँ जहाँ सप्रणव मंत्र की अक्षर संख्या वर्णित हुई है; तहाँ तहाँ ही देख सकते हो कि, प्रणव के सहित ही अक्षर संख्या गणना

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



की गई है। जैसा ॐ नमोभगवते वासुदेवाय" इस सप्रणव द्वादशाक्षरी मंत्र की अक्षरगणना भी प्रणव सहित ही की गई है। ॐ नमोनारायणाय इस सप्रणव अष्टाक्षरी मंत्र की अक्षरगणना भी प्रणव के सहित ही की गई है। तथा "ओं नमः शिवाय" इस षड्क्षरी मंत्र की अक्षरगणना भी प्रणव के सहित ही की गई है। इत्यादि।

जि०—जैसा "ओं नमो भगवते वासुदेवाय" "ओं नमः शिवाय" इत्यादि मंत्रों का पृथक् पृथक् रूप में ही जप किया जाता है; वैसा गायत्री मंत्र और महाव्याहृति मंत्रों का पृथक् पृथक् रूप में जप न करके दोनों मिलाकर जप करने का कारण क्या है?

स्वा०—श्रुति भगवती ने गायत्री मंत्र के सहित महाव्याहृति मंत्र को मिलाकर ही जप करने की विधि प्रदान की है।

जि०—श्रुति भगवती ने क्यों इन दोनों मंत्रों को मिलाकर, जप करने की विधि वा आज्ञा प्रदान की है? सो जानने की इच्छा है।

स्वा०—श्रुति भगवती ने गायत्री महामंत्र से प्रार्थना एवं ध्यान करने के लिये उपदेश प्रदान किया है। परंतु किस प्रकार से अव्यक्त स्वरूप ईश्वर का ध्यान करना

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उचित है, सो प्रणवान्त महाव्याहृति मंत्र द्वारी वर्णित हुआ है। इस हेतु ही श्रुति भगवती ने गायत्री महामंत्र के सहित, प्रणवान्त महाव्याहृति मंत्र को मिलाकर, प्रार्थना तथा ध्यानपूर्वक जप करने की विधि वा आज्ञा प्रदान की है।

जि०—महाव्याहृति मंत्र समन्वित गायत्री महामंत्र का अर्थ क्या है ?

स्वा०—आधुनिक काल के आचार्यकृत भाष्यानुसार ही वर्तमान काल के विद्वद्वृन्द गायत्री महामंत्र का अर्थ वर्णन करते हैं। अतएव पहिले गायत्री महामंत्र का भाष्य सुन लो। तत्पश्चात् मेरा किया हुआ प्रणवान्त महाव्याहृति मंत्र समन्वित गायत्री महामंत्र का अर्थ सुनाऊँगा।

वेद के कर्मकांडान्तर्गत मंत्र भागोक्त गायत्री महामंत्र का स्वरूप वर्णन। यथा :—

तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात्।

## अथ सायनाचार्य कृतभाष्यम्

यः सवितादेवः नोऽस्माकं धियः कर्माणि धर्मादि विषया वा बुद्धीः प्रचोदयात् प्रेरयेत् तत् तस्य सर्वासु श्रुतिषु प्रसिद्धस्य देवस्य द्योतमानस्य सवितुः सर्वान्तर्यामितया प्रेरकस्य जगत्

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



की गई है। जैसा ॐ नमोभगवते वासुदेवाय" इस सप्रणव द्वादशाक्षरी मंत्र की अक्षरगणना भी प्रणव सहित ही की गई है। ॐ नमोनारायणाय इस सप्रणव अष्टाक्षरी मंत्र की अक्षरगणना भी प्रणव के सहित ही की गई है। तथा "ओं नमः शिवाय" इस षड्क्षरी मंत्र की अक्षरगणना भी प्रणव के सहित ही की गई है। इत्यादि।

जि०—जैसा "ओं नमो भगवते वासुदेवाय" "ओं नमः शिवाय" इत्यादि मंत्रों का पृथक् पृथक् रूप में ही जप किया जाता है; वैसा गायत्री मंत्र और महाव्याहृति मंत्रों का पृथक् पृथक् रूप में जप न करके दोनों मिलाकर जप करने का कारण क्या है?

स्वा०—श्रुति भगवती ने गायत्री मंत्र के सहित महाव्याहृति मंत्र को मिलाकर ही जप करने की विधि प्रदान की है।

जि०—श्रुति भगवती ने क्यों इन दोनों मंत्रों को मिलाकर, जप करने की विधि वा आज्ञा प्रदान की है? सो जानने की इच्छा है।

स्वा०—श्रुति भगवती ने गायत्री महामंत्र से प्रार्थना एवं ध्यान करने के लिये उपदेश प्रदान किया है; परंतु किस प्रकार से अव्यक्त स्वरूप ईश्वर का ध्यान करना

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उचित है, सो प्रणवान्त महाव्याहृति मंत्र द्वारी वर्णित हुआ है। इस हेतु ही श्रुति भगवती ने गायत्री महामंत्र के सहित, प्रणवान्त महाव्याहृति मंत्र को मिलाकर, प्रार्थना तथा ध्यानपूर्वक जप करने की विधि वा आज्ञा प्रदान की है।

जि०—महाव्याहृति मंत्र समन्वित गायत्री महामंत्र का अर्थ क्या है?

स्वा०—आधुनिक काल के आचार्यकृत भाष्यानुसार ही वर्तमान काल के विद्वद्वृन्द गायत्री महामंत्र का अर्थ वर्णन करते हैं। अतएव पहिले गायत्री महामंत्र का भाष्य सुन लो। तत्पश्चात् मेरा किया हुआ प्रणवान्त महाव्याहृति मंत्र समन्वित गायत्री महामंत्र का अर्थ सुनाऊँगा।

वेद के कर्मकांडान्तर्गत मंत्र भागोक्त गायत्री महामंत्र का स्वरूप वर्णन। यथा:—

तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात्।

## अथ सायनाचार्य कृतभाष्यम्

यः सवितादेवः नोऽस्माकं धियः कर्माणि धर्मादि विषया वा बुद्धीः प्रचोदयात् प्रेरयेत् तत् तस्य सर्वासु श्रुतिषु प्रसिद्धस्य देवस्य द्योतमानस्य सवितुः सर्वान्तर्यामितया प्रेरकस्य जगत्

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



स्रष्टुः परमेश्वरस्य आत्मभूतं वरेण्यं सर्वैरुपास्यतया ज्ञेयतया च संभजनीयं भर्गः अविद्यातत्कार्ययोर्भंजनात् भर्गः स्वयं-ज्योतिः परब्रह्मात्मकं तेजः धीमहि तत् योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोऽहं इति वयंध्यायेम ।

यद्वा तत् इति भर्गो विशेषणं सवितुर्देवस्य तत् तादृशं भर्गः धीमहि किं तदपेक्षायामाह य इति लिंगव्यत्ययः यत् भर्गोधियः प्रचोदयात् इति तत् ध्यायेमेति समन्वयः ।

यद्वा यः सविता सूर्यः धियः कर्माणि प्रचोदयात् प्रेरयति तस्य सवितुः सर्वस्य प्रसवितुर्देवस्य द्योतमानस्य सूर्यस्य तत् सर्वैर्दृश्यमानतया प्रसिद्धं वरेण्यं सर्वैः संभजनीयं भर्गः पापानां तापकं तेजो मंडलं धीमहि ध्येयतया मनसाधारयेम ।

यद्वा भर्गः शब्देनान्नमभिधीयते यः सविता देवो धियः प्रचोदयति तस्य प्रसादात् भर्गोऽन्नादिलक्षणं फलं धीमहि धारयामः तस्याधारभूताभवेमेत्यर्थः । भर्गशब्दस्यान्न परत्वे धीशब्दस्य कर्मपरत्वे च आथर्वणं वेदांश्छदांसि सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहुः कर्माणि धियस्तदुते प्रब्रवीमि प्रचोदयेत सविता याभिरेतीति ।

भर्गः भ्रस्जपाके असुन् ,भ्रस्जोरोपधयोरमन्यतरस्या-मितिरोपधयोर्लोपः रमागमः न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वम् ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



धीमहि ध्यायतेर्लिङि बहुलं छन्दसीति संप्रसारणं व्यत्ये-नात्मने पदम् ।

यद्वा धीङ् आधारे लिङि बहुलं छंदसीति विकरणस्य लुक् प्रचोदयात् प्रचोदयते लेटि आडागमः । यद्वृत्तयोगाद-निघातः आगमस्यानुदात्तत्वेऽपिचः स्वरः ।

इति सायनाचार्यकृतभाष्यम् ।

जि०—सायनाचार्यदेव ने तो असाधारण विद्या के प्रभाव से, शब्द व्यत्यय, लिंग व्यत्यय, धातु व्यत्यय, तथा अर्थ व्यत्य-यादि अवलंबनपूर्वक, कभी निर्गुण ब्रह्म को, और कभी दृश्यमान तेजोमय सूर्यमंडल को, ध्येय रूप से वर्णन करके, एवं कभी भर्ग शब्द का अन्नार्थ ग्रहणपूर्वक, गायत्री महामंत्र का चतुर्विध अर्थद्योतन करके, उपासकवृन्द को और भी अधिकतर ध्येय निरूपण विषयक सन्देह चक्कर में ही डाल दिया है। अपर उन्होंने गायत्री मंत्र के सहित प्रणव तथा सप्रणव महाव्याहृति मंत्र को भी सम्मिलित नहीं किया है। मेरा जिज्ञास्य यह है कि—

आचार्यदेव यदि ध्येयनिरूपण संबंधी संशयोत्पादक चतुर्विध अर्थ न करके, मंत्रभागोक्त उपनयन में विनियोग केवल गायत्री मंत्र का यथार्थ रूप से एक ही प्रकार का

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अर्थद्योतन करने के पश्चात् उपासकवृन्द के हितार्थ स्वकीय भाष्य में उपनिषद् वर्णित उपासन योग्य उपनयन में विनियोग गायत्री महामंत्र का प्रकृत अर्थ द्योतन करते तो क्या दोष होता ?

स्वा०—दोष नहीं होता, ऐसे करने से तो उपासकवृन्द का परम लाभ अपिच विश्व में अपेक्षाकृत अधिकतर शांति-स्थापन तथा सुखानुभव होता। परंतु आचार्यदेव क्या करे; सर्वनियन्ता परमेश्वर की संकल्प वा इच्छावशतः युगधर्म प्रवर्तन वा प्रचार करने के लिये कलियुगाभिमानी देवता ने, जैसा धर्म संरक्षक महाराज परीक्षित के हृदय में आश्रय लेकर, उनकी बुद्धि को विपरीत भावापन्न किया था, वैसे ही धर्मसंरक्षक अथवा धर्म प्रचारक बड़े बड़े आचार्य हृदय में भी आश्रय लेकर, उस देवता ने धर्म की हानि तथा अधर्म की परिवृद्धि संपादनार्थ बड़े बड़े विद्वानों की बुद्धि को भी विपरीत भावापन्न किया है, अथवा कहो कि उपनयन में विनियोग गायत्री आदि मंत्र के यथार्थ स्वरूप से तथा प्रकृत अर्थ से बड़े बड़े विद्वानों की बुद्धि को भी हटा दिया है।

**अथ महीधराचार्यकृत गायत्री भाष्यम्।**

**तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात्।**

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तस्य देवस्य द्योतनात्मकस्य अंतर्यामिणः वरेण्यं वरणीयं सर्वैः प्रार्थनीयं भर्गः भर्जनसमर्थं तेजः वयं धीमहि ध्यायामः (तस्य कस्य) यः सविता नः अस्माकं धियः बुद्धीः प्रचोदयात् प्रकर्षेण सत् कर्मानुष्ठानाय प्रेरयति ॥ यह भाष्य असंपूर्ण है ।

अथ पूज्य पाद श्री श्री शंकराचार्य देवकृत उपनयन में विनियोग गायत्री महामंत्र का भाष्य।

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ सुवः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् । ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् । ओमापो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म । भूर्भुवः सुवरोम् ।

अथ सर्वदेवात्मनः सर्वशक्तेः सर्वावभासकतेजोमयस्य परमात्मनः सर्वात्मकत्व द्योतनार्थं सर्वात्मकत्व प्रतिपादकगायत्री महामंत्रस्योपासना प्रकारः प्रकाश्यते । तत्र गायत्रीं प्रणवादि सप्तव्याहृत्युपेतां शिरः समेतां सर्ववेदसारमिति वदंति । एवं विशिष्टा गायत्री प्राणायामैरुपास्या । सप्रणव व्याहृति त्रयोपेता प्रणवांतागायत्रीजपादिभिरुपास्या ।

तत्र शुद्धगायत्रीप्रत्यक्चैतन्य बोधिका । "धियोयोनः प्रचोदयात्" इति नोऽस्माकं धियो बुद्धीः यः प्रचोदयात् प्रेरयेदिति सर्वबुद्धि संज्ञांतःकरण प्रकाशक सर्वसाक्षी प्रत्यगात्मेत्युच्यते । तस्य प्रचोदयाच्छब्दनिर्दिष्टस्यात्मनः स्वरूप-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भूतं परं ब्रह्म तत्सवितुरित्यादि पदैर्निर्दिश्यते। तत्र "ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः" इति तत् शब्देन प्रत्यग्भूतं स्वतः सिद्धं परं ब्रह्मोच्यते। सवितुरिति सृष्टि स्थिति लय लक्षणकस्य सर्वप्रपंचस्य समस्तद्वैतभ्रमस्याधिष्ठानं लक्ष्यते। वरेण्यमिति सर्ववरणीयं निरतिशयानन्दरूपम्। भर्ग इति अविद्यादिदोषभर्जनात्मकज्ञानैकविषयत्वम्। देवस्येति सर्वद्योतनात्मकाखंडचिदेकरसम्। सवितुर्देवस्येत्यत्र षष्ठ्यर्थो राहोः शिरो वदौपचारिकः। बुद्ध्यादि सर्वदृश्य साक्षिलक्षणं यन्मेस्वरूपं तत् सर्वाधिष्ठानभूतं परमानन्दं निरस्त समस्तानर्थरूपं स्वप्रकाशचिदात्मकं ब्रह्मत्येवं धीमहि ध्यायेम।

एवं सति सह ब्रह्मणा, स्वविवर्त्तजड़प्रपंचस्य रज्जु सर्पन्यायेनाध्यारोपापवाद सामानाधिकरण्यरूपमेकत्वं भवतीति सर्वात्मकब्रह्मबोधकोऽयं गायत्रीमंत्रसंपद्यते।

सप्तव्याहृतीनामयमर्थः—भूरिति सन्मात्रमुच्यते। भुव इति सर्वं भावयति प्रकाशयतीति व्युत्पत्त्या चिद्रूप मुच्यते सुव्रियत इति व्युत्पत्त्या स्वरिति सुष्ठु सर्वैर्व्रियमाण सुख स्वरूपमुच्यते। मह इति महीयते पूज्यत इति व्युत्पत्त्या सर्वातिशयत्वमुच्यते। जन इति जनयतीति जनः सर्वकारणत्वमुच्यते। तप इति सर्वं तेजो रूपत्वम्। सत्यमिति सर्वबाधरहितत्वम्। एतदुक्तं भवति यल्लोके स्वरूपं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तदोंकार वाच्यं ब्रह्मैव आत्मनोऽस्य सच्चिद्रूपस्य भावादिति।

अथ भूरादयः सर्वलोकाः ओंकार वाच्य ब्रह्मात्मकाः न तद्व्यतिरिक्तं किंचिदस्तीति। व्याहृतयोऽपि सर्वात्मक ब्रह्मबोधिकाः।

## गायत्री शिरसोऽप्ययमेवार्थ :—

आप इति आप्नोतीति व्युत्पत्या व्यापित्वमुच्यते। ज्योतिरिति प्रकाशरूपत्वम्। रस इति सर्वातिशयत्वम्। अमृतमिति मरणादिसंसारनिर्मुक्तत्वम्।

आत्मरूपं सच्चिदानन्दात्मकं यदोंकारवाच्यं ब्रह्मतदहमस्मीति गायत्री मंत्रार्थः॥

इति पूज्यपाद श्री श्री शंकराचार्यदेवकृत

## गायत्री भाष्य समाप्त।

जि०—पूज्यपाद श्री श्री शंकराचार्यदेवकृत उपनयन में विनियोग नित्य कर्मांगभूत सन्ध्योपासनान्तर्गत प्राणायाम तथा जप योग्य सर्वांगीन गायत्री महामंत्र के भाष्य को सुनकर अति प्रसन्नता हुई है। क्योंकि और०तो किसी ने भी उपासना के योग्य गायत्री महामंत्र का भाष्य ही नहीं किया है। परंतु इन्होंने भी बहुत० खींचातानी करके अर्थात् "भर्गः" पद का शब्द और लिंग व्यत्यय करके, एवं "सवितु-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



देवस्य" "यहाँ पर विभक्ति व्यत्यय करके अर्थात् षष्ठी विभक्त्यान्त पदद्वय को प्रथमान्त मान कें और विशेषणवाची सर्वनाम तत् शब्द को भी विशेष्यपद मान कर, स्वकीय अद्भुत प्रतिभा प्रभाव से व्युत्पत्तिद्वारा, सप्रणव सप्तव्याहृति मंत्र, गायत्री मंत्र, महाव्याहृति मंत्र, तथा शिरो मंत्र स्थित प्रत्येक शब्द का ही अर्थ, निर्गुणब्रह्म प्रतिपादन करके, ओंकार वाच्य सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म मैं हूँ, इत्याकार भावार्थ द्योतन किया है। परंतु यह अर्थ तो मुझे पूर्णतया ही विपरीत बोध होता है। क्योंकि कहीं भी कोई मानव निर्गुणब्रह्म का ध्यान-पूर्वक गायत्री मंत्र का जप करता है, ऐसा तो कभी सुना भी नहीं। मैं तो ऐसा जानता हूँ कि, प्रातः सन्ध्योपासन काल में सावित्री का, एवं मध्याह्न सन्ध्योपासन काल में गायत्री का, और सायं सन्ध्योपासन काल में सरस्वती का ध्यान किया जाता है। ऐसा करना क्या ठीक नहीं है?

स्वा०—यह भी ठीक है।

बात यह है कि सन्ध्योपासन के अन्तर्गत प्राणायाम तथा जप काल में, सृष्टि स्थिति प्रलयकर्ता अपिच भोगापवर्ग-दाता अव्यक्त अथवा मायोपाधि विशिष्ट सगुण ब्रह्म परमेश्वर ही ध्येय है। परंतु अव्यक्त देह होने के कारण, वेद किंवा वेदमूलक किसी भी शास्त्र में उस परमेश्वर का दैहिक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



स्वरूप वर्णित नहीं हुआ है। किन्तु ऐसा वर्णित हुआ है कि वह अव्यक्त साकार ईश्वर ही माया को आश्रय करके "एकोऽहंबहुस्याम" अर्थात् मैं एकाकी बहु हो जाऊँ इत्याकर संकल्प करते हुए, हिरण्यगर्भ विराटादि रूप से, क्रमशः कार्यकारणात्मक संपूर्ण जगद्रूप धारण किया है। इस हेतु ही श्रुति भगवती ने नित्य कर्मांगभूत सन्ध्योपासना काल में कार्यकारणात्मक जागतिक समष्टि रूप में सगुण ब्रह्म परमेश्वर के ध्यान करने की विधि प्रदान की है। अर्थात् जागतिक सकल वस्तु ही सगुणब्रह्म श्री श्री भगवान हैं, इस प्रकार ध्यान अथवा चिन्तन करने की विधि प्रदान की है। परंतु कोई यदि किसी प्रतिबन्धकवशतः जागतिक समष्टि रूप में परमेश्वर के ध्यान करने में असमर्थ अथवा अनिच्छुक होवे तो, उसके लिये श्रुति भगवती ने परमेश्वर के व्यष्टि स्वरूप का ध्यान करने की विधि भी प्रदान की है। अर्थात् श्रुति भगवती ने सन्ध्योपासन के अन्तर्गत प्राणायाम के पूरक कुंभक तथा रेचक काल में, यथाक्रम से सृष्टि स्थिति प्रलयकर्ता श्री श्री भगवान ब्रह्मा विष्णु महेश्वर के ध्यान करने की विधि प्रदान की है। अथवा यदि श्री श्री भगवती का ध्यान करने का अधिकारी होवे तो प्राणायाम के पूरक काल में सृष्टिकर्त्री भगवती सावित्री का, एवं कुंभक काल

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



में पालनकर्त्री श्री श्री भगवती गायत्री का, तथा रेचक काल में प्रलयकर्त्री श्री श्री भगवती सरस्वती का ध्यान करने की विधि प्रदान की है। तथा प्रातः सन्ध्योपासन के अन्तर्गत जप काल में सृष्टिकर्ता श्री श्री भगवान प्रजापति का, अथवा सृष्टिकर्त्री श्री श्री भगवती सावित्री का, एवं मध्याह्न सन्ध्योपासन के जप काल में पालनकर्ता श्री श्री भगवान विष्णु का, अथवा पालनकर्त्री श्री श्री भगवती गायत्री का, अपिच सायं सन्ध्योपासन के जप काल में प्रलयकर्ता श्री श्री भगवान महेश्वर का, अथवा प्रलयकर्त्री श्री श्री भगवती सरस्वती का ध्यान करने की विधि भी श्रुति भवगती ने प्रदान की है। अतएव निज निज अधिकारानुसार चाहे श्री श्री भगवान का ध्यान करे अथवा श्री श्री भगवती का ध्यान करे, युक्तियुक्त तथा श्रुतिविहित होने के कारण दोनों ही ठीक हैं।

अधुना नित्य कर्मांगभूत सन्ध्योपासन के ध्येय संबंध में मैंने जो कुछ कहा है उस वाक्य का समर्थनकारक प्रमाण वाक्य श्रवण करो। तद् यथा :—

( १ )

गायत्री मंत्रोक्त "भर्गः" शब्द जो भृज्धातु सिद्ध अजन्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पुंलिंग तथा शिव पर्यायवाचक है, सो तो व्याकरण तथा शब्दकोष द्वारा प्रमाणित होता है। एवं अव्यक्त स्वरूप ईश्वर ही शिवरूप से व्यक्त होने के कारण, शिव और ईश्वर की अभिन्नता वा एकता संबंध में कोई संशय का भी कारण नहीं है। अतएव गायत्री मंत्रोक्त "भर्गः" शब्द का अर्थ सृष्टि स्थिति प्रलयकर्ता तथा भोगापवर्गदाता मायोपाधि विशिष्ट अव्यक्त स्वरूप ईश्वर, अथवाव्यक्त स्वरूप मायोपाधि विशिष्ट प्रलयकर्ता महेश्वर वा शिव कहने में, किसी प्रकार की भी खींचातानी अर्थात् किसी प्रकार का भी शब्द तथा लिंग व्यत्यय भी नहीं करना पड़ता है, एवं श्रुति विरुद्ध आदि किसी प्रकार के दोष भी नहीं होते हैं।

( २० )

गायत्री मंत्रोक्त "प्रचोदयात्" क्रियापद प्रार्थना अर्थ द्योतक है। एवं निर्गुण ब्रह्म से प्रार्थना करना तो निरर्थक है। क्योंकि निर्गुण ब्रह्म अशुभ कर्म का बाधक नहीं है। वह तो अकर्ता अभोक्ता केवल साक्षी तथा अधिष्ठानात्मक है। सुतरां सृष्टि स्थिति प्रलयकर्ता तथा भोगापवर्गदाता अपिच सर्वनियन्ता सगुण ब्रह्म ईश्वर से ही प्रार्थना करना सार्थक है। अतएव प्रार्थनावाक्य द्वारा भी यही प्रमाणित

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



होता है कि गायत्री मंत्र प्रतिपाद्य ध्येय वस्तु ओंकार वाच्य सृष्टि स्थिति प्रलयकर्ता तथा भोगापवर्गादाता अव्यक्त स्वरूप ईश्वर अथवा व्यक्त स्वरूप ब्रह्मा विष्णु महेश्वर हैं।

( ३ )

गायत्री मंत्र प्रतिपाद्य ध्येय वस्तु जो ओंकार वाच्य अव्यक्त साकार ईश्वर अथवा व्यक्त साकार ब्रह्मा विष्णु महेश्वर है, सो तो श्रुति वर्णित षट्कुक्षि शब्द से भी प्रमाणित होता है। क्योंकि कुक्षि शब्दार्थ यहाँ पर चिदाभास है। एवं चिदाभास जो उपाधि विशिष्ट होने के कारण सगुण अथवा साकार है, सो तो श्रुति आदि सर्वविध प्रमाण सिद्ध है।

( ४ )

श्री श्री भगवती के उपासक निचय के लिये, सृष्टि स्थिति प्रलयकर्त्री तथा भोगापवर्गदात्री अव्यक्त स्वरूपा परमेश्वरी, किंवा व्यक्त स्वरूपा सृष्टिकर्त्री भगवती सावित्री, और पालनकर्त्री भगवती गायत्री, तथा प्रलयकर्त्री भगवती सरस्वती भी जो गायत्री मंत्र प्रतिपाद्य ध्येय वस्तु है, सो नारायण उपनिषद् वर्णित "गायत्री मावाहयामि सावित्री-मावाहयामि सरस्वती मावाहयामि श्रियमावाहयामि"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इस वाक्य से भी प्रमाणित होता है। अलम्। उपनयन में विनियोग गायत्री महामंत्र प्रतिपाद्य सगुण ब्रह्म की उपासना विधायक प्रमाण वाक्य प्रकाशन यहाँ पर ही समाप्त किया जाता है। और साधन चतुष्टय विरहित सामान्य नरनारियों का जो निर्गुण ब्रह्मबोधक विशेष मंत्र में अधिकार नहीं है। सो तो मंत्राधिकार समालोचना में, श्रुतिवाक्यों द्वारा भलीभाँति प्रमाणित हुआ है।

शेष वक्तव्य यह है कि—ईदृक् सुस्पष्ट प्रमाण वाक्य समूह विद्यमान रहते हुए भी, पूज्यपाद श्री श्री भगवान शंकराचार्यदेव ने जो, अतिशय खींचातानी करके, अर्थात् शब्द व्यत्यय तथा विभक्ति व्यत्ययादि उपाय अवलंबनपूर्वक व्युत्पत्ति द्वारा, सप्रणव सप्त व्याहृति मंत्र, शिरोमंत्र तथा गायत्री महामंत्रोक्त प्रत्येक शब्द का ही अर्थ, निर्गुणब्रह्म प्रतिपादन करके "आत्मरूपं सच्चिदानन्दात्मकं यदोंकार वाच्यं ब्रह्मतदहमस्मि" इस प्रकार से पूर्णतया ही विरुद्ध वा विपरीत भाव में गायत्री महामंत्रार्थ द्योतन किया है: सो तो बुद्धदेवादि अवतार लीलावत्, शंकरावतार आचार्यदेव के भी एक छोटी सी लीलाभिन्न और क्या कहा जा सकता है। गायत्री महामंत्र का भाष्य तथा भाष्य के गुण दोष तो विचारित हुआ है। अधुना मेरा किया हुआ श्रुति सम्मत



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



गायत्री महामंत्र का निर्विरोध अर्थ श्रवण करो।
अथ नारायण उपनिषद् वर्णित उपनयन में विनियोग।

## गायत्री महामंत्र का स्वरूप वर्णन यथा :—

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ सुवः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम्। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो-योनः प्रचोदयात्। ओमापोज्योतीरसोऽमृतंब्रह्म। भूर्भुवः सुवरोम्।

अथ सप्रणव सप्तव्याहृतिमंत्रोक्त शब्दार्थ वर्णन यथा:— पहिले प्रमाण के सहित वर्णित हुआ है कि, ईश्वर ही माया को आश्रय करके हिरण्यगर्भ विराटादि क्रम से कार्यकारणात्मक संपूर्ण जगद्रूप धारण किया है। अतएव "ॐ" अर्थात् ॐकारवाच्य ईश्वर ही "भूः" अर्थात् भुर्लोक है, तात्पर्य यह है कि भुर्लोक संवन्धी सकल वस्तु ही ॐकारवाच्य सगुण ब्रह्म श्री श्री भगवान है; ऐसा ही "ॐ भुवः" अर्थात् भुवर्लोक संवन्धी सकल वस्तु ही ॐकारवाच्य सगुण ब्रह्म श्री श्री भगवान है; "ॐ सुवः" अर्थात् स्वर्लोक संवन्धी सकल वस्तु ही ॐ कारवाच्य सगुण ब्रह्म श्री श्री भगवान है; "ॐ महः", अर्थात् महर्लोक की सकल वस्तु ही ॐकारवाच्य सगुण ब्रह्म श्री श्री भगवान है; "ॐ जनः" अर्थात् जनलोक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



की सकल वस्तु ही ॐकारवाच्य सगुण ब्रह्म श्री श्री भगवान हैं; "ॐतपः" अर्थात् तपलोक के समस्त ही ॐकारवाच्य सगुण ब्रह्म श्री श्री भगवान हैं; "ॐ सत्यम्" अर्थात् सत्य-लोक के समस्त ही ॐकारवाच्य सगुण ब्रह्म श्री श्री भगवान हैं।

अथ शिरोमंत्रोक्त शब्दार्थ वर्णन यथाः—

"आपः" शब्दार्थ दृश्यमान जल है; "ज्योतिः" शब्दार्थ प्रकाशमान अग्नि सूर्यादि भौतिक प्रकाश है; "रसः" शब्दार्थ रसनेन्द्रिय ग्राह्यकटुअम्ललवणकषायतिक्त तथा मधुर नामक रस है; "अमृतम्" शब्दार्थ देवभक्ष्य अमरत्वजनक द्रव्य विशेष, तथा दुग्ध दधि घृतादि अथवा कहो कि देह संरक्षण के कारण भूत भक्षण योग्य अन्न है; एवं "ब्रह्म" शब्दार्थ यहाँ पर शब्द ब्रह्म वेद है; तात्पर्य यह है कि जलादि वेद पर्यन्त समस्त ही ॐ कारवाच्य सगुण ब्रह्म श्री श्री भगवान है।

गायत्री तथा महाव्याहृतिमंत्रोक्त शब्दार्थ आगे वर्णन किया जायगा।

यहाँ पर वक्तव्य यह है कि गायत्री महामंत्र द्वारा प्राणायाम करने के समय पृथक पृथक रूप से, प्रत्येक शब्द का अर्थ चिन्तन न करके, ध्येयमूर्ति का स्वरूप चिन्तन अर्थात् कार्यकारणात्मक संपूर्ण जगत् ही ॐ कारवाच्य सगुण ब्रह्म

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



श्री श्री भगवान है। इस प्रकार से सर्वत्र वा सकल वस्तु में सगुण ब्रह्म श्री श्री भगवान का ध्यान वा चिन्तन करे। अथवा प्रत्येक पूरक कुंभक तथा रेचक करने के समय में यथाक्रम से श्री श्री भगवान ब्रह्मा विष्णु तथा महेश्वर का ध्यान वा चिंन्तन करे।

दूसरी बात यह है कि, प्राणायाम संवन्धी अन्यान्य ज्ञातव्य विषय नवम परिच्छेद में दृष्टव्य है।

## अथ उपनयन में विनियोग,

नारायण उपनिषद् वर्णित, जप योग्य गायत्री महामंत्र का स्वरूप वर्णन यथाः—

**ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात्। भूर्भुवः सुवरोम्।**

### अर्थ :—

"यः भर्गः" यः सृष्टि स्थिति प्रलयकर्त्ता अपिच भोगापवर्गदाता सर्व निवामको मायोपाधि विशिष्टोऽव्यक्त स्वरूप ईश्वरः "'एकोऽहं वहुस्याम" इत्येवं संकल्प्य, हिरण्यगर्भ विराटादि, क्रमेण संपूर्णजगद्रूपमदधात् सः कृपां कृत्वा"' "नः" अस्माकं "धियः" वुद्धीः "प्रचोदयात्" प्रेरयेत् अर्थात्

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



शास्त्रनिषिद्ध मिथ्याभाषणादिदुःखप्रदाऽशुभ कर्मणो निवर्त्य, शास्त्र विहित भगवद्ध्यानादि मोक्षहेतुभूत शुभ कर्मणि निवद्धाः कुर्यात् ।

"सवितुः" सृष्टिकर्तुः—अव्यक्त स्वरूप हिरण्यगर्भस्य अथवा व्यक्त स्वरूप ब्रह्मणः "देवस्य" पालनकर्तुरव्यक्त स्वरूप विराजः अथवा व्यक्त स्वरूप विष्णोः "वरेण्यं" वरणीयं "तत् ॐ" तदोंकारवाच्यमव्यक्त स्वरूपं भगवन्तं महेश्वरं "वयं धीमहि" ध्यायेम। (यस्यरूपं वेदेऽपि नव्यक्तं स्यात्तमव्यक्त स्वरूपं भगवन्तमीश्वरं केन प्रकारेण धीमहि तदाह प्रणवान्त महाव्याहृतिमंत्रेण)

"भूर्भुवः स्वः" स्वर्गमर्त्य पातालाख्य संपूर्ण जगत् "ॐ" ॐकारवाच्य सगुण ब्रह्म श्री श्री भगवानेवस्यात् ।

## भाषार्थ :—

सृष्टि स्थिति प्रलयकर्त्ता अपिच भोगापवर्गदाता सगुण ब्रह्म जिस परमेश्वर ने "एकोऽहं वहुस्याम" अर्थात् मैं एकाकी वहु हो जाऊँ, इस प्रकार संकल्प करते हुए, हिरण्यगर्भ विराटादिक्रम से कार्यकारणात्मक संपूर्ण जगद्रूप धारण किया है, वह कृपा करके हमारी बुद्धियों को शास्त्रनिषिद्ध मिथ्याभाषणादि दुःखप्रद अशुभ कर्म से हटा कर, शास्त्र-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विहित भगवद्ध्यानादि मोक्षप्रद शुभ कर्म में निवद्ध करे। श्री श्री भगवान के शरणागत हम कैवल्य मुक्ति लाभार्थ, सृष्टिकर्ता अव्यक्त स्वरूप श्री श्री भगवान् हिरण्यगर्भ का अथवा कहो कि व्यक्त स्वरूप श्री श्री भगवान ब्रह्मा जी का तथा पालनकर्ता अव्यक्त स्वरूप श्री श्री भगवान् विराट् का, अथवा कहो कि व्यक्त स्वरूप श्री श्री भगवान विष्णु का भी वरणीय, तिस ॐ कारवाच्य अव्यक्त स्वरूप श्री श्री भगवान् परमेश्वर को, अथवा कहो कि व्यक्त स्वरूप श्री श्री भगवान् महेश्वर को, (यतः ईश्वर ही माया को आश्रय करके संपूर्ण जगद्रूप धारण किया है) अतएव स्वर्गमर्त्य पातालाख्य कार्यकारणात्मक संपूर्ण जगत् ॐ कारवाच्य सगुण ब्रह्म श्री श्री भगवान ही है, इस प्रकार से ध्यान अथवा चिन्तन करे।

## नित्य कर्मांगभूत जपयोग्य गायत्री

मंत्रार्थ तो समाप्त हुआ। परन्तु आवश्यक बोध से यहाँ पर ज्ञापन किया जाता है कि जपकाल में मंत्रोक्त प्रत्येक शब्द का अर्थ चिन्तन न करके, स्वर्ग मर्त्य पातालाख्य कार्य-कारणात्मक संपूर्ण जगत् ॐ कारवाच्य सगुण ब्रह्म श्री श्री भगवान ही है; इस प्रकार से भगवद् ध्यान पूर्वक, अर्थात्

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सर्वत्र वा सकल वस्तु में भगवद् बुद्धि पूर्वक जप कार्य संपादन करे। अपर किसी कारण वशतः कोई यदि सर्वत्र वा सकल वस्तु में भगवद्बुद्धि करने में असमर्थ वा अनिच्छुक होवे तो प्रातर्मध्याह्न तथा सायं सन्ध्योपासन के जपकाल में यथा क्रम से श्री श्री भगवान ब्रह्मा विष्णु तथा महेश्वर का ध्यान पूर्वक जप कार्य संपादन करे और यदि शक्ति उपासक होवे तो प्रातः सन्ध्योपासन के जपकाल में श्री श्री भगवती सावित्री का और मध्याह्नसंध्योपासन के जपकाल में श्री श्री भगवती गायत्री का, तथा सायं सन्ध्योपासन के जपकाल में श्री श्री भगवती सरस्वती का ध्यान पूर्वक जपकार्य संपादन करे।

इति उपनयन में विनियोग गायत्री महामंत्र की समालोचना समाप्त।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



# द्वादश परिच्छेद

## अथ कृपा चतुष्टय

परमशांति वा मुक्तिलाभ के लिए कृपा चतुष्टय की अपेक्षा है।

प्रथम आत्मकृपा—अर्थात् अतीतकाल के अनेक जन्म-कृत पुण्य प्रभाव से, मोक्ष साधन योग्य अविकृत वा विकार शून्य देहेन्द्रिय प्राण मनोबुध्यादि संपन्न होना ही आत्मकृपा नाम से अभिहित होता है। इस आत्मकृपा बिना गुरु कृपालाभ होना असंभव है। क्योंकि पूर्वजन्मकृत पापकर्म के प्रभाव से जिसको मनुष्य शरीर ही प्राप्त नहीं हुआ है, अथवा मानवदेह प्राप्त होते हुए भी जिसकी देह विकृत है, अथवा जिसकी बुद्धि हानि, लाभ, सत्य, मिथ्या, धर्माधर्म अपिच कर्तव्या कर्तव्य निर्णय करने में असमर्थ है, कृपालु गुरुदेव उसे किस प्रकार से उपदेश प्रदान अथवा कृपा करेंगे?

द्वितीय गुरुकृपा—अर्थात् गुरुदेव की कृपा को ही जो गुरु कृपा कहते हैं, सो तो किसी को भी अविदित नहीं है। परंतु यहाँ पर विशेष वक्तव्य यह है कि वेदशास्त्र में त्रिविध आचार्य वर्णित हुए हैं। तद्यथा:—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



चोदको बोधकश्चैव मोक्षदश्चपरः स्मृतः ।
इत्येषां त्रिविधोज्ञेय आचार्यस्तु महीतले ॥

भाषार्थः—संसार में चोदक बोधक तथा इनके भी उपास्य रूप से स्मृत मोक्षद इति नाम से प्रसिद्ध त्रिविध आचार्य विज्ञेय हैं।

चोदकोदर्शयेन्मार्गं बोधकः स्थानमाचरेत् ।
मोक्षदस्तु परं तत्त्वं यज् ज्ञात्वा परमश्नुते ॥

इति ब्रह्मविद्योपनिषद्

रहस्यद्योतक भाषार्थः—जिनकी कृपा से वेदवेदांग तथा वेदाविरुद्ध अन्यान्य शास्त्रज्ञान प्राप्त होता है, अपिच जिनकी कृपा से मल विक्षेप निवृत्तिकारक साधन मार्ग दृष्ट होता है, वे चोदक गुरु नाम से अभिहित होते हैं। और जिनकी कृपा से आवरण भंगकारक ज्ञानयोग साधन प्राप्त होकर, समाधि अभ्यास द्वारा अप्रतिबद्ध अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है, वे ब्रह्मविद् जीवन्मुक्त बोधक गुरु नाम से अभिहित होते हैं। अपर मोक्षद गुरुः अर्थात् द्रष्टा वा साक्षि स्वरूप निर्गुण ब्रह्म का गुरु होना असंभव हेतु, तथा बिंबचैतन्य से प्रतिबिंब चैतन्य वस्तुतः अभिन्न होने के कारण, श्रुति भगवती ने कहा है कि "मोक्षदस्तु



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



परंतत्त्वं अज्ज्ञात्वा परमश्नुते" अर्थात् जिनको जानकर कैवल्य प्राप्त होता है, और जिनकी कृपा से अविद्या उपाधि विनिष्ट होकर विदेह मुक्तिलाभ होता है, वे परतत्त्व सगुण ब्रह्मनित्य मुक्त ईश्वर ही मोक्षद गुरु नाम से अभिहित होते हैं।

महोपनिषद् में वर्णित हुआ है कि–

**दुर्लभो विषय त्यागो दुर्लभं तत्त्व दर्शनम्।**
**दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणांविना॥**

भाषार्थः—सद्गुरु की करुणा बिना विषय संपरित्याग, अपिच आत्मदर्शन, होना तथा सहजावस्था अर्थात् ज्ञान संबन्धी सप्त भूमिका के अन्तर्गत, पंचमादि उच्च भूमिका स्थित जीवन्मुक्त की अवस्था लाभ होना अति दुर्लभ है। गुरु संबन्ध में शेष वक्तव्य यह है कि, साधन करने की शक्ति तथा रुचि संपन्न जो सकल मुमुक्षु नरनारियों का उपयुक्त शक्ति संपन्न ब्रह्मविद् गुरु नहीं है, उन लोगों को गुरु शक्ति संपन्न किसी न किसी ब्रह्मविद् को गुरु करना उचित है क्योंकि गुरुकृपा बिना शास्त्रकृपा लाभ होना असंभव है।

तृतीय शास्त्र कृपाः—अर्थात् ईश्वरोपदिष्ट वेद शास्त्र

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



का रहस्य वा प्रकृत अर्थ समझना ही शास्त्र कृपा नाम से अभिहित होता है।

शास्त्र कृपा विना आत्म साक्षात्कार होना असंभव है, और आत्मसाक्षात्कार विना वन्धन विमुक्त वा जीवन्मुक्त होना असंभव है।

चतुर्थ ईश्वर कृपाः—अर्थात् कृतकृत्य जीवन्मुक्त होने पर भी यदि सगुण ब्रह्म मोक्षदगुरु ईश्वर, कृपा करके अविद्या उपाधि को विध्वंस न करे तो विदेहमुक्ति लाभ नहीं हो सकता है।

अतएव त्रिविध दुःख की आत्यंतिक निवृत्ति, तथा नित्य निरतिशय सुख संप्राप्तिरूप विदेह मुक्ति लाभार्थ, उपरोक्त कृपा चतुष्टय की आवश्यकता है।

## अथ ईश्वरोपासना

सनातनधर्मी तथा परवर्ती वा आधुनिक काल के प्रचलित बौद्ध, जैन, ईसाई, मुसलमान, सिक्ख प्रभृति उप-धर्मी स्वदेशी विदेशी जो कोई भी क्यों न हो, निम्नलिखित विधि अनुसार साधन करने की शक्ति तथा रुचि संपन्न समस्त नरनारियों के परमशांतिलाभार्थ नित्यकर्मांगभूत ईश्वरोपासन विधि वर्णन किया जाता है। यथाः—

प्रथम यथानिधि प्रार्थना।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



## आदौ संक्षिप्त सन्ध्योपासना

(देहशुद्धि के लिये) स्नान काल में अथवा स्नान करने के अनन्तर, वेदमंत्र चतुष्टय से* यथाविधि मार्जन, और (अज्ञान कृत पाप समूह विनाश के लिये) श्रुतिवर्णित मंत्रों†

### *मार्जनमंत्र

ॐ आपोहिष्ठा मयोभुवस्तान
ऊर्जेदधातनमहे रणाय चक्षसे।
ॐ यो वः शिवतमोरसस्तस्य-
भाजयेतहनः उशतीरिव मातरः ।
ॐ तस्मा अरंगमाम वोयस्यक्षयाय
जिन्वथआपोजनयथाचनः ।
ॐ ऋतंच सत्यं चाभीद्धात्तपसोध्यजायत । ततो रात्रि-
रजायत ततः समुद्रो अर्णवः ।
समुद्रादर्णावादधि संवत्सरो अजायत । अहोरात्राणि
विदधद्विश्वस्यमिषतोवशी । सूर्याचन्द्रमसौधाता यथा
पूर्वमकल्पयत । दिवंचपृथिवीं चान्तरिक्षमथोसुवः ॥

### † अघमर्षण मंत्र

१ :—प्रातः सन्ध्याकाल में

ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पापेभ्यो रक्षन्ताम् । यद्रात्र्यापापमकार्षम् । मनसा
वाचा हस्ताभ्याम् । पद्भ्यामुदरेण शिश्ना । रात्रि-
स्तदवलुम्पतु । यत्किंच दुरितंमयि ।
इदमहं माममृत योनौ । सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ॥

२ :—सायं सन्ध्याकाल में

ॐ अग्निश्चमामन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः ।
पापेभ्यो रक्षन्ताम् । यदह्नापापमकार्षम् ।
मानसा वाचा हस्ताभ्याम् । पद्भ्यामुदरेण शिश्ना ।
अहस्तदवलुम्पतु । यत्किंच दुरितंमयि ।
इदमहं माममृतयोनौ । सत्ये ज्योतिषिजुहोमि स्वाहा ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



~~से अघमर्षण, अपिच यथाविधि दस बार गायत्री महामंत्र का जपात्मक संक्षिप्त सन्ध्योपासन करें।~~

## द्वितीय नमस्कार ।

पहिले नवम परिच्छेद के अंतर्गत उपनिषद् वर्णित विधि अनुसार, सुपवित्र आसन के ऊपर पद्मादि किसी अनुकूल आसन लगाके ऋजुभाव से उपविष्ट होकर, हाथ जोड़ के "गुरुभ्योनमः' इस मंत्र से चोदक गुरु को सभक्ति नमस्कार करे, एवं "पितृभ्योनमः" इस मंत्र से पितरों को सभक्ति नमस्कार करे। अनन्तर "ऋषिभ्यो नमः" इस मंत्र से ऋषियों को सभक्ति नमस्कार करे तथा "देवेभ्यो नमः" इस मंत्र से गणपत्यादि देवताओं को सभक्ति नमस्कार करे।

अतः परनिम्नलिखित मंत्र द्वारा बोधक गुरु को सभक्ति नमस्कार करे।

मंत्र यथा :—

अखंड मंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत् पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवेनमः ॥

भाषार्थः—अखंड मंडलाकार चरअचरजगत्, जिस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



परब्रह्म से व्याप्त वा परिपूर्ण है, तिस परब्रह्म तत्त्व को जिस गुरुदेव ने कृपया दर्शन अथवा साक्षात्कार कराया है, अहेतुक कृपालु तिस बोधक गुरुदेव को मैं पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ।

तदनन्तर कोमल, प्रसन्न तथा प्रेमार्द्र चित्त से, निम्नलिखित मंत्र द्वारा सृष्टि स्थिति प्रलयकर्ता अपिच भोगापवर्गदाता मायोपाधि विशिष्ट जगद्गुरु अव्यक्त स्वरूप ईश्वर को, तथा व्यक्त स्वरूप श्री श्री भगवान् ब्रह्मा विष्णु महेश्वर को स्मरण पूर्वक सभक्ति नमस्कार करे।

मंत्र यथा :—

नित्यानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञान मूर्तिं।
विश्वातीतं गगन सदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्॥
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं।
भावातीतं त्रिगुण रहितं सद्गुरुं तं नमामि॥

तद्रहस्य द्योतक भाषार्थः—

एक मात्र अखंडाद्वितीय सच्चिदानन्दात्मक विश्व से पृथक् होते हुए भी आकाश के जैसे सर्वव्यापक, तत्वमस्यादि मंत्रों के लक्ष्यार्थ विमल अचल सर्वान्तः कीण साक्षिस्वरूप,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्रकृति से भिन्न त्रिगुणरहित, मोक्षद सद्गुरु परमकृपालु अविद्याविनाशक सगुण ब्रह्म अव्यक्तस्वरूप ईश्वर को, तथा व्यक्त स्वरूप श्री श्री भगवान ब्रह्मा विष्णु महेश्वर को, मैं पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ ॥*॥

## तृतीय प्रार्थना—

पूर्ववत् धीमल प्रसन्न तथा प्रेमाद्रचित्त से निम्नलिखित मंत्र द्वारा, अहेतुक असीम कृपालु श्री श्री भगवत् समीप में हाथ जोड़ के शुभ प्रार्थना करे।

### मंत्र यथा :—

अज्ञान तिमिरान्तक पापताप विनाशक शरणागत जनतारक त्राहि मां शरणागतम् ॥

भाषार्थः—अज्ञानरूप अन्धकार विध्वंस कारक ! पापताप विनाशक ! शरणागत जनतारक ! अहेतुक असीम

---

*उपाधि के मिथ्यात्व हेतु तथा बिंब से प्रतिबिंब वस्तुतः अभिन्न होने के कारण श्रुति भगवती ने यहाँ पर मोक्षद गुरु ईश्वर के सगुण निर्गुण उभयस्वरूप के विशेषण शब्द का प्रयोग किया है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कृपालु हे भगवन् ! आप कृपा करके शरणागत मुझे पुनः पुनः जन्ममरणादिरूप दुःखमय संसार से विमुक्त कीजिये।

कामं नाशयमे देव येचान्ये वैरिणस्तथा।
नाशय कृपयातांश्च पाहि मां शरणागतम् ॥
अध्यात्म विद्याधिगमं साधुसंगतिमेवच।
वासना संपरित्यागं प्राण स्पन्दनिरोधनम् ॥
मनोयातु शिवाकारं तत्प्रसादान्महेश्वर।
छित्त्वास्वावरणंनाथ देहि कैवल्यतां पदम् ॥

भाषार्थः—सृष्टि स्थिति प्रलय कर्त्ता अपिच भोगापवर्ग-दाता अहेतुक असीमकृपालु हे भगवन् ! आप कृपा करके मेरे प्रवल शत्रु काम को तथा अन्यान्य रिपुसमूह को विध्वंस कीजिये।

हे शरणागत जनतारक परमकृपालु भगवन् ! आप कृपा करके मेरे चित्त को दुःखात्मक रूपरसादि विषयों से निरोध पूर्वक भवदीय स्वरूप में, संलग्न वा संबद्ध करके, मुझे पुनः पुनः जन्ममरणादि रूप दुःखमय संसार से परित्राण वा विमुक्त कीजिये।

हे असीमकृपालु आशुतोष महेश्वर तुम्हारी प्रसन्नता वा असीम कृपा से मेरा जीवनमुक्त साधुसंग, तथा अध्यात्म विद्या-लाभ, और वासना संपरित्याग, तथा प्राणस्पन्द

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



निरोध हो, अपिच मेरा चित्त शिवाकार अथवा कहो कि ब्रह्माकार प्राप्त हो।

हे नाथ ! कृपा पूर्वक आत्मतत्त्व के आवरण को छेदन करके मुझे कैवल्यपद प्रदान कीजिये।

( ४ )

## प्राणायाम्

पद्मासन में उपविष्ट होकर, गुह्यद्वार संकोचनात्मक मूलबन्ध, और ओष्ठद्वय सम्मिलनात्मक मुखबन्ध करके, जिस प्रकार उपायावलंबन करने पर, इड़ापिंगला उभय-नाड़िद्वारा वायु प्रवेशकाल में कंठ से हृदय पर्यन्त सशब्द संस्पर्श हो, तिस प्रकार उपायावलंबन करके (प्रथम पृष्ठा में चित्रित) श्री श्री भगवान ब्रह्माजी का स्वरूप चिन्तनके सहित मनही मन में एक बार दीर्घ प्रणव उच्चारण करते हुए धीरे धीरे वायु आकर्षणात्मक पूरक प्राणायाम करो एवं पूरकानन्तर कंठ संकोचनात्मक जालन्धरबन्ध करके पालनकर्ता श्री श्री विष्णु भगवान का स्वरूप चिन्तन के सहित मनही मन में चार बार दीर्घ प्रणव उच्चारण करते हुए वायुनिरोधात्मककुंभक प्राणायाम करें। एवं कुंभ-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कान्त में रेचक के पहिले उदर संकोचनात्मक उड्डियान वन्ध करने के अनन्तर जालन्धरवन्ध खोल के, प्रलयकर्त्ता श्री श्री भगवान महेश्वर का स्वरूप चिन्तन के सहित मन ही मन में दो वार दीर्घ प्रणव उच्चारण करते हुए, धीरे धीरे वायु निष्काशनात्मक रेचक प्राणायाम करे। ठीक अर्थात् जिसमें किंचिन्मात्र भी अन्तर न पड़े तिस प्रकार से, पूर्ववत् यथाक्रम से पुनः पुनः पूरककुंभक रेचक प्राणायाम करते रहें जव तक परिश्रान्त न हों।*

( ५ )

प्राणायाम करने के अनन्तर जितने काल संभव हो, शांत वा समाहित चित्त से स्वकीय उपास्य देवता का यथाविधि ध्यान करे।

---

*अवशिष्ट ज्ञातव्य विषय नवम परिच्छेद के अन्तर्गत श्रुति वर्णित प्राणायाम में द्रष्टव्य है। अपिच विचार पूर्वक उसे देखने पर भी, यदि निस्सन्देहतया भली भांति समझ में नहीं आवे तो, गुरुदेव से अथवा अन्य किसी जानकार से समझ लेना या सीख लेना अन्धाधुंध प्राणायाम करना उचित नहीं है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



(क)

जिन लोगों को भलीभांति ध्येयदर्शन नहीं होवे, वे निम्नलिखित अर्थ चिन्तन के सहित प्रणवान्त महाव्याहृति मंत्र का मानस जप करें।

तद् यथा:—

"भूर्भुवः स्वरोम्" अर्थात् स्वर्ग मर्त्य पाताल नाम से प्रसिद्ध कार्यकारणात्मक जागतिक सकलवस्तु ही ॐकारवाच्य सगुण ब्रह्म श्री श्री भगवान है। इस प्रकारसे सर्वत्र भगवद्बुद्धि पूर्वक शांत चित्त से जितने काल संभव हो यथाविधि जपकार्य संपादन करे।

(ख)

जो लोग सर्वत्र भगवद्बुद्धिपूर्वक समष्टिरूपी भगवच्चिन्तन करने में असमर्थ हैं। वे व्यष्टि रूपी ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, अथवा राम कृष्णादियों के बीच में जो जिसका उपास्य है, वह स्वकीय उपास्य देवता का स्वरूप चिन्तन पूर्वक, "ॐ नमः शिवाय" "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इत्यादि गुरुदत्त मंत्र का यथाविधि मानस जप करे।

(ग)

ध्यान अथवा जपकार्य करने के अनन्तर स्वाध्यायादि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पंच महायज्ञ यथाविधि संपादन करना कर्तव्य है। अपिच श्रुति वर्णित प्रथम योगांगभूत यम और नियम यथाविधि अवश्य पालनीय हैं।

ॐ नित्यानन्दं परम सुखदं केवलं ज्ञानूर्मातं,
विश्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्व धी साक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुण—रहितं सद्गुरुं तं नमामि॥
ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं, पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

इति द्वादश परिच्छेद तथा निर्मलवाणी वा सत्यनारायण कथा समाप्त।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

| पृष्ठांक | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ९ | १० | बौद्धमविलम्बी | बौद्धधर्मावलम्बी |
| १७ | ४ | ज्ञानमूर्त्ति | ज्ञानमूर्ति |
| १६ | ३ | पुण्यपापफलैर्वृत्तम् | पुण्यपापफलैर्वृतम् |
| १७ | १० | पूर्णामिदं | पूर्णमिदं |
| २१ | १४ | आपिच | अपिच |
| २६ | ८ | निरुपण | निरूपण |
| ४२ | ३ | द्विन्द | द्विन्द्व |
| ५७ | १४ | श्वकीय | स्वकीय |
| ७९ | १० | पंचक्रियावृत्यात्मक | पंचक्रियावृत्त्यात्मक |
| " | १३ | पंचवृत्यात्मक | पंचवृत्त्यात्मक |
| " | १६ | वृत्तात्मक | वृत्त्यात्मक |
| ८३ | १८ | अन्यान्याध्यास | अन्योन्याध्यास |
| १०६ | ३० | हितै हितैषिणी | हितैषिणी |
| " | १३ | द्वार्वी | दर्वी |
| " | १४ | " | " |
| १११ | ४ | विहितष्वेद | विहितेष्वेव |

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



| पृष्ठांक | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ११६ | १० | वाचैनेवैखलु | वाचैतेवैखलु |
| „ | ११ | सोऽन्नमत्थ | सोऽन्नमात्थ |
| ११७ | ११ | वस्तिरेवगीयः | वस्तिरेवरयिः |
| „ | १२ | चाधितिष्ठतस्ततृप्यति | चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति |
| ११९ | ४ | द्वितीयां जुहुयाद् | द्वितीयां जुहुयात्तां जुहुयाद्वयानाय |
| „ | ६ | चन्दामसि | चन्द्रमसि |
| „ | ७ | तत्तृप्यति तृप्ति | तत्तृप्यति तस्यानु तृप्ति |
| १२० | २ | जुहुयादपानाया | जुहुयादपानाय |
| „ | १८ | चतुर्थीं जुहुयात्समानाय | चतुर्थीं जुहुयात्तां जुहुयात्समानाय |
| १२१ | १ | विद्युतृप्यति | विद्युत्तृप्यति |
| „ | १९ | चाधितिष्ठतस्ततृप्यति | चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति |
| १२५ | ५ | मुमुक्ष | मुमुक्षु |
| „ | १८ | „ | „ |
| १३३ | ४ | यथाविध | यथाविधि |
| १३९ | ३ | मुमुक्ष | मुमुक्षु |
| „ | ९ | „ | „ |
| १४० | १ | „ | „ |

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



| पृष्ठांक | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १४० | ४ | साधनपेक्षा | साधनापेक्षा |
| १४२ | ११ | निग्रहित | निग्रहीत |
| १४४ | १० | तत्त्वाभास | तत्त्वाभ्यास |
| १४७ | १७ | समयानवच्छिन्ना | समयानवच्छिन्नाः |
| १४८ | ७ | मुमुक्ष | मुमुक्षु |
| ,, | ११ | ,, | ,, |
| १४९ | १२ | साध्यायेश्वर | स्वाध्यायेश्वर |
| ,, | १४ | स्वाध्यय | स्वाध्याय |
| १५२ | ९ | देशवन्धश्चितस्य | देशवन्धश्चित्तस्य |
| १५५ | ११ | मुमुक्ष | मुमुक्षु |
| १५८ | ८ | रचेष्टवन्धुवियोगे | स्वेष्टवन्धु वियोगे |
| १५८ | १४ | चतुर्थांशावशेषक | चतुर्थांशावशेषक |
| १५९ | ७ | उनता | उतना |
| १६० | ४ | कृच्छ् | कृच्छ्र |
| ,, | ६ | ,, | ,, |
| ,, | १४ | प्रजापत्याचरणकारी | प्राजापत्याचरणकारी |
| १६१ | २ | प्रजापत्यव्रत | प्राजापत्यव्रत |
| ,, | ८ | समापनान्तर | समापनानन्तर |
| ,, | १० | संध्योपासनान्तर | सन्ध्योपासनानन्तर |

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



| पृष्ठांक | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १६१ | ११ | समापनान्तर | समापनानन्तर |
| " | ६ | यथाकथंचित्रिगुणः | यथाकथंचित्त्रिगुणः |
| १६२ | १९ | एकरात्रौपवासश्च | एकरात्रोपवासश्च |
| १६३ | १० | सान्ह्पन् | सान्तपन |
| १६४ | २ | त्रिणि | त्रीणि |
| " | ५ | सपापनान्तर | समापनानन्तर |
| " | ६ | " | " |
| " | ७ | " | " |
| १६४ | ९ | सयंध्योपासना | संध्योपासना |
| " | " | समापनान्तर | समापनानन्तर |
| " | १० | " | " |
| " | ११ | " | " |
| १६५ | ६ | तप्तकृछ् | तप्तकृछ |
| " | " | घृतानिलान् | घृतानिलान् |
| १६६ | ९ | यत्किंचित | यत्किंचित् |
| १६७ | २ | उष्णामारुत | उष्णमारुत |
| १६८ | ३ | पराकनाम | पराकोनाम |
| " | १० | उपस्पृशंरित्रषवण | उपस्पृशंस्त्रिषवण |
| " | ११ | "त्रिषवणमुपर्स्पृशन" | "त्रिषवणमुपस्पृशन्" |

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



| पृष्ठांक | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १६८ | १२ | "कृष्णो | "कृष्णे |
| १७२ | ३ | "सकृतस्नायी" | "सकृत्स्नायी |
| " | ५ | तप्तकृच्छ्रातिरिक्त | तप्तकृच्छ्रातिरिक्त |
| " | १२ | त्रिकाल | त्रिकाल |
| १७५ | ९ | समापनान्तर | समापनानन्तर |
| " | १० | " | " |
| १७६ | १९ | जपेनित्यं | जपेन्नित्यं |
| १७७ | ११ | विपरीतिमेकेषाम्" | विपरीतमेकेषाम्" |
| १७९ | १५ | विधिनिषेधधानुष्ठान | विधिनिषेधानुष्ठान |
| १८० | १४ | मेद्रादुपरि | मेढ्रादुपरि |
| " | १७ | मेद्र | मेढ्र |
| १८१ | २ | सिद्धासन | यह सिद्धासन |
| " | ६ | योनि | योनिं |
| " | " | मेद्रादुपरि | मेढ्रादुपरि |
| " | ९ | मेद | मेढ्र |
| १८२ | ९ | तत्पर्य | तात्पर्य |
| १८४ | ८ | अल्पाहारो | अल्पाहारो |
| १८५ | ३ | ध्वान्निदृश्यते | ध्वान्निदृश्यते |
| " | ३ | फलितं | पलितं |

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



| पृष्ठांक | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १८७ | ८ | कुंडलिनी | कुंडलिनी |
| ,, | ५ | ×××× | यह चिह्न नहीं रहेगा |
| १८७ | १० | अपानाद्वयंगुला | अपानाद्द्वयंगुला |
| ,, | ,, | मेदृस्य | मेढ्रस्य |
| ,, | १२ | मेद्र | मेढ्र |
| १८८ | ११ | कूकर | कृकर |
| १९१ | ४ | सुश्रुषा | शुश्रुसा |
| ,, | ६ | तपोवन | तपोवनं |
| ,, | ९ | मेल्यद्वारं | मल्यद्वारं |
| १९३ | १८ | शाल्यनं | शाल्यकं |
| १९५ | १ | मेदैरेव | भेदैरेव |
| ,, | २ | स्थात् | स्थात् |
| ,, | १४ | उनवेशन | उपवेशन |
| १९६ | ६ | कुंभकान्तर | कुंभकानान्तर |
| १९७ | ७ | सुसमहितः | सुसमाहितः |
| १९८ | १३ | चतुष्ठय | चतुष्टय |
| ,, | १७ | रेचयिदड़या | रेचयिदिड़या |
| २०२ | ६ | भस्ता | भस्त्री |
| २०४ | ७ | अग्निशिक्षा | अग्निशिखा |

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



| पृष्ठांक | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| २०४ | ५ | भिष्ट | यथा |
| " | " | यथा | व्रजेत् |
| २०५ | १६ | स्थात् | स्यात् |
| २०७ | १७ | चतुर्भुजमित्पन्न | चतुर्भुजमित्यत्र |
| २०८ | ९ | अधेरात्रि | अर्धरात्रि |
| २१४ | १५ | मिराकरणभावाहनम् | निराकरणमावाहनम् |
| २१५ | ११ | पराभृतवृत्तिः | परामृतवृत्तिः |
| २१८ | ७ | अनरक्ति | अनुरक्ति |
| " | १२ | ध्यानको | ध्यानकी |
| २२० | १३ | वाथबावहिः | वाथवावहिः |
| २२१ | १४ | विरहति | विरहित |
| " | १८ | दृश्य | दृश्य |
| २२७ | ३ | स | से |
| २३० | १२ | षष्ठ-प्रमेय अर्थात् चैतन्य | पष्ठप्रमेय चैतन्य अर्थात् |
| २४१ | ५ | ब्रह्माविद्योपनिषत् | ब्रह्मविद्योपनिषत् |
| २४५ | १७ | स्थानु | स्थाणु |
| २४७ | ८ | दृश्यास्तिका | दृश्यात्मिका |
| २५९ | १५ | यज्ञार्थ | यज्ञार्थं |

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



| पृष्ठांक | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| २६० | १९ | वेदतत्त्वार्थविद्द्विजः | वेदतत्त्वार्थविद्द्विजः |
| २६१ | १९ | वेदाधर्मोहि | वेदाद्धर्मोहि |
| २६२ | ८ | सृष्टा | सृष्ट्वा |
| २६४ | १८ | निश्रेयस | निश्रेयस् |
| २६७ | ७ | द्रष्ट | दृष्ट |
| " | ९ | त्रिशोष | विशेष |
| २७१ | ३ | सुनिपुना | सुनिपुणा |
| " | ११ | महाराज न | महाराज ने |
| २७२ | ९ | गूढ़ाथ | गूढ़ार्थं |
| २८४ | १४ | के शान्त | केशान्त |
| २९१ | १७ | मंत्रवर्ज्यन | मंत्रवर्ज्यं न |
| २९२ | १० | आचारित | आचरित |
| २९३ | १५ | सोमोऽदद्द | सोमोऽददद् |
| २९४ | ९ | ह | है |
| २९७ | ९ | इयमावृद्यं | इयमाबृद्यं |
| ३०८ | १४ | वुद्धैः | वुद्धेः |
| ३०९ | २ | तत्रोच्छात्र | तत्रोच्छास्त्र |
| ३११ | ७ | मंत्रता | मंत्रंता |
| ३१४ | १२ | कहक | करके |

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



| पृष्ठांक | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ३१४ | १० | विपर्य्य | विपर्य्यय |
| ३१६ | १९ | श्रति | श्रुति |
| ३१७ | ६ | वेदलमूक | वेदमूलक |
| ३१८ | ११ | ओं | ॐ |
| ३२४ | ३ | ॐनमोनारायण | ॐनमोनारायणाय |
| ,, | ५ | ओं | ॐ |
| ,, | ७ | ओं | ॐ |
| ,, | ,, | ,, | ,, |
| ३२६ | ८ | प्रेरयति | प्रेरयति |
| ,, | १८ | रमन्यतरस्या- | रनन्यतरस्या- |
| ३२७ | ४ | लेटि | लेंटि |
| ३२८ | १९ | अथ महीधराचार्यकृत... | यह भाष्य असंपूर्ण है। |
| ३२९ | १२ | सर्वात्मक | सर्वात्मकत्व |
| ,, | १७ | प्रत्यक्चैतन्यवोधिका, | प्रत्यक्ब्रह्मैक्यबोधिका |
| ३३० | १ | ओं | ॐ |
| ,, | ११ | स्वविवर्तजड़प्रपंचस्य, | स्वविवर्तजड़प्रपञ्चेन |
| ,, | १२ | रूपमेकत्वं..... | रूपमेकत्वं सोऽयमिति न्यायेन सर्वसाक्षी प्रत्यगात्मनो ब्रह्मणा सह |

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



| पृष्ठांक | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| | | | तादात्म्य [illegible]मेकत्वं |
| | | | भवतीति |
| ३३० | १५ | व्युत्पत्य | व्युत्पत्या |
| ,, | १६ | सुब्रियत | सुब्रियते |
| ,, | ,, | व्युत्पत्यो | व्युतपत्या |
| ३४० | ७ | ष्टव्य | द्रष्टव्यं |
| ३४१ | ५ | कर्मणो | कर्मणो |
| ३४५ | १२ | वृष्ट | दृष्ट |
| ३४६ | १ | जज्ञात्वा | यज्ज्ञात्वा |
| ,, | १४ | मुमुक्ष | मुमुक्षु |
| ३४७ | ६ | जीवनन्मुक्त | जीवन्मुक्त |
| ,, | १५ | प्रचालत | प्रचलित |
| ३४८ | १४ | समुद्रादर्णावादधि | समुद्रादर्णवादधि |
| ,, | १७ | अघमर्षण | अघमर्षण |
| ३४९ | ४ | इदमहं माममृत | इदमहं मापोऽमृ[illegible] |
| ,, | ८ | मानसा | मनसा |
| ,, | १० | इदमहंमामसृत | इ[illegible]महंमापोऽमृत |
| ३५० | १० | देवोभ्यो | देवेभ्यो |
| ३५२ | १२ | ? | ! |

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



| पृष्ठांक | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ३५२ | १३ | ? | ! |
| " | " | " | " |
| ३५३ | १ | ? | ! |
| ३५४ | १५ | पूराकानन्तर | पूरकानन्तर |
| ३५६ | ८ | सर्वत्र से | सर्वत्र |

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC-0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC-0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शांतिप्रिय नरनारियोंके प्रति

# सूचना

( १ )

सृष्टि स्थिति प्रलयकर्ता अपिच भोगापवर्गदाता आदि ईश्वरोपदिष्ट सार्वदेशिक तथा सार्वजनिक वैदिक धर्माचरण विना परम शांति लाभ होना सर्वथा असंभव है।

( २ )

विश्वशांतिके लिये स्वदेशी, विदेशी जो कोई भी क्यों न हो प्रत्येक बुद्धिमान्, बुद्धिमती नर-नारियोंका सार्वदेशिक तथा सार्वजनिक वेदमूलक निर्मलवाणीका स्वाध्याय तथा वैदिकधर्मका अनुष्ठान करना अति आवश्यक है। क्योंकि अधुना श्रीश्री परमेश्वरकी [illegible] ही विदित होती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi